नागार्जुन की कविता में सामाजिक चेतना

शोध प्रबन्ध :
हिन्दी में डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि
हेतु गोवा विश्वविद्यालय, गोवा को प्रस्तुत

1993

निर्देशक :—
डा० बी० डी० मिश्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

891.431
VAG / Nag
VIS
T-56

शोधार्थी :—
शंकर सिंह वशिष्ठ
स्नातकोत्तर शिक्षक
के० वि०—१ वास्को-द-गामा, गोवा

T-56

गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

T 737

C E R T I F I C A T E

This is to certify that Ph.D. Thesis entitled NAGARJUN KI KAVITA MEIN SAMAJIK CHETNA is an original work carried out by Shri Shankar Singh Vashishth under my supervision and guidance and that no part of this work has been presented for any other degree.

Place: Taleigao, Goa. (Dr.B.D.MISHRA)
Plateau Head of Hindi Department
Goa University, Goa.

Date: 6-7-93 Guide

Head
Department of Hindi
GOA UNIVERSITY

C E R T I F I C A T E

I hereby state that this Thesis is a bonafide record of research work done by me under the guidance of Dr.B.D.Mishra, Head of Hindi Department, Goa University, Goa. I further state that no part of this thesis has been presented earlier for any other degree, diploma or similar title of this or any other University.

Place: Taleigao Plateau, Goa. (SHANKAR SINGH VASHISHTH)
Research Scholar in Hindi

Date: 6-7-93

भूमिका

मूलतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं, अपने जीवन की कटु-तिक्त एवं मधुर अनुभूतियों को वह समाज के साथ बाँटकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। इस प्रकार जीवन के यथार्थ चित्रण का ही दूसरा नाम सत्साहित्य हुआ। चाहकर भी समाज में रहते हुए कोई व्यक्ति स्वयं को साहित्य से विलग नहीं रख सकता। क्योंकि साहित्य सामाजिक व्यक्ति की व्यथा-कथा का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाली गतिशील फिल्म है। कोई मनुष्य चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित परन्तु अपने जाने-अनजाने में वह साहित्य से सतत् सम्बद्ध रहता है। साहित्य सृजन के लिए साहित्यकार कोरी कल्पना की कुलाचें मारकर जनरूचि के परिष्कार के पुनीत कर्तव्य में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

कविकुल शिरोमणि तुलसीदास से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक सभी ने लोक रंजन के साथ लोक कल्याण को साहित्य का प्राण-तत्व स्वीकार किया है। हालांकि इसके साथ-साथ जन कल्याण भी साहित्य का उद्देश्य है। ऐसा साहित्य जो केवल मनोरंजन प्रदान करता हो परन्तु सामाजिक सत्य के उद्घाटन से जी चुराता हो, समाजोपयोगी न होने के कारण मानव के इतिहास और हृदय दोनों में ही अपना कोई स्थान नही बना पाता। जीवन को सफलता पूर्वक जीना एक कला है। इस कला को साहित्य ही सुरूचि प्रदान करता है। साहित्य के माध्यम से हम अपने व्यावहारिक और अनुभूत सत्यों का आदान-प्रदान करते हैं। जीवन के कटु सत्यों को काव्य की चाशनी में लपेटकर पाठक के सामने परोसने का दायित्व साहित्यकार के कन्धों पर आता है। लोक-कल्याण की भावना से अनुप्राणित साहित्य जन-मन रंजन करते हुए मानव जीवन में वांछित सामाजिक व्यवहार एवं परिवर्तन लाने का एक सशक्त माध्यम है। इस प्रकार अब साहित्य समाज की प्रतिछवि तो बिल्कुल ही नहीं कहा जा सकता। वह एक ऐसा दर्पण है जिसमें समाज अपने सच्चे स्वरूप को देखकर अपनी खामियों को दूर करने के लिए प्रभावकारी कदम उठा सकता है ऐसा साहित्य जो समाज के यथार्थ का चित्रण करते हुए मनुष्य को नित्य निरंतर कठिनाइयों से

जूझते हुए प्रगति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है, उसे प्रगतिशील साहित्य कहा जायेगा।

विगत तीन दशकों से शिक्षण से जुड़े रहने के कारण मुझे समाज की विसंगतियों के निकट सम्पर्क में रहने का मौका मिला। इन सामाजिक विसगंतियों को दूर करने के प्रयास में लगे हुए विभिन्न साहित्यिक मनीषियों की रचनाओं के प्रति आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक ही था। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक के सुदीर्घ कालखण्ड में ऐसे अनेक साहित्यकारों की रचनाओं का गहन अध्ययन करने की ओर भी आकर्षण बढ़ा। समाज के पिछड़े वर्ग - मजदूर किसान भारतीय नारी एवं वर्ण-व्यवस्था के शिकार हरिजन-वर्ग, आदिवासी और गिरिजन की आर्थिक एवं सामाजिक दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। कतिपय साहित्यकारों ने आपाधापी के इस युग में भी अपने नैतिक दायित्व का पूरी तरह से पालन करने का भरसक एवं अनवरत प्रयत्न किया हे। कहने को तो छठे दशक में ही प्रगतिशील आन्दोलन को समाप्त मान लिया गया था। मेरी मान्यता है कि प्रगति मानव स्वभाव का एक अद्‌भुत गुण है। । इसलिए प्रगतिशील साहित्य की धारा मन्द भले ही पड़ जाय वह सूख तो कभी सकती ही नहीं। समाज की सड़न को दूर करने के लिए साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन की पुण्य सलिला का नित्य निरन्तर प्रवहमान बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में साहित्य अपनी प्राणवत्ता ही खों बैठेगा।

ऐसा भी समय आता है कि कठिनाइयों से घबराकर मनुष्य परिस्थितियों से समझौता करने के लिए विवश हो जाता है। आज के इस संक्रान्ति काल में संस्कृति के संरक्षण और नैतिकता के उन्नयन की दुहाई देने वाले तो बहुत है किन्तु व्यावहारिक रूप से कुछ कर गुजरने की ललक गिने-चुने लोगों में ही बची है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जन सामान्य को नये संविधान के तहत अपनी आकांक्षाओं के साकार होने की बलवती आशा थी। इसे हम दुराशा भी नहीं कह सकते किन्तु जो हुआ उसकी कल्पना तो शायद कोई स्वप्न में भी नहीं कर सकता। सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों का पतन इतनी तेजी से हुआ कि देश का आम आदमी हक्का-बक्का रह गया। चुनाव आने पर नेताओं के मधुर बुझावन से मोहित होकर वोट डालने वाला भारतीय ऐसा कभी सोच भी नहीं सकता था कि चुनाव जीत जाने के बाद उसका अपना प्रिय नेता उसे पहचानने से ही इंकार

कर देगा।

समाज के सुविधाभोगी वर्ग द्वारा अपनी स्थिति यथावत् ही नही बल्कि सुदृढ़ बनाये रखने के लिए तरह-तरह की चालें सुनियोजित ढंग से चली जा रही थीं। साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के कुचक्र से निकलकर देश की बहुसंख्य जनता पूंजीवाद के हिंसक और बेरहम पंजों में फंसकर रह गई थी। पूंजीपति की पूंजी में इजाफ़ा हो रहा था। औद्योगिक क्रांति के नाम पर ग्रामीण उद्योग अंतिम साँसे गिन रहे थे। शहरों के प्रति बढ़ते हुए आकर्षण के कारण नई युवा पीढ़ी का गांवों से शहरों की ओर पलायन रोके से न रूक रहा था। श्रम की प्रतिष्ठा खोखली सिद्ध हो रही थी। राजनेता अपनी कूटनीतिक चालों में इस कदर उलझे हुए थे कि सत्ता हथियाना ही राजनीति का पर्याय मालूम पड़ने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगभग पचास वर्ष पूरे होने को आए परन्तु राष्ट्रपिता गाँधी के सपनों का भारत अभी हमसे कोसों दूर हैं।

साहित्यकार स्वप्न दृष्टा के साथ साथ समाज स्रष्टा के उत्तरदायित्व को भी ढोने के लिए बाध्य है। यही उसका धर्म और कर्म है किन्तु अपने सामाजिक और नैतिक दायित्व की ओर से आँखे मूंदकर अधिकतर साहित्यकारों ने सत्ता और सुविधा के साथ समझौता कर लिया। पाठक को वादों के विवाद में उलझा कर साहित्य को अनबूझ पहेली की स्थिति में पहुंचा दिया। सस्ते साहित्य की बाढ़ आ गई, जिससे प्रकाशक और पूंजीपति को तो अवश्य लाभ हुआ परन्तु सामाजिक ओर नैतिक मूल्यों के साथ साथ इससे हिन्दी के पाठकों की साहित्यिक रूचि में ह्रास हुआ। जनता जनार्दन की भावना की थाह लेकर उसे साहित्यिक जामा पहनाने वाले को जनता की निगाहें व्याकुलता से खोज रही थीं। प्रगतिशील आंदोलन के समापन की घोषणा करके अधिकांश साहित्यकार असमय में ही प्रगतिशील धारा से किनारा कर चुके थे। कुछ गिने चुने ही लोग थे जिन्होंने हर प्रकार की पेशकश को ठुकरा कर प्रगतिशील साहित्य की रचना करते रहने का संकल्प नहीं छोड़ा। सर्व श्री केदारनाथ अग्रवाल, डा0 राम विलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री एवं नागार्जुन जैसे साहित्यकारों ने साधारण भारतीय नागरिक के साथ साहित्य की भागीदारी बनाये रखने की परम्परा को बनाये रखना ही उचित समझा, जनहित की भावना से प्रेरित होकर समय-समय पर नागार्जुन ने

एक ओर तो शोषित वर्ग को संघर्ष करने के लिए प्रेरणा प्रदान की तथा दूसरी ओर उत्पीड़न और शोषण के लिए जिम्मेदार पूंजीपति और राजनेताओं को करारी फटकार भी लगाई।

स्वभाव से घुमक्कड़ होने के कारण उन्होंने देश-विदेश के शहरों और गावों में निर्धनता की चक्की में पिसते, कराहते मजलूमों की आहों को अपने साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान की। उनका रचना संसार इतना विविधतापूर्ण है कि पाठक को पढ़ते-पढ़ते ऐसा महसूस होने लगता है, 'वाह, यह तो मेरे ही मन की बात कह डाली है।' उनकी रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक 'स्व' से 'पर' की स्थिति की ओर क्रमशः अग्रसर होता है। वह उनके साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् कुछ सोचने और कर गुजरने के लिए उद्यत हो जाता है।

पिछले एक दशक में इधर उधर प्रकाशित उनकी रचनाएँ पाठक के अन्तर में गहरे पैठने के बावजूद भी, पाठ्यक्रम समितियों द्वारा उपेक्षित सी ही रहीं। ब्रिटिश भारत में निषिद्ध घोषित पुस्तकें जिस प्रकार छिप छिप कर पढ़ी जाने के कारण और भी अधिक प्रचारित, चर्चित एवं लोकप्रिय बन जाती थीं, कुछ ऐसा ही मुझे अनुभव हुआ नागार्जुन के साहित्य के साथ बरती गई बेरूखी के कारण। एक ऐसी सशक्त और समृद्ध लेखनी के धनी की रचनाएँ जो उदीयमान नागरिक के लिए, राष्ट्रहित के लिए; अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी पाठ्यक्रम से दूर रखी गई। कालान्तर में जनता जनार्दन के समर्थन की मुहर से धीरे-धीरे उनकी रचनाओं का विभिन्न शिक्षा परिषदों और विश्व-विद्यालयों में एक सुखद आश्चर्य के रूप में प्रवेश हुआ। फिर भी मुझे ऐसा निरन्तर महसूस होता रहा कि कवि नागार्जुन को सामाजिक-न्याय साहित्य-बिरादरी में अभी तक नहीं मिल पाया। वह जिस उच्च आसन के अधिकारी है, उन्हें उस पर ससम्मान आसीन कराना समालोचकों और शोध-कर्ताओं का नैतिक दायित्व है।

अपने कार्य क्षेत्र रूपी संसार में कोई भी व्यक्ति एक तटस्थ तथा निष्क्रिय जीवन नहीं जी सकता क्योंकि वह फिर सामाजिक प्राणी कहलाने योग्य ही नहीं रहेगा। अपने देश और समाज के प्रति दायित्व का निर्वाह वह तभी सफलता पूर्वक कर सकता है, जब वह समाज और इह-लोक से सम्बद्ध तथा दैनंदिन जीवन की समस्याओं से जूझने की प्रतिबद्धता से सम्पन्न हो। नागार्जुन की कविताओं में समाज से जुड़ने की अपूर्व सामर्थ्य है। उनका रचना संसार विविधता से परिपूर्ण एक ऐसा परिदृश्य है जो मनुष्य की मानसिकता का विकास करते हुए, रूचि परिष्कार करके जन

साधारण को नित्य, निरंतर समस्याओं से जूझने की ओर उन्मुख करता है । हिन्दी कविता के क्षेत्र में अपने पदार्पण से लेकर अब तक जीवन की इस साँध्य बेला में भी वह मनीषी उपनी लेखनी से समाज के पीड़ित - उपेक्षित साधारण अबोध जन को नई ऊर्जा, जिजीविषा और नवोन्मेष प्रदान करने की प्रकिया में जुड़ा हुआ है। उनकी रचनाओं में जीवन के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। कविता पढ़ते-पढ़ते पाठक इतना विभोर अनुभव करने लगता है कि उन कविताओं में उसे अपने ही जीवन का शब्द चित्र दिखाई देने लगता है। अर्द्धशती से अधिक काल के उनके काव्य प्रणयन के निरपेक्ष विश्लेषण तथा मूल्यांकन की ओर गंभीरता से किसी ने ध्यान नहीं दिया। हाँ छुट-पुट पत्र-पत्रिकाओं में यदा कदा उनके रचना कर्म पर कुछ लेख अवश्य प्रकाशित हुए। इतने विपुल काव्य पर दो चार पन्ने का एक लेख अथवा दस बारह कवियों के संकलन में नागार्जुन जैसे बहुआयामी व्यक्तित्व की कृतियों पर पॉच-दस पृष्ठ का परिचयात्मक विवरण निश्चय ही न्याय-संगत प्रतीत नही होता। ऐसे ही कुछ प्रयास सर्वश्री डा0 रणजीत, डा0 विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी तथा प्रभाकर माचवे आदि कुछ समीक्षकों ने अपनी-अपनी पुस्तकों में किए हैं। श्री अजय तिवारी तथा शोभाकान्त मिश्र ने भी नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व के कुछ पहलुओं पर विस्तार में जाने का सफल प्रयास किया है। वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नागार्जुन: चुनी हुई रचनाएँ (तीन खण्ड) में नागार्जुन काव्य विशेषज्ञ डा0 शिव कुमार मिश्र की भूमिका मुझे इतनी प्रेरणास्पद लगी कि जनमन से जुड़े कर्म योगी नागा बाबा की कविताओं के गहन अध्ययन और शोध की ओर मैं क्रमशः बढ़ा। गोवा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सेंट जेवियर्स कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा0 आदित्य प्रसाद त्रिपाठी जैसे कुछ मित्रों से अनेक बार विचार-विनिमय होने के बाद मुझे लगा कि नागार्जुन की कविता में सामाजिक चेतना के स्वर आरम्भ से अन्त तक मुखर हैं। अतएव सामाजिक चेतना के इस मुख्य सूत्र को ही पकड़ने , उसका विश्लेषण करने ओर उसे रेखाकित करने का ही विनम्र प्रयास मैने इस शोध-प्रबंध में किया है।

विवादास्पद विषय है कि नागार्जुन आधुनिक युग के कबीर हे या नागार्जुन निराला का प्रतिरूप हैं। मेरी मान्यता और विनम्र अनुरोध है 'नागार्जुन अपनी रचनाओं में नागार्जुन ही हैं अन्य कुछ नहीं।' मैने यही समझने का प्रयत्न इस शोध प्रबंध में किया है।

गोवा विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा0 बी0डी0मिश्र के व्यक्तित्व में मुझे अपने शोधकार्य के लिए उपयुक्त निर्देशक के दर्शन हुए। उनकी स्पष्टवादिता गहन अध्ययन तथा प्रेरणास्पद परामर्श ने मुझे इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में कदम-कदम पर मार्ग दर्शन ही नहीं बल्कि अनुपम प्रोत्साहन प्रदान किया। मेरे पास वह शब्द नहीं है, जिनके माध्यम से मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त कर सकूं।

सेण्ट जेवियर्स कॉलेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा0 ए0पी0त्रिपाठी ने समय-समय पर श्री बी0डी0मिश्र और मेरे साथ इस शोध प्रबन्ध पर चर्चा करते हुए अपने अमूल्य सुझाव देकर मुझे अनुग्रहीत किया है। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। केन्द्रीय विद्यालय संगठन के अधिकारियों ओर के0 वि0 वास्को के प्राचार्य, सहयोगी अध्यापक तथा पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीमती सुजाता कुलकर्णी के प्रति उनके सहयोग के लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

हिन्दी में शोध करने की मूल प्रेरणा मुझे मेरी दीदी श्रीमती शान्ति देवी शर्मा एवं उनके पति श्री ओ0पी0 शर्मा अवकाश प्राप्त अतिरिक्त कलेक्टर कस्टम्स से प्राप्त हुई थी। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा नैतिक कर्तव्य है। मेरी भतीजी सौ0 दुर्गेश नन्दिनी जिन्होंने शोध प्रबन्ध की टंकित प्रतिलिपियों को पढ़कर संशोधन करने में मुझे अमूल्य सहायता प्रदान की, उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

मेरी सहधर्मिणी श्रीमती मिथिलेश वशिष्ठ ने निरन्तर प्रेरणा और उत्साह वर्धन के साथ-साथ पाण्डुलिपि को पढ़ने-सुनने और सुझाव देने का कार्य किया, उनके सहयोग और स्नेह का ही प्रतिफलन यह शोध प्रबन्ध है। मेरे पुत्र और पुत्री शैलेन्द्र वशिष्ठ (अभियन्ता) एवं डा0 बिन्दु वशिष्ठ की सहायता और प्रेरणा को भी भुलाया नहीं जा सकता।

शोध प्रबन्ध को स्वच्छ एवं सुन्दर रूप में टाइप करके समय पर प्रस्तुत करने में अलीगढ़ निवासी मै0 शेखर टाइपराइटर ने जिस अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। अन्त में उन सभी साहित्यकारों, समालाचेकों एवं इतिहासकारों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनकी रचनाओं से मुझे सहायता मिली है।

शंकर सिंह वशिष्ठ

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	01
प्रथम अध्याय	
प्रगतिशीलता एवं प्रगतिवाद स्पष्टीकरण	13
1.1 व्युत्पत्ति	14
1.2 परिभाषाएँ	16
1.3 प्रगतिशील साहित्य के प्रमुख आँगिक तत्व	22
द्वितीय अध्याय	
नागार्जुन का युग परिवेश	26
2.1 परिचय एवं पृष्ठभूमि	26
2.2 सामाजिक पृष्ठभूमि	27
2.2.1 स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज	33
2.2.2 थियोसोफिकल सोसायटी तथा कूका विद्रोह	33
2.2.3 राम कृष्ण मिशन की भूमिका	34
2.2.4 रवीन्द्रनाथ टैगोर का योगदान	34
2.2.5 महात्मा गाँधी के सुधारवादी आन्दोलन	35
2.2.6 मुस्लिम नवजागरण	36
2.2.6 (क) सर सैयद अहमद खाँ	37
2.2.6 (ख) हाली और शिवली के प्रयत्न	38
2.2.6 (ग) अलीबन्धु और मौलाना आजाद	38
2.2.6 (घ) तुर्की में कमालपाशा के सुधार और उनका भारतीय मुस्लिम समाज पर प्रभाव	39
2.2.6 (च) पड़ोसी देशो की समाजिक क्रांति	41

पृष्ठ संख्या

2.3	राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश	41
2.3.1	औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव	43
2.3.2	राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली लहर	43
2.3.3	प्रथम महायुद्ध और उसके राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभाव	45
2.3.4	राष्ट्रीय आन्दोलन की दूसरी लहर - कांग्रेस पार्टी के राजनीतिक आन्दोलन एवं प्रस्ताव	48
2.3.5	मोपला विद्रोह	52
2.3.6	किसान आन्दोलन (उत्तर प्रदेश)	52
2.3.7	अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक अधिवेशन	53
2.3.8	प्रिंस आफ बेल्स का भारत आगमन	55
2.3.9	साम्यवादी दल की स्थापना	57
2.3.10	मजदूर आन्दोलन	58
2.3.11	कांग्रेस का कराची अधिवेशन	63
2.3.12	कांग्रेस में वामपंथी पक्ष का उभरना	64
2.3.13	किसान एवं विद्यार्थी संघ	65
2.4.1	प्रगतिशील आन्दोलन की साहित्यिक पृष्ठ भूमि यथार्थवादी साहित्य सृजन - प्रतापनारायण मिश्र एवं सरदारपूर्ण सिंह के निबंध	67
2.4.2	छायावाद का अवसान और प्रगतिशील साहित्य का अंकुरण पंत, निराला, प्रेमचन्द्र	69
2.4.3	अखिल भारतीय लेखक संघ का कार्य कलाप	71
2.4.4	अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय अधिवेशन	72

पृष्ठ संख्या

2.4 5 अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन 73

2.4.6 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का तीसरा अधिवेशन 74

2.4.7 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अधिवेशन 74

2.4.7 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवा अधिवेशन 75

2.4.8 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का छटा अधिवेशन 75

2.5 निष्कर्ष 77

तृतीय अध्याय

नागार्जुन की प्रगतिशील चेतना की पृष्ठभूमि और प्रेरणास्त्रोत 80

3.1 प्रगतिशील चेतना की पृष्ठ भूमि 80

3.2 प्रकृति से प्रेरणा - पीपल के पीले पत्ते 81

3.3 क्रांतिकारी देश भक्तों से प्रेरणा 83

3.5 श्री लंका प्रवास 84

3.6 सन् 1939 का चम्पारन का किसान आन्दोलन 85

3.7 रविठाकुर, प्रेमचन्द्र, भारतेन्दु, निराला का प्रभाव 85

3.8 शिशुओं से प्रेरणा 87

3.9 धार्मिक शोषण - भगवान एक कल्पना, दिवाली 89

3.10 नारी शोषण के विरूद्ध बगावत - भिक्षुणी, अहल्या 91

3.11 सरकारी वितरण प्रणाली और कृत्रिम अभाव की स्थिति 93

3.12 युवा पीढी: परिवर्तन की आशा का एक मात्रा केन्द्र 94

पृष्ठ संख्या

3.13 नेहरू नीति का विरोध कामन वेल्थ 98

3.14 भुखमरी और गरीबी 100

3.15 पूँजी पतियों की ठाठ पूर्ण जिन्दगी 101

3.16 समसामयिक साहित्यकार - अज्ञेय, केदार, फूलबाबू, राज कमल 103

3.17 नक्सली प्रतिहिंसा 105

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन की कविता में सामाजिक संदर्भ 108

4.1 समकालीन समस्याओं का यथार्थ निरूपण 108

4.2 ग्रामीण जीवन और किसान 110

4.3 नारी की शोचनीय सामाजिक स्थिति 114

4.4 देश की भावी पीढी - तरूण भारती 119

4.5 मजदूर वर्ग - शोषण 123

4.6 दलित वर्ग 126

4.7 दोष पूर्णशिक्षा प्रणाली और शिक्षा व्यवस्था 130

4.8 अर्थ व्यवस्था 130

पाँचवां अध्याय

नागार्जुन की कविता में सांस्कृतिक पक्ष 134

5.1 संस्कृति - व्युत्पत्ति - परिचय, घटक 134

5.2 पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण पर व्यंग्य 137

5.3 धर्म की विकृति पर व्यंग्य 141

5.4 सत्य का अवमूल्यन 147

5.5 अहिंसा की उपहासास्पद स्थिति 149

पृष्ठ संख्या

5.6 सौन्दर्य - शाश्वत मूल्य - साहित्य के लिए प्रेरणा का उद्‌गम 152

5.6.1 प्रकृति सौंदर्य 153

5.6.2 शिशु सौंदर्य 153

5.6.3 नारी सौंदर्य 160

5.7 कर्म का महत्व 165

5.8 साहित्य उचित(नुचित - साहित्यकार का कर्तव्य 169

5.9 विश्व बंधुतव की भावना 171

5.10 शिवम् संपूर्ण मानव जाति के उज्जवल भविष्य की चिंता एवं कामना 173

छठा अध्याय

नागार्जुन की कविता में राजनीतिक संदर्भ 177

6.1 भ्रष्टाचार 181

6.2 चुनाव एक प्रहसन (टिकट वितरण) 188

6.3 नेताओं का व्यवहार 193

6.4 प्रजातंत्र पर व्यंग्य 199

6.5 राजनीति में पुलिस का अनुचित प्रयोग 204

6.6 आपात काल पर व्यंग्य 208

6.7 कॉमन वेल्थ और नेहरू की विदेश नीति 214

6.8 गांधी के नाम पर राजनीतिक लाभ 218

6.9 पूँजीवाद की आलोचना 223

6.10 फासीवाद पर व्यंग्य 225

6.11 गलत कम्युनिस्ट नीति की आलोचना 231

6.12 वंशवाद पर व्यंग्य 236

पृष्ठ संख्या

सप्तम अध्याय

नागार्जुन की कविता में शिल्पगत प्रयोगशीलता और संप्रेषण में प्रगतिशीलता 240

7.1 छन्दों के नए तथा प्रगतिशील प्रयोग 242

7.2 नागार्जुन की कविता में भाषायी प्रयोग 249

7.3 संप्रेषण की प्रगतिशीलता के लिए अलंकार 255

7.4 कविता में नाटकीय तत्व 260

7.5 लोकनृत्य एवं संगीत 262

7.6 शब्दचित्र प्रस्तुति 263

अष्टम् अध्याय

समकालीन कविता में नागार्जुन का महत्व 265

8.1 आरम्भ से अब तक सामाजिक चेतना से भरपूर 268

8.2 समस्त आक्षेपों और आलोचना से निरपेक्षकर्तव्योन्मुख 281

8.3 सामाजिक दायित्व का निर्वाह 284

8.4 समकालीन और जन सामान्य से लगाव 286

नवम् अध्याय (उपसंहार)

सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण तथा कर्म, करण और कारण का समन्वय प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त जनकवि के रूप में नागार्जुन की प्रतिष्ठा। 288

संदर्भ 296

xxxxxxxxxxxxx

प्रथम अध्याय

प्रगति शीलता एवं प्रगतिवाद स्पष्टीकरण

यह निर्विवाद एवं लोकमान्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है कि साहित्य मानव से जुड़ा रहकर मानव के व्यक्तित्व के विकास - उसकी सर्वांगीण उन्नति और समाज में उसके महत्व को प्रतिपादित एवं रेखांकित तो करता ही है, साथ ही समाज को नित्य निरन्तर विकासमान बनाए रखने के लिए एक स्फूर्तिदायक एवं शक्तिवर्द्धक टॉनिक का काम करता है। ठहरे हुए जल में काई और सड़न पैदा होने की आशंका जिस प्रकार बनी रहती है उसी प्रकार यथास्थिति रहने वाला समाज सजीवता और संवेदनशीलता खो बैठने के खतरे से बच नहीं सकता। साहित्य और उसका प्रणेता समाज से जुड़े होने के कारण ऐसी स्थिति में मूक दर्शक नहीं रह सकते। सन् 1688 में शासक और शासित के संघर्ष में इंग्लैंड के साहित्यकारों ने जो निर्णायक भूमिका अदा की उसके कारण यह रक्तहीन क्रांति सफल रही और उसका प्रभाव परवर्ती समाज और साहित्य पर विश्वभर में परिलक्षित हुआ। अठारहवीं शताब्दी समाप्त होने से काफी पहले ही प्रसिद्ध दार्शनिक - चिंतक रूसो का कथन Man is born free but found in chains समाज को आंदोलित और उद्वेलित करने लगा था। मानव समाज की स्वतंत्रता को कुचलने वाले षडयंत्र कारी साम्राज्यवाद को करारी शिकस्त मिली सन् 1786 में अमेरिकी जनता के संयुक्त और सफल विद्रोह के रूप में, जिसने ब्रिटेन के विस्तारवादी साम्राज्यवाद को जनशक्ति और जनांदोलन के महत्व पर सोचने-महसूस करने पर विवश किया। पूर्ववर्ती घटनाओं ने समूचे सोते हुए पाश्चात्य जगत को झकझोर कर रख दिया जिसके परिणाम स्वरूप दलित, पीड़ित और मजलूम किसान - मजदूर वर्ग में एक नई चेतना का उदय हुआ - उसने अपनी शक्ति का शायद पहली बार एहसास किया जिसका प्रतिफलन हुआ फ्रांस की क्रांति के रूप में सन् 1789 में। किसी क्रांति की सफलता उसके भागीदारों को प्राप्त होने वाले तात्कालिक लाभों में नहीं वरन् इस बात में निहित होती है कि उसने परवर्ती समाज को सोच की एक नई दिशा, जीवन पद्धति में परिवर्तन और समाज के ढांचे में बदलाव लाने में क्या योग

दिया सामाजिक परिवर्तन की इस लहर से यूरोप और एशिया सबसे अधिक प्रभावित हुए।

1.1 व्युत्पत्ति

उन्नीसवीं शताब्दी में आवागमन और संचार के साधनों तथा घुम्मकड़ों द्वारा सामाजिक परिवर्तन और जन शक्ति के महत्व का प्रचार और भी जोर पकड़ता गया। इसी के परिणाम स्वरूप भारत में जनसमर्थन और साधारण जन की भागीदारी के बलबूते पर सन् 1857 में विस्तारवादी ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष का शंख फूंका। राजनीतिक रूप से भले ही यह क्रांति असफल रही हो किन्तु सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से यह अपने आप में सफल रही। इससे पूर्व सन् 1848 में कार्ल मार्क्स और ऐंजिल साम्यवाद का घोषण पत्र Communist Manifesto प्रकाशित कर चुके थे जिसमें विश्वभर के सर्वहारा वर्ग को एक होकर, साम्राज्यवाद के व्यूह को तोड़ कर एक नए स्वस्थ समाज की संरचना के लिए एकजुट होने का आवाहन किया गया था। इस राजनीतिक परिवर्तन का समाज पर जो प्रभाव पड़ा उसका साहित्य में भी परिलक्षित होना स्वाभाविक था, फलस्वरूप वर्ग संघर्ष, किसान-मजदूरों के संघर्ष का चित्रण एवं सामाजिक न्याय को स्वर देने वाली रचनाएँ प्रकाश में आनी आरम्भ हुईं। बीसवीं शताब्दी राजीनति, विज्ञान, समाज और साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तनों का लम्बा सिलसिला लेकर आई। सन् 1917 में जारशाही का अन्त और बोल शेविक क्रांति की सफलता ने समूचे विश्व में जहाँ साम्राज्यवाद की नींद हराम की वहीं उपनिवेशवाद के जुए तले पिसते कराहते देशों के बुद्धिजीवियों के लिए सर्वहारा - एकता को आकर्षण का केन्द्र बना दिया। वैसे तो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही भारतीय साहित्य मनीषियों ने कार्ल मार्क्स की पुकार के बाद ही अपने दायित्व को समझकर ब्रिटिश साम्राज्य की विस्तारवादी नीति के प्रति अपनी असहमति और विरोध दबे दबे स्वर में प्रकट करना आरम्भ कर दिया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाएँ - भारत दुर्दशा - में देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा का पर्दाफाश किया गया है- प्रेम जोगिनी में भारतेंदु जी ने समाज में विद्यमान पाखंडमय धार्मिक और सामाजिक जीवन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। (रा0च0 शुक्ल : हिं0सा0 का इतिहास पृष्ठ

3।4) सन् ।900 में सरस्वती पत्रिका का जन्म हिन्दी जगत में एक महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई हुई जिसने उदीयमान साहित्यिकों को एक नया मंच प्रदान किया।

रूसी क्रांति ने साहित्यकारों को एक नया दिशा निर्देश किया तथा साहित्य को समाज और राजनीति में वाँछनीय परिवर्तन की भूमिका अदा करने के लिए आहूत किया। अब साहित्य केवल मनोरंजन का साधन न रहकर सामाजिक बदलाव के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। नियतिवाद और आदर्शवाद, धर्म के मुखौटे लगाकर सामाजिक उत्पीडन और आर्थिक शोषण एवं सामाजिक विसंगतियों के विरूद्ध साहित्य ने मोर्चा संभाल लिया जिसकी परिणति प्रगतिवाद के रूप में साहित्य में हुई स्न् 1934 में नवजात प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मेलन हुआ जिसमें लेनिन ने स्पष्ट घोषण की -

Literature cannot be a means of enriching individual or groups, it cannot in fact, be an individual undertaking independent of the common cause of the proletariat. Down with non-partisan writers, Down with Superman.... Literature must be-come a component part of the organised planned, unified socialist party work.

इस प्रकार समाज को धार्मिक एवं परंपरा की रूढ़ियों के बंधन से मुक्त करके विकासोन्मुख बनाने का गुरू दायित्व साहित्यकार के कंधों पर आ गया। कहना न होगा कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दिनों में भारतीय समाज में आर्थिक विषमता तो अपने चरम पर थी ही। गरीबी की चक्की में पिसते मजदूर और किसान जमींदार प्रथा और धर्म के ठेकेदारों के शोषण के निरीह शिकार बने हुए थे। ऐसे समाज को उत्पीड़न से मुक्त करने, धार्मिक आडंबरों का भंडाफोड़ करके जाति-पांति के शिंकजे को तोड़ने के लिए स्फूर्ति एवं ऊर्जा प्रदान करने का बीड़ा उठाया हिन्दी में प्रगतिवादी कवियों ने लेखकों ने, मुंशी प्रेमचंद के नेतृत्व में छायावाद की थोथी सुखानुभूति और कल्पनालोक की भूलभुलैया में भटकते कवियों को अपने दायित्व का एहसास हुआ। इसी संदर्भ में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि अब साहित्य समाज की मात्र परछाईं -

दर्पण या पिछ लग्गू न रहकर, प्रगतिवाद का जामा पहनकर, समाजिक परिवर्तन का अग्रदूत बन गया।

1.2 परिभाषाएँ

गतिशबद् में उपसर्ग 'प्र' के संयोग से प्रगति शब्द का निर्माण हुआ हैऔर इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर कह सकते हैं जो गति के पाँव लगा दें; उसे गत्यात्मक बने रहने की दिशा में प्रेरित करे वही प्रगति है किन्तु कालक्षेप के साथ प्रगति शब्द गति का ही समानार्थी हो गया है। आजकल प्रगति विकास के पर्याय के रूप में ही साहित्य और जीवन में ढल गया है और यह गलत भी नहीं है क्योंकि गतिमान रहना ही वास्तव में विकास की प्रक्रिया है। साहित्य के क्षेत्र में प्रगति में 'शील' और वाद प्रत्यय जुड़ाकर दो नए शब्द प्रगतिशील और प्रगतिवाद आज बहुप्रचलित हैं। इन दोनों शब्दों का प्रयोग साहित्य ही नही रोजमर्रा के व्यवहार में जिस कदर तेजी से बढ़ा है उसे देखते हुए यह विचारणीय हो जाता है कि वास्तव में इन दोनों शब्दों का अभिप्राय क्या है। जहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद को मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा रहा है, वहीं 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील साहित्य' के पारस्परिक सम्बन्धों में समीक्षकों और विचारकों में काफी मतभेद है। श्री शिवदान सिंह चौहान एक ओर प्रगतिवाद को मार्क्सवादी विचारधारा की सौंदर्यात्मक साहित्यिक अभिव्यक्ति मानते हैं।[1] दूसरी तरफ श्री चौहान प्रगतिशील कविता के मामले में किसी वाद विशेष से उसके जुड़े होने के कायल नहीं है। उनके अनुसार प्रगतिशील कवि गाँधीवादी भी हो सकता है और मार्क्सवादी भी। इस प्रकार ऐसा साहित्य जो पाठक को स्वस्थ प्रेरणा देकर मानवीय मनोवृत्तियों का विकास करके उसे जीवन संग्राम में आगे बढ़ने का

1- शिवदान सिंह चौहान : प्रगतिवाद, साहित्य की समस्याएँ पृष्ठ - 54 प्रगतिवाद को सौंदर्य शास्त्र सम्बन्धी मार्क्सीय दृष्टिकोण का हिन्दी नामकरण समझना चाहिए।

बल और साहस देता है, मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक, और संवेदनशील बनाता है, हिंसा और द्वेष से विमुख करके जीवन की मार्मिक और महत्वपूर्ण स्थितियों का चित्रण करता है, वह सब प्रगतिशील है।"[1] इस प्रकार हम कह सकते हैं श्री चौहान के मत से उच्च कोटि का वह समस्त साहित्य जो मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित हो वही प्रगतिशील है अथवा मनुष्य को निरन्तर श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाला ऐसा साहित्य जो उसे जीवन संघर्ष हेतु अनुप्राणित करता चले प्रगतिशील साहित्य ही होगा। इस प्रकार श्री शिवदान सिंह चौहान की विचारधारा महान उपन्यासकार और युग प्रणेता मुंशी प्रेमचंद की इस धारणा से काफी मेल खाती है कि सभी श्रेष्ठ लेखक और विश्व का श्रेष्ठ साहित्य प्रगतिशील होते हैं। डा0 नामवर सिंह भी प्रगतिवाद और प्रगतिशील को समानार्थी ही मानते हैं।[2]

इस प्रकार प्रगतिशील काव्य मनुष्य के दृष्टिकोण को विकसित करके उसकी चेतना पर क्रांति की धार रखने का कार्य करता है, अकर्मण्यता से कर्मठता की ओर, निराशा से आशा की ओर उन्मुख करके 'स्व' को 'पर' से जोड़ने की प्रक्रिया है। डा0 रामविलास शर्मा के अनुसार प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करने वाला साहित्य है।[3]

जन सामान्य से जुड़े साहित्यकार की शास्त्रीय दृष्टि चाहे जो भी क्यों न हो यह निश्चित है कि वह सामान्यजन के प्रति अपनत्व की भावना से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकेगा और तब उसकी लेखनी से जो नि स्सृत होगा वह निश्चय ही मानव समाज के जन-जन के कल्याण की भावना से ओतप्रोत होगा। शायद इसी कारण डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय भी यह मानते हैं कि प्रगतिवाद को केवल मार्क्सीय सौंदर्य शास्त्री दृष्टि तक सीमित

1- शिवदान सिंह चौहानः प्रगतिवाद का प्रवृतिनिरूपण - साहित्य की समस्याएँ , पृष्ठ 62
2- आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा0 नामवर सिंह पृष्ठ 50
3- साहित्य की परम्परा : प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ पृष्ठ 35

करना समीचीन नहीं होगा और वह उस समस्त साहित्य को जो प्रगतिवादी दृष्टिकोण को आधार बनाकर लिखा गया हो प्रगतिशील साहित्य मानते हैं।[1]

डा0 नामवर सिंह के वियार भी प्रगतिवाद और प्रगतिशील के बारे में लगभग समान ही हैं। उनके अनुसार जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं हैं। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि-विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध भाव छिपा है।[2]

रूढ़ि की चट्टानों और अंधविश्वासों के कपाटों को तोड़कर सामाजिक यथार्थ को आधार मान कर जनमन को टटोलते हुए, समता और परिवर्तन की कल कल ध्वनि के साथ बहने वाली काव्य धारा ही वास्तव में 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रगतिशील साहित्य के नाम से लोकप्रिय हुई। युग की आवश्यकताओं ओर आकांक्षांओं को जानने वाले एक नवीन समुदाय का साहित्य के बीच अविर्भाव हुआ , जिसने अपने आपको प्रगतिवादी कहा ओर जिसकी रचना प्रगतिशील कही गई।[3] सुमित्रानंदन पंत ने युगान्त के प्रकाशन के साथ ही छायावादीयुग की समाप्ति और प्रगतिवादी युग के आगमन की घोषणा कर दी थी इस संदर्भ में डा0 नामवर सिह का कथन दृष्टव्य है : "छायावाद के गर्भ से सन् 1930 के आस पास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ उसे ही सन् 36 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई।[4] कहना न होगा कि इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर युग में प्रगतिवादी और प्रगतिशील साहित्य के बीच यदि कोई विभाजक रेखा थी भी तो वह धूमिल होते होते बिल्कुल विलुप्त ही हो गई थी और प्रगतिवादी साहित्य के पर्याय के रूप में ही आज के

1- डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : आधुनिक हिन्दी कविता पृष्ठ 378, 417
2- आधुनिक साहित्य की प्रवृतियां : डा0 नामवर सिंह पृष्ठ 57 एवं 60
3- डा0 केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत पृष्ठ 199
4- आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ : डा0 नामवर सिंह पृष्ठ 50

आलोचक 'प्रगतिशील साहित्य' संज्ञा का प्रयोग धड़ल्ले के साथ करते हैं और वस्तुतः यही ठीक भी है।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की दहलीज तक पहुंचते पहुंचते प्रगतिशील शब्द ने और भी विस्तार प्राप्त कर लिया और अब इस शब्द का प्रयोग इतने व्यापक रूप से किया जा रहा है कि आज का साहित्यकार स्वयं को प्रगतिशील कहलाने में गर्व का अनुभव करता हैं क्यों कि साहित्य जगत में हर वह रचना जो जन-भावना से जुड़ी है और जन-मन की अपेक्षाओं और आकाक्षांओं का प्रतिनिधित्व करने का माध्यम है अब जनवादी या प्रगतिशील कहलाती है। जन सामान्य काहित-चिन्तन, उपेक्षित सर्वहारा वर्ग की समाज में और सरकार में हिस्सेदारी , किसान, मजदूर पीड़ित और पिछड़े वर्ग को दया नहीं गौरव दिलाना ही प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। यथार्थ परक रूचि से सम्पन्न ऐसी कोई भी रचना जो सामूहिक जन-चेतना की लहर का काम करे, जन-मन के अछूते अंधेरे कोनों को झांकने में सक्षम हो और पाठक के मन मे नए सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन का उफान पैदा कर सके , सामाजिक ढाँचे के परिवर्तन के लिए जो प्रेरणा का स्रोत और युवापीढ़ी का कंठहार बनकर रूढ़ियों, अंधविश्वासों , साम्प्रदायिकता और परम्परा की दीवारों के बोझ तले दबती दम तोड़ती कराहती सामाजिकता का उद्धार करके उसमें नई जिन्दगी भर दे; प्रगतिशील साहित्य की धरोहर कहलाएगी। प्रगतिशील साहित्य अतीत के गौरवमान को अपना लक्ष्य न मानकर वर्तमान के हलाहल से जूझने वाली विधा है। यथार्थवादी चित्रण प्रगतिशील काव्य का प्रमुख अंग है। इसमें वायवी कल्पना एवं व्यक्तिवाद के लिए कोई स्थान नहीं है बल्कि यथार्थ को वस्तुगत और सामाजिक रूप में स्वीकार करने का आग्रह निरन्तर बना रहता है। प्रगतिवाद का उद्देश्य क्रांतिकारी सामाजिक दृष्टिकोण से एक वर्गहीन समाज की स्थापना में योगदान करना है। यही कारण है कि प्रगतिशील साहित्य जीर्ण-शीर्ण, पतनोन्मुख समाज को ध्वंस कर के एक नए, भव्य समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य मानकर चलता है जिसमें समाज के शोषक तत्वों, यथा - सेठ- साहूकार, पंडे-पुजारी, सामन्त और सूदखोरों का समूल सफाया तो निश्चित ही है। कह

सकते है, 'प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमं जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रक्षय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।' प्रगतिवादी का उद्देश्य वस्तुतः छायावाद काल की पतनोत्मुखी विकृतियों को नष्ट करके यथार्थ की स्थापना के साथ साथ साहित्य को वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचार धारा से अनुप्राणित करके साहित्य को सर्वहारा क्रांति का साधन बनाया था। यद्यपि इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई परन्तु इस का उद्देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संगठित करना था जिससे एक नए समाज की स्थापना हो सके जिसमें सबको समान अवसर मिलने की पूरी पूरी उम्मीद थी।

"उसकी (प्रगतिवाद की) आत्मा साम्यवाद, दृष्टि रूसके सामाजिक इतिहास पर, प्रेरणा राजनीतिक मंतव्यों द्वारा अनुशासित और कल्पना प्रोलेतरियत सत्ताशाही से अनुप्राणित थी उसकी खोज उस नए मानव की थी जो समस्त पतनीशील प्रवृतियों के विरोध में वांछित स्थापनाओं को विकसित करके एक प्रोलेतरियत शासन सत्ता को उभरने का अवसर दे। इसकी मूल स्थापना सैद्धांतिक रूप से प्रगतिशील थी इसलिए इस साहित्यिक आन्दोलन को प्रगतिशील आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है।"[1]

प्रगतिशील चेतना का जन्म हिन्दी साहित्य में वैसे तो भारतेन्दु के साथ ही हो गया था तथापि कहा जा सकता है कि प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पश्चात उसे एक ठोस भावभूमि और आधार प्राप्त हो गया कारण स्पष्ट है रूसी क्रांति की सफलता के पश्चात् निर्धनता, गुलामी और शोषण की शिकार भारतीय जनता में समाजवाद के प्रति एक सहज कौतुहल और स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होना ही था क्योंकि इस विचारधारा ने स्वाधीनता के स्वप्न को साकार करन के लिए नए आयाम जो खोले थे। अनेक सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक उतार-चढावों के बावजूद प्रगतिशील काव्यधारा हिन्दी साहित्य में आज आकर्षण का मुख्य विन्दु बनी हुई है।

1- हिन्दी साहित्य कोश खण्ड 2 पृष्ठ 511 संस्करण संवत 2020

'यह काव्य धारा अपना सम्बन्ध हिन्दी की भारतीय परम्परा से जोड़ती है और भावी समाज से भी जबकि वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक दृष्टि भी अपनाती है।'[1]

ध्यान देने की बात यह है कि बीसवीं शताब्दी में चालीस के दशक में जो कविता आई वह सामूहिक जन चेतना की लहर के रूप में अवतरित हुई, वह एक ऐसी साहित्यिक क्रांति थी जिसमें व्यक्तिगत उद्‌गारों और आत्मानुभावों के स्थान पर जन-मन की पैठ पर अधिक जोर दिया गया तथा साहित्य को आम जनता से जोड़ने की पैरवी और पुरजोर कोशिश ही नहीं एक व्यावहारिक कदम के रूप में हम आगे के दशक में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। कविता की भूमि यथार्थ परक होने के कारण उसे एक समुदाय ने छायावाद की प्रतिद्वंद्वी धारा के रूप में देखा।

डा0 विजय बहादुर सिंह के शब्दों में 'कविता के पुराने जाल समेटे गए और नए जल-थल के वे सोपान खोजे गए जहाँ वह सामूहिक चित्त को अभिव्यक्ति दे सके। पहले व्यक्तिचित्त में से समूह चित्त झांकता था अब समूह चित्त में व्यक्ति चित्त लुप्त हो गया कविता का ताय इससे कुछ घआ अवश्य पर उसकी कांति भी बदली चेहरे की मुद्रा और गति में भी अन्तर आया। आवेग और त्वरा के स्थान पर वैचारिक मंथरता और प्रासदिकता प्रतिष्ठित हुई। कुल मिलाकर कविता का एक नया ही चरण प्रारम्भ हुआ जिसे हम प्रगतिवाद के नाम से जानते हैं। वे कवि ही वरेण्य माने गए जिन्होंने गाँव, किसान, साम्यवादी, राजनीति और नयी सामाजिकता के अभियान गीत गाए।[2]

समाजवादी विचारधारा की भाव भूमि में अंकुरित प्रगतिशील काव्यधारा ने विकासशील देशों के राजनीतिक और स्वाधीनता आंदोलन को जहाँ एक नए उत्साह से भरा वहीं स्वातंत्रोयत्तर भारत में इस काव्यधारा ने जन नेताओं के लिए एक मशाल का काम किया ताकि

1- डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ 119
2- डा0 विजय बहादुर सिंह : छायावादोत्तर काव्य धारा (भूमिका) पृष्ठ 25

वे यथा: प्राप्त सुख सुविधा के अंधेरे में अपने लक्ष्य समाजवाद की स्थापना से न भटक जाएँ। फलतः प्रगतिशील कवियों में से अनेक में भटकाव के बावजूद केदारनाथ अग्रवाल , राजकमल नागार्जुन तथा राम विलास शर्मा जैसे कवियों में अपने मुरूतर कर्तव्य के प्रति एहसास बराबर बना रहा। सुविधा भोगी राजनीति के ठेकेदारों और समाज को अंधेरे में रखकर अपना उल्लू सीधा करने वाले पाखण्डी नेताओं और नव-धनाढय वर्ग के प्रति प्रगतिशील कवि का स्वर मुखर ही नहीं कर्कश भी बना रहा।

1.3 प्रगतिशील साहित्य के प्रमुख आंगिक तत्व

इधर प्रगतिशील कविता पर एक नया आरोप लगाया गया है कि इसमें खण्डन, आलोचना आक्रोश और विरोध तो है किन्तु कविता में लोच, लावण्य, कोमल भावों की पूरी तरह अवहेलना की गई है वस्तुतः ऐसा है नहीं। कविसुलभ स्वभाव के अनुरूप प्रगतिशील कविता में समाजवादी विचारधारा पर मजबूत पकड़ बनाए रखने के वावजूद इस कविता में वे सभी गुण मौजूद हैं जिनसे पाठक और श्रोता तादात्म्य स्थापित करके प्रक्रिया से रूपरू होता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि -

1- प्रगतिशील काव्य शोषण का विरोध करता है वह मानता है कि आज भी किसान मजदूरों पर सामन्तों और पूंजीवादियों द्वारा अत्याचार हो रहा है। वह मानव इतिहास के विकास को द्वंद्वात्मक दृष्टि से परखता है। किसान मजदूर संगठित होकर इस अवाँछनीय व्यवस्था का अन्त करेंगे। इस अमानवीय शोषण की उपेक्षा कोई भी प्रतिबद्ध मसि-जीवी नहीं कर सकता।

2- प्रगतिशील कविता शोषित की शक्ति को पहचानती है यही कारण है कि प्रगतिशील कवि शोषितों की संगठित शक्ति और उनके उज्जवल भविष्य के प्रति पूरी तरह आश्वस्त हैं क्योंकि वह जानता है कि शोषण इतिहास की गति और मानव स्वभाव - सामाजिकता का विरोधी है।

3- श्रमिक में सौंदर्य देखना प्रगतिशील कवि का स्वभाव है उसका सौंदर्यबोध नैतिक और सामाजिक मूल्यों से जुड़ा है। प्रगतिशील काव्य सहज, सामान्य जीवन में स्थितियों के साथ सम्बन्ध रखता है न कि अलंकृत और काल्पनिक से। खेत में काम करती कृषक नारी और कारखाने में हाड़ तोड़ मेहनत करते मजदूर उसे अपनी वाणी को मुखर बनाने के लिए प्रेरणा देते हैं।

4- सामाजिक एवं आर्थिक विषमता का चित्रण करते समय प्रगतिवादी काव्य व्यंग्य की सहायता भी लेता है। ऊपरी तौर पर मनोरंजन और हास्य लगने वाला ऐसा काव्य मानव हृदय के कोमल भावों करूणा, ग्लानि और वितृष्णा को जागृत करने में सक्षम है। समाजवाद की स्थापना को मद्दे नजर रखते हुए किया गया व्यंग्य अमानवीय शोषण सत्ता और पूंजी के एकाधिकार पर करारी और धारदार चोट करता है।

5- प्रगतिवादी कवि प्रकृति से लगाव रखते हुए उपेक्षित, प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी कविता का विषय बनाता है ऐसे प्रकृति और ग्राम्य जीवन के चित्र उकेर कर वह सहृदय पाठक को न केवल शहर की ओर पलायन को रोकने के लिए कदम उठाने को मजबूर करता है अपितु विलुप्त होती ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों की संस्कृति और प्राकृतिक सौंदर्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सकरार को प्रभावकारी कदम उठाने के लिए बाध्य करता है।

6- प्रगतिशील कविता को प्रेम से एलर्जी तो नहीं है परन्तु वह प्रेम को सामाजिक और मानवीय सम्बन्धों को मजबूत करने के लिए एक आवश्यक उपादान के रूप स्वीकार करती है। प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम को वर्ण और वर्ग भेद मिटाने के लिए आवश्यक मानते हुए प्रेम की एकांतिक पीड़ा का चित्रण भी सामाजिक संदर्भ उत्पन्न करने के ध्येय से किया है।

7- समाजवादी देशों की विदेशनीति, आर्थिक नीति और उद्योगनीति आदि का भी समर्थन एवं अनुकरण हेतु प्रोत्साहन भी प्रगतिशील कविता का वर्ण्य विषय है।

इस प्रकार यह कहना युक्ति युक्त प्रतीत होता है कि मानव-जीवन का कोई भी कोना प्रगतिशील साहित्य की विषयवस्तु बन सकता है। फिर भी यह तो निश्चित है कि प्रगतिशील साहित्यकार मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की श्रेष्ठता को एक व्यापक दृष्टि से देखेते हुए उसे समाज की भालाई के परिप्रेक्ष्य में ही देखने का अभ्यस्त है। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसने जीवन के यथार्थ सत्य को साहित्य में वरीयता प्रदान की। इस आन्दोलन से प्रभावित होने के परिणाम स्वरूप समाज का कटु सत्य ही साहित्य का केन्द्र बिन्दु बनकर पाठक के सामने उभरा। छायावाद काल में कल्पनालोक की सैर करते हुए कवि को समाज के प्रति अपने नैतिक दायित्व का एहसास भी इसी कारण हुआ।

अन्त में यह कहना उचित ही लगता है कि प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमें जीवन के यथार्थ-वस्तु सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला। जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने के लिए उकसाया। प्रगतिवाद का उद्देश्य छायावाद के पतनोत्मुख काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नए सर्वहारा कल्याण से जुड़े समाज और साहित्य की स्थापना करना था। प्रगतिशील चिन्तन के कारण ही साहित्य में समता और भाईचोर के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा संभव हो सकती थी। प्रगतिशील चेतना के प्रभाव से कवि वायवी कल्पना लोक का मोह त्याग कर साहित्य में श्रम-सीकर युक्त साधारण अदना इंसान से नाता जोड़ने को आतुर हो उठा। साहित्य में वर्गसंघर्षरत अहम फहम आदमी हीरो का स्थान पाने में इसीके कारण कामयाब हुआ। इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई, इसका उद्देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संगठित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रतिष्ठापित करना था। उसकी आत्मा साम्यवाद, दृष्टि रूस के साहित्यिक इतिहास पर तथा प्रेरणा राजनैतिक मन्तव्यायों द्वारा अनुशासित थी। उसकी खोज उस नए मानव की थी जो समस्त पतनशील प्रवृत्तियों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित करके एक

प्रोलेतरियत शासन सत्ता को उभरने का अवसर दे। इसकी मूल स्थापना सैद्धान्तिक रूप से प्रगतिशील थी इसलिए इस साहित्यिक आन्दोलन को प्रगतिशील आन्दोलन के नाम से पुकारा जाता है।[1]

1- हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ 511 संस्करण संवत् 2020

द्वितीय अध्याय

नागार्जुन का युग परिवेश

2.1 परिचय एवं पृष्ठभूमि

बीज अंकुरित होकर वृक्ष बनने की प्रक्रिया में जो योगदान मिट्टी, पानी, हवा और धूप का होता है, वही स्थान एक उदीयमान कवि की प्रतिभा को चरमोत्कर्ष की ओर ले जाने में उसके युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश का होता है। नागार्जुन को 'यात्री' बनाने में भी कुछ ऐसी पारिवारिक परिस्थितियाँ सहायक बनी कि उपनाम के अनुरूप बाबा शैशवावस्था से आज तक घुमक्कड़ी का चस्का नहीं छोड़ पाए। अपने नितान्त शैशवकाल में मातृहीन हो जाने के कारण कवि नागार्जुन के व्यक्तित्व में विकास और प्रतिभा में निखार इस तेजी के साथ आया जैसे सूर्य के प्रकाश के अभाव में पौधा लम्बाई में तो तेजी से बढ़ता जाता है किन्तु हरियाली के स्थान पर उसमें पीलापन आ जाता है, वैसे ही मातृ स्नेह से असमय वंचित बालक ठक्कन मिसिर (बाबा का बचपन का नाम) रीतिकालीन और छायावादी परम्परा की प्रेम की पीड़ा के व्यक्तिगत अनुभव को सामाजिक संदर्भ में खोजने की दिशा में प्रवृत्त हो गए। बचपन में पिता के कंधे पर बैठकर गाँव - गाँव घूमने में जो आनन्द प्राप्त हुआ, वही आनन्द तो युवा वैद्यनाथ मिश्र को घुमन्तू फक्कड़ जीवन की ओर ले गया जिसके कारण भले ही कवि के पारिवारिक जीवन में अनियमितता , अभाव और क्षोभ को पनपने का अवसर मिला , परन्तु इसी घुमन्तू प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप वह एक परिपक्व एवं प्रबुद्ध प्रगतिवादी और जनवादी कवि बनने में समर्थ हुए। देश-विदेश के जन सामान्य के जीवन का निकट से पर्यालोचन करने के कारण ही उनकी कविता जन-चेतना की भाव भूमि पर जितनी निकटता से जन सामान्य से जुड़ी है ऐसी निकटता अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है। साहित्य रूपी पौधा समाज की मिट्टी से पोषण प्राप्त करता है। इतना ही नहीं साहित्य को निरन्तर गतिशील बनाए रखने में भी समाज बहुत ही

महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी भी साहित्यकार के जीवन में उसके दृष्टिकोण और भाव-धारा को किसी दिशा विशेष की ओर मोड़ने में उस साहित्यकार के शैशव और युवावस्था के दौरान देश-काल जन्य परिस्थितियों और अनुभूतियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं क्योंकि इन्हीं समसामायिक स्थितियों और समस्याओं से जूझते हुए वह स्वयं तो जीता ही है दूसरों को जीते हुए तथा दम-तोड़ते हुए भी देखता है जिससे विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रतिक्रियाओं का उद्रेक होना सहज संभव है और उसी का प्रस्फुटन उस साहित्यकार की प्रौढ़ रचनाओं में स्वाभाविक एवम् स्वयंस्फूर्त रूप से हो तो कोई अजरज नहीं होगा।

कवि नागार्जुन का तो जन्म ही ऐसे सन्धिकाल में हुआ जब साम्राज्यवाद और सामन्तशाही अपने निरंतर मिटते हुए अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जघन्यतम अमानुषिक उत्पीड़न के चरम पर थी और विश्वभर में उसके प्रति असंतोष के बीज अंकुरित हो चुके थे। बैद्यनाथ मिश्र के जनवादी प्रगतिशील कवि नागार्जुन बनने की कहानी वास्तव में देखा जाय तो देश में उस समय प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि अथवा उसके निर्माण की कहानी का ही एक अंग है। इसलिए कवि नागार्जुन के व्यक्तित्व के विकास को निकट से परखने के लिए यह आवश्यक होगा कि कवि के साहित्य-पटल पर उदय होने के समय की सामाजिक - राजनीतिक, आर्थिक, सॉंस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर एक सरसरी तौर से दृष्टिपात किया जाए।

2.2 सामाजिक पृष्ठभूमि

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यों तो पूरे देश में ही परन्तु विशेषतः उत्तर भारत और उसमें भी बिहार के उस आधुनिक शिक्षा से उपेक्षित और पिछड़े मिथिलॉंचल क्षेत्र में जहॉं नागार्जुन का जन्म हुआ, हिन्दू समाज जाति-पॉंति, बाल-विवाह, ब्राह्मणों में बहुविवाह प्रथा, छुआ छूत, धार्मिक अंध विश्वासों आदि में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। उन दिनों सवर्णों द्वारा दलितों पर जो अत्याचार किए जाते होंगे उनकी तो केवल कल्पना ही की जा सकती है

क्योकि विहार में तो आज भी यह सब आए दिन होता रहता है। नागार्जुन के बाल मन पर दलितों पर होनेवाले इस अत्याचार ने निश्च ही वह अमिट छाप छोड़ी जो 'सपूत क्या ऊपर से टपके है' और 'हरिजन गाथा' जैसी प्रौढ़-परिपक्व रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'प्रगतिशील दृष्टि से किसी भी साहित्य की श्रेष्ठता का पहला आधार यह है कि वह अपने समय की वास्तविकता को उसकी सम्पूर्णता के साथ साथ ठीक ठीक चित्रित कर पाया है या नहीं।'[1] इस परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन की कविता शतप्रतिशत खरी उतरती हैं क्योंकि न केवल नागार्जुन ने अपने समय की सामाजिक समस्याओं का शब्दशः चित्रण किया है अपितु उनसे जूझने की की प्रेरणा जगाकर जनमानस में संकल्प शक्ति भरी और साथ ही अपनी समझ से उनके समाधान भी सामने रख हैं तथा जन सामान्य को कुंठा और निराशा के अंधेरे से बाहर निकाल कर उत्साह, आशा और विजय की ओर उन्मुख करने का सशक्त प्रयत्न किया है। जवानी की दहलीज पर कदम रखते हुए कवि ने भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को नजदीक से देखा और साधारण जनता को विशाल शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के सामने अपने संघर्ष की सफलता के प्रति आशंकित पाया। निश्चय ही ऐसे आतंकित लोग स्वाधीनता के दीवानों के हृदय में धधकती ज्वाला पर ठंडे पानी के छींटे मारने वाले साबित हो सकते थे और इसीलिए कवि की लेखनी से निस्सृत हुई होगी कविता, 'उनको प्रणाम'- जो नहीं हो सके पूर्ण काम

मैं उनको करता हूँ प्रणाम।

कुछ कुंठित और कुछ लक्ष्य -भ्रष्ट
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए
रण की समाप्ति के पहले ही
जो वीर रिक्त तूणीर हुए। उनको प्रणाम
कृत-कृत नहीं जो हो पाए;
प्रत्युत फांसी पर गए झूल
कुछ ही दिन बीते हैं फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल।

उनको प्रणाम (सन् 1936)

ध्यान देने की बात यह है कि 25 वर्ष का युवा जिसने सन् 1930 से सिलसिलेवार लिखना शुरू किया था निश्चय ही अपने समवयस्क मूक बलिदानियों की यशोगाथा की ओर समाज का ध्यान बरबस खींचने की सशक्त चेष्टा कर रहा था। भारतीय समाज में एक आम परम्परा है कि वय से बड़ा होने के कारण हर व्यक्ति समाज में कुछ ऊंचा दर्जा पा ही जाता है। पर कभी कभी पुरानी पीढ़ी के ऐसे ही आत्माभिमानी लोग ऐसे स्पन्दन हीन बन जाते है कि नई पीढ़ी को उभरने और पनपने ही नहीं देते। हमारे समाज में किशोर बालक-बालिकाओं को प्रायः ही यह कह कर झिड़क दिया जाता है, 'बहस मत करो अभी तुम बच्चे हो कुछ समझ नहीं हैं, अभी तुम इस जिम्मेदारी को उठाने के काबिल नहीं हो।' बालक बैद्यनाथ को भी अपने उग्र स्वभाव के पिता के कारण इस प्रकार की डांट-डपट का शिकार अवश्य ही होना पड़ा था। यह प्रताड़ना बच्चे के निष्कलुष मानस पटल पर ऐसे अनचाहे प्रभाव छोड़ती है जिसके कारण भारतीय बच्चे के व्यक्तित्व का संपूर्ण और स्वतंत्र विकास अवरूद्ध हो जाता है। अपने अड़ोस - पड़ोस में हम नित्य ही यह सब घटता देखते हैं कि न तो पिता ही आसानी से गृहस्थी की बागडोर पुत्र के हाथ सौंपना चाहता है और न ही कोई नव-परिणीता अपनी सास से घर के रख-रखाव एवं गृहस्थी की समस्याओं की जिम्मेदारी का कार्यभार ले पाती है जिसके फलस्वरूप आनन्दमय वातावरण कलह में बदल जाता है। क्या इसी अवांछित दखलन्दाजी से ही तंग आकर तो कवि घर बार छोड़ कर श्री लंका में बुद्धं शरणं गच्छामि नहीं हो गया और फिर उस की वाणी 'पीपल के पत्ते' (1938 ई0) के माध्यम से पुरानी पीढ़ी से मुखातिब हो कह उठी -

खड़ खड़ करने वाले, ओ पीपल के पीले पत्ते
अब न तुम्हारा रहा जमाना, शकल पुरानी रंग पुराना
सीख पुरानी ढंग पुराना, अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है

बदल गई ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनिया
हरे-हरे कुछ भूरे-भूरे टूसों से लद रही टहनियाँ
इनका स्वागत करते जाओ, पतझर आया झरते जाओ।

इतना ही नहीं उद्धते कविता के अन्त में कवि स्वेच्छया निवृत्ति लेने वालों को आश्वस्त भी कर देना चाहता है कि आने वाली पीढ़ी अपनी श्रेष्ठता और सफलता का श्रेय अपने पूर्वजों की उदारता को अवश्य ही देगी। फिर क्यो बूढ़ी पीढ़ी जवान पीढ़ी की राह का रोड़ा बन कर अड़ी रहे जिसके कारण दैनदिन जीवन में कडवाहट घुलती है।

पारिवारिक झमेलों से तंग आकर भागे संवेदनशील मानस को विरक्ति के चोले में कैसे चैन मिलता जब जननी जन्म भूमि के प्रति अपने कर्तव्य की उसे सहसा याद आई हो और अध्ययन एंव अनुभव से महसूस किया हो कि जनसामान्य के बीच रहकर सुख दुख के वात्याचक्र को झेलते हुये सामाजिक वैषम्यजन्य जनमन की पीड़ा की ज्वाला में तपकर ही व्यक्तित्व खरा कुन्दन बन सकेगा। सन् 1937 के 'विभूति' , मैथिली मासिक में छपी उनकी कविता मातृभूमि के प्रति उठे इसी दर्द का परिचायक है -

'जीवनक उद्देश्य की, पथ कौन
कैल निश्चित, मुड़ा भेल विलम्ब
बूझि पड़ल कल्याणमय तैं हेतु -
जा रहल छी, एहि दिशि हम अम्ब।'

उपर्युकत पंक्तियों में हमें बाबा के सच्चे कर्मनिष्ठ कर्मयोगी स्वरूप के दर्शन होते हैं और विह्वलता के इन क्षणों में ही उन्होंने निष्क्रिय अकमर्ण्य सन्यासी जीवन त्याग कर फिर से घर-गृहस्थी , समाज और देश से जुड़ने और जीवन की सार्थकता को पाने का निश्चय किया होगा जो आज के परोपजीवी बाबावेश धारियों की आँखे खोलने के लिए काफी है।

भारतीय समाज में धर्मांधता और धर्म के ठेकेदारों का भय इतना व्याप्त था कि एक भारतीय नारी को अपनी जीवनधारा चुनने की स्वतंत्रता उस समय तो क्या इस युग में भी पूरी तरह प्राप्त नहीं हो पाई है। ब्राह्मण जाति में बहुविवाह प्रथा तथा अवांछनीय पर्दा प्रथा तथाकथित उच्चजाति के नारी समाज में कुण्डली मार कर बैठी थी। मिथिलांचल में बहुविवाह के कारण स्त्रियों की दुर्दशा और हीन भावना जन्य कुण्ठा को नागार्जुन ने अपनी तरूणावस्था और युवावस्था में बहुत नजदीक से देखा था। आगे चल कर सन् 1948 में प्रकाशित उनकी रचना तालाब की मछलियों में इसी को लक्ष्य करके शायद कवि यह कहने के लिए बाध्य हो गया -

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं
वनिता घर पल्लव में किं वा
जंबीरी रस-सिक्त मत्स्य खण्डों में
कहीं नहीं अन्यत्र
इन्हीं में
मिलती आई है अमृत द्रव की अशेष परितृप्ति
उन लोगों को ;

× × × ×

हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में
इसीलिये तो, तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया
सात-सात डेवढ़ियों वाली हवेलियों में।

वीसवीं शताब्दी का तृतीय दशक भारतीय समाज में अनेक सुधारों का युग है। वैसे तो समाज सुधार और नव जागरण का सूत्रपात स्वामी दयानन्द सरस्वती और राजा राम

मोहन राय के प्रयत्नों से बंगाल से गुजरात तक हो चुका था फिर भी इसकी शुरूआत तो बंगाल से ही मानी जाती है क्योंकि पश्चिमी सभ्यता संस्कृति और शिक्षा का प्रचार-प्रसार सबसे पहले बंगाल में ही शुरू हुआ था।[1] बंगाल में इस समाज सुधार के अगुवा एक तरफ तो राजा राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ ठाकुर और दूसरी ओर थे कछ भारत के प्रति निष्ठावान उदार हृदय डोराजियों और उसके सहयोगी अंग्रेज, जिन्होंने भारतीय समाज के सबसे पहले कलंक सतीदाह जैसी कुप्रथा को रामाप्त करने के लिए जबरदस्त जन आंदोलन चलाए और कम्पनी सरकार को इसके लिए सहयोग देने के लिए मजबूर किया। कम्पनी सरकार को अपनी सामान्य उदासीनता की नीति को त्याग कर इस क्रूर प्रथा को रोकने के लिए अंततः कानून बनाना ही पड़ा।

राज राम मोहन राय के बाद ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशव चन्द्र रोन ने संभाला । इन महापुरूषों ने हिन्दू समाज में व्याप्त अन्य सामाजिक रूढ़ियों - मूर्ति पूजा, जाति पांति आदि के खिलाफ अभियान आरंभ किया। डोरोजियों और उसके सहयोगियों ने कुप्रथाओं और रूढियों को मिटाने के लिए धर्म का सहारा न लेकर धर्म ही सब कु-संस्कारों की जड़ है।' यह मानकर उसी के विरूद्ध संघर्ष खड़ा किया।[2]

महाराष्ट्र में जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे ने हिन्दू समाज को अपने विचारों और आन्दोलनों से इतना प्रभावित किया कि प्रोफेसर कर्वे के शब्दों में 'लगभग 22 वर्ष का पूना का इतिहास रानाडे के क्रिया कलापों का ही इतिहास रहा।'[3] गोखले रानाडे के उत्तराधिकारी बने और उन्होंने समाज सुधार के इस कार्य को अपने तरीके से आगे बढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु बाल गंगाधर तिलक ने उनका विरोध किया क्योंकि वह रूढ़िवादी कट्टर हिन्दू थे परन्तु श्रीमद् भगवद्गीता की प्रवृतिवादी व्याख्या करके मानव समाज को भाग्य का भरोसा

1- एकण्टम्परेरी हिस्ट्री आफ इंडिया, पृष्ठ 306
2- मन्मथनाथ गुप्त : राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास
3- दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 457

छोड़कर कर्मठ बनने की जो प्रेरणा तिलक ने दी उसके कारण भारतीय समाज सुधार के इतिहास में तिलक का अप्रतिम स्थान है।

2.2.1 स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र और पंजाब में नव जागरण की बागडोर मुख्यरूप से स्वामी दयानन्द सरस्वती के हाथों मे रही। सन् 1875 में उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का दृष्टिकोण और समाज सुधार का तरीका राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज से भिन्न था। जहाँ ब्रह्म समाज पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित होकर यूरोप से आयातित रोशनी से भारतीय समाज में व्याप्त अंधकार को दूर करने का हामी था, वहीं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म को ही पूर्ण सत्य मानते हुए भारतीय समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि हिन्दू समाज अपने सर्वश्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथ में वर्णित विधान से किस प्रकार भटक गया है। 'सामाजिक दृष्टि से आर्य समाज अपने समय का एक बहुत प्रगतिशील आंदोलन था जिसका प्रभाव क्षेत्र पूरा भारत था, लेकिन वेद की अपौरूषेय प्रामाणिकता के रूप में आर्य समाजियों ने एक नए अन्ध विश्वास को जन्म दिया इसमें सन्देह नहीं।[1] फिर भी लोकमान्य तिलक ने भारतीय समाज में स्वाभिमान की भावना जाग्रत करके धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर रूढ़ियों को दूर करने तथा स्वतंत्रता को मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार बताकर जनमानस को दासता की बेड़ियाँ तोड़कर प्रगतिशील विचार अपनाने की जो भावना भरी वह अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना थी।

2.2.2 थियोसोफिकल सोसायटी तथा कूका विद्रोह

जो काम उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने किया, लगभग सामाजिक क्रांति का यही कार्य दक्षिण भारत में थियोसोफिकल

1- डा0 रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृष्ठ 13।

सोसायटी ने भी किया। भगिनी निवेदिता और उनके सहयोगियों ने भारत के जनसाधारण को अपनी शक्ति पहचानने और सभी भेदभाव भूलकर विदेशी साम्राज्यवाद के विरोध में संगठित होने की प्रेरणा दी। इन्हीं दिनों पंजाब में कूका विद्रोह भी हुआ, जिसमें पंजाब के सिखों ने संगठित होकर साम्राज्यवादी ताकतों के दमन और अत्याचार के विरोध का असफल प्रयास किया । यह विद्रोह कूका की हत्या करके यद्यपि बर्बतापूर्वक दबा दिया गया, किन्तु इसने खालसा के सोए हुए स्वाभिमान को जगा कर साहस और पौरूष के संचार में अभूतपूर्व योग दिया।

2.2.3 राम कृष्ण मिशन की भूमिका

इन्हीं दिनों बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी समाज को संगठित करने जाति सम्प्रदाय का भेद भाव भूलकर भाई चारे की भावना जाग्रत करने का अनथक प्रयास किया। उनके उत्तराधिकारी के रूप में स्वामी विवेकानंद जैसे युगपुरूष का भारतीय समाज के मसीहा के रूप में पदार्पण हुआ। स्वामी जी ने देश के युवा वर्ग को विशेष रूप से प्रभावित किया। उन्होंने देश-विदेश की अनेक यात्राएँ करके जहाँ भारतीय संस्कृति के सच्चे रूप का निदर्शन किया वहीं छूआछूत , अशिक्षा, वर्गभेद आदि को मिटाकर समाज के उत्थान की प्रेरणा नई पीढ़ी को प्रदान की। एक ओजस्वी एवं प्रभावशाली वक्ता होने के कारण स्वामी जी शीघ्र देश के युवावर्ग के कण्ठहार बन गए।

2.2.4 रवीन्द्रनाथ टैगोर का योगदान

सामाजिक उथल पुथल साहित्य अथवा काव्य में भी परिवर्तन लाती है। काव्य में नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठापना होती है और नवीन प्रवृत्तियाँ जागृत होकर साहित्यिक मूल्यों में परिवर्तन लाती है। प्रगतिवादी काव्य धारा अपने सामाजिक और ऐतिहासिक जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, इसमें राजनीतिक चेतना का समावेश बाद में हुआ।[1] यही कारण है कि इस सामाजिक चेतना से समकालीन साहित्यकार अपने को अछूता नहीं रख सकता। इन्हीं दिनों बंगला में कवीन्द्र रवीन्द्र जो विश्व मानवता के अपूर्व आलोक स्तम्भ थे, उन्होंने भी ग्रामीण

1- समकालीन काव्य में प्रगतिवादी चेतना : एम. रंगय्या पृष्ठ 28

जनता के दुखदर्द को समझकर ग्रामोत्थान में देश और जाति के उत्थान का स्वप्न देखा। ग्रामीण समस्याओं को निकट से देखने, समझने और सुलझाने की प्रक्रिया को शान्ति निकेतन की स्थापना करके उन्हेांने साकार करना चाहा।

2.2.5 महात्मा गाँधी के सुधारवादी आन्दोलन

अफ्रीका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करके लौटे महात्मा गाँधी यद्यपि मूलतः राजनीतिक स्वतंत्रता के मंत्रदाता के रूपमेंज्यादा ख्यातनाम हुए तथापि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही उन्होंने भारत की दासता से मुक्ति का बीज ग्रामीणजनों को संगठित करने में तुरन्त खोज लिया था और भारतीय समाज की कमजोर नस को भी वह पहचान गए थे। देश के बहुसंख्य दलित कमजोर वर्ग के उद्धार का तो जीवन भर उन्होंने यथा शक्ति प्रयत्न किया ही दूसरी ओर विभिन्न जातियों और संप्रदायों में विभक्त भारतीय समाज की क्षीण शक्ति को संगठित करने की और भी उनका ध्यान गया। समाज सुधार और देश की मुक्ति के आन्दोलन में नारी समाज को सहभागी बनाकर उन्होंने राजा राम मोहन राय के द्वारा छोड़े गए अधूरे कार्य को पूरा करने की पुरजोर कोशिश की। गॉव-गॉव में किसान-मजदूर सभा, हरिजन समाज और महिला मण्डलों की स्थापना करके समाज को प्रगतिपथ की ओर अग्रसर किया। अस्पृश्यता निवारण, मन्दिरों में हरिजन प्रवेश के लिए आन्दोलन और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ पाठशालाओं के संचालन,ऐसे कदम थे,जिनसे आगे चलकर समाज और सहित्य का रूझान प्रगतिवाद की ओर हुआ। दूसरी तरफ समाज पर धर्म की पकड़ के महत्व को समझते हुए उनहोंने जहाँ हिन्दू धर्म की रूढ़ियों को बहला-फुसला कर या मार्गदर्शन करके दूर करने का यत्न किया वहीं हिन्दू और मुस्लिम समाज के आपसी वैमनस्य की खाई को पाटने की भी भरपूर कोशिश की जिससे सब देशवासी जाति पाँति , धर्म-सम्प्रदाय के भेदभाव को भुलाकर, कंधे से कंधा भिड़ाकर देश के स्वाधीनता आंदोलन में प्रभावी भूमिका अदा कर सके। यद्यपि गाँधी जी साम्यवादी मूल्यों के समर्थक नहीं थे किन्तु उनके समाज सुधार विषयक कार्यो ने नागार्जुन जैसे समर्थ प्रगतिवादी कवियों को उनका प्रशंसक बना दिया। इसी कारण सन् 1948 में गाँधी जी की असामयिक हत्या से कवि नागार्जुन ने

विचलित हो कर बापू पर अपनी हृदय स्पर्शी कविताएँ लिखीं जो तत्कालीन सरकार द्वारा जब्त कर ली गईं थीं। महात्मा गाँधी ने भारत के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में हर जाति और वर्ग के नागरिक का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त किया था और जिसे नागार्जुन सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष मानते थे, ऐसे व्यक्ति के असमय में उठ जाने से उनका कवि हृदय विचलित हो उठा और वह शपथपूर्वक कह उठते हैं -

हाँ बापू निष्ठापूर्वक मैंशपथ आज लेता हूँ
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे -
हिन्दू-मुस्लिम सिख-फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी -
सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खण्डहर न बनेंगे
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊंगा। [1]

2.2.6 मुस्लिम नवजागरण

हिन्दू समाज में जहाँ पूर्वोक्त आन्दोलनों के द्वारा विविध प्रकार से समन्वय और सुधार प्रक्रिया चली वहीं मुस्लिम समाज को धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता के कट्टरवादी अंधकार से निकालकर देश प्रेम और आधुनिकता के प्रकाश में लाने के प्रयत्न अनेक मुस्लिम नेताओं द्वारा 19वीं और 20वीं शताब्दी में किए गए और उनके प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय मुसलमान ने देश की मुख्य धारा से जुड़कर देश के उत्थान और स्वाधीनता के लिए अन्य भारतवासियों के साथ सोत्साह हर आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी का परिचय दिया। मुस्लिम समाज के उत्थान और नवजागरण के संदर्भ में सबसे पहले हमारा ध्यान बहाबी आन्दोलन की ओर जाता है। रायबरेली (उत्तर प्रदेश) के सैयद अहमद ने इस्लाम

1- शपथ : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (2) सन् 1948

को परवर्ती प्रभावों और परिवर्तनों से मुक्त कराने के लिए एक ऐसा जबरदस्त आन्दोलन चलाया जिसमें आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हर भारतीय मुसलमान ने उनकी अगुवाई में जमींदारों और उनके हिमायती मुल्लाओं तक के खिलाफ भारतीय मुस्लिम समाज के इतिहास में पहली बार खुल्लमखुल्ला हिस्सा लिया।

2.2.6 (क) सर सैयद अहमद खाँ

सन् 1931 में बंगाल के मुसलमानों ने बहाबियों के नेतृत्व में ही विद्रोह का झंडा अंग्रेजो के खिलाफ उठाया था।[1] सन् 1857 में धर्म और सम्प्रदाय के भेदभाव को भूलकर पहली बार भारतीय जनता का साम्राज्यवादी सत्ता के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह के रूप में सामाजिक आक्रोश रूपी ज्वालामुखी फूटा जिसे किसी प्रकार अंग्रेजों ने दबाने में सफलता तो हासिल कर ली परन्तु विरोध की चिंगारी दमन की राख के नीचे फिर भी छिपी रही। सन् 1870 तक अंग्रेजों की नीति मुसलमानों के प्रति कुछ अधिक दमनपूर्ण थी किन्तु तत्पश्चात इसमें कुछ नरमी आनी शुरू हुई और इस परिवर्तन के पीछे मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खाँ की सक्रिय भूमिका थी। सर सैयद अहमद इस युग के एक महान सुधारवादी मुस्लिम नेता थे। एक ओर वह मुस्लिम समाज में अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के प्रचार द्वारा आधुनिकता का समावेश करके उसे युगानुरूप बनाना चाहते थे, तो दूसरी ओर वह भारतीय मुसलमानों की तुर्की के खलीफा की वफादारी के खिलाफ थे।[2] सर सैयद धार्मिक रूढ़ियों को त्यागकर मुस्लिम समाज को आधुनिकता के ढाँचे में ढालने के लिए जीवन भर प्रयत्नशील रहे। उत्तर प्रदेश में मुहम्मडन ऐंग्लों ओरियेन्टल कालेज (अब अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) की स्थापना कर के उन्होंने इस्लाम को युगानुरूप बुद्धिवादी रूप देने की पुरजोर कोशिश की। मुस्लिम समाज मे पर्दे की कुप्रथा का विरोध करके स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने तथा समाज में युगान्तर पैदा करने का प्रयत्न उन्होंने ही किया जिसके परिणाम स्वरूप आगे चल कर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ने अनेक राष्ट्रवादी एवम् प्रगतिशील मुस्लिम चिन्तकों को देश की सेवा के लिए तैयार किया।

1- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 584-89

2- जवाहर लाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इंडिया पृष्ठ 427

2.2.6 (ख) हाली और शिवली के प्रयत्न

सर सैयद अहमद के बाद हाली और शिवली ने मुस्लिम समाज के विशेषत: पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के, पिछड़े इलाकों में रहने वाले नवयुवको को अत्यधिक प्रभावित किया। शिवली ने भी सर सैयद के अनुकरण पर शिबली शिक्षण संस्थान की नींव रखकर मुस्लिम युवकों को आधुनिकता से रूबरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। साहित्यिक जगत में हाली का मुसद्दस मुस्लिम जागरण के लिए मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती के समान ही लोकप्रिय प्रमाणित हुआ।

2.2.6 (ग) अलीबन्धु और मौलाना आजाद

वैसे तो उन्नीसवीं सदी की अंतिम साँसों के साथ ही भारतीय जनमानस में प्रगतिशीलता की प्राणवायु का संचार आरंभ हो गया था , फिर भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जनवादी लहर ने उसमें और भी जोश भर दिया । सन् 1912 ई0 में भारत के मुस्लिम समाज ने भी एक नई अंगडाई ली। इसी वर्ष दो राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौलाना मुहम्मद अली, ने इस्लाम के अनुयायियों के दिशा निर्देश का बीड़ा उठाया, मौलाना अबुल कलाम आजाद ने एक उर्दू समाचार पत्र 'अल हिलाल' निकाल कर मुसलमानों में नव जागरणी की लहर पैदा करने का जो प्रयत्न किया उसे मौलाना मुहम्मद अली के अंग्रेजी अखबार 'द कामरेड' ने और भी अधिक प्रभावशाली बना दिया। मौलाना आजाद अरबी, फारसी, इस्लामी इतिहास और साहित्य के महान विद्वान होने के साथ-साथ इस्लामी धर्मग्रंथों के अच्छे व्याख्याता तो थे ही, साथ ही भारत से बाहर इस्लामी दुनिया में हो रहे आंदोलनों और सुधारों की भी उन्हें बहुत अच्छी जानकारी थी। परिणाम स्वरूप उनकी शिक्षाएँ मुस्लिम समाज के लिए प्रेरणा स्रोत बन गईं। मौलाना आजाद का दृष्टिकोण उदार, राष्ट्रवादी और बुद्धिवादी था तो दूसरी ओर मुहम्मद अली ने 'खिलाफल आंदोलन' और कांग्रेस के द्वारा चलाए जा रहे स्वाधीनता आन्दोलनों में खुलकर सक्रिय भाग लिया। [1]

1- जवाहर लाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इंडिया पृष्ठ 424-30

2.2.6 (घ) **तुर्की में कमालपाशा के सुधार और उनका भारतीय मुस्लिम समाज पर प्रभाव**

इन्हीं दिनों तुर्की में कमाल पाशा के उदय और खिलाफत की समाप्ति जैसी घटनाओं ने भारतीय मुसलमानों की परमुखापेक्षिता पर करारा प्रहार किया। क्योंकि जिस मुद्दे अर्थात खिलाफत को लेकर हिन्दुस्तानी मुसलमानों द्वारा आन्दोलन चलाया जा रहा था उसे एक मुसलमान द्वारा इस्लाम के गढ़ में ही दफनाने का पूरा पूरा इन्तजाम कर दिया गया। अब तुर्की धर्मनिरपेक्षता और आधुनिकीकरण की राह पर अग्रसर हो रहा था। इन्हीं दिनों मुस्लिम जगत में इस युग के महान दार्शनिक कवि मुहम्मद इकबाल का उदय दिग्भ्रान्त समाज के लिए एक ज्योति स्तंभ सिद्ध हुआ। मुस्लिम नवजागरण में इकबाल की कमोवेश वही भूमिका रही जो हिन्दू नवजागरण के संदर्भ में राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वतीअथवा रवीन्द्रनाथ टैगोर की थी।[1] इकबाल के काव्य में दलित और शोषितों के प्रति हमदर्दी के साथ उनके उत्थान का समर्थन परिलक्षित होता है। उनहोंने समाज में कर्म के प्रति प्रेरणा पैदा की। यह सत्य है कि उनहें पाकिस्तान के जन्म का विचारदाता माना जाता है, फिर भी अपने जीवन के अंतिम दिनों में दार्शनिक इकबाल का झुकाव समाज़वादी विचारधारा की तरफ बढ़ता ही गया।[2]

इस प्रकार दिनकर के अनुसार 19वी और 20वीं शती के इस नवजागरण ने तीन महत्वपूर्ण कार्य किए, 1- निवृति के विरूद्ध प्रवृति की प्रतिष्ठा, 2- अंधविश्वासों के विरूद्ध बुद्धि की प्रतिष्ठा और 3- जीवन के मूल्यों में आनन्द और सौंदर्य के महत्व की स्वीकृति के साथ साथ समाज में नारी को महत्वपूर्ण स्थान और उसको सम्मान का दर्जा दिलाना।[3] वस्तुता भारतीय समाज के उत्थान और साहित्य में प्रगतिशील चेतना के प्रादुर्भाव के लिए इन सुधारवादी नवजागरण आन्दोलनों ने जो भावभूमि तैयार की उसे नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। इन्हीं आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप जनता में जागृति की लहर उठी और अपने

1- दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 605
2- जवाहर लाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इंडिया पृष्ठ 435-36
3- दिनकर : पंत प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त - पृष्ठ 6

अधिकारों को प्राप्त करने की भावना दिनों दिन बलवती होने लगी। यथार्थ का सहारा लेकर मानवता की भावना के प्रसार में तेजी आई। समाजवादी चेतना का प्रचार और प्रसार इस नवजागरण के कारण व्यापक रूप धारण करने लगा क्योंकि यह आन्दोलन व्यापक दृष्टिकोण पर आधारित था। राष्ट्रीयता की एक नवीन चेतना समाज में पनपने लगी और जन जन के मानस में एक स्वतंत्र राष्ट्र की भावना का उन्मेष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज का मानों कायाकल्प होने की पृष्ठभूमि तैयार हो गई।[1] इन आन्दोलनों के सूत्रधार और निर्देशक लोगों की दृष्टि से समाज की कमजोरियाँ छिपी नहीं रह सकी। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों और अन्धविश्वासों की जड़ों पर कुठाराघात करके समाज में फैली कृत्रिम असमानता और वैषम्य को दूर करने की प्रेरणा अपनी जीवनचर्या के व्यावहारिक उदाहरण सबके सामने रख कर दी तथा जनवादी भावना को भली भाँति परिपुष्ठ किया। अब यह स्वाभाविक था कि समाज कि इस भावना का प्रभाव परवर्ती एवं समकालीन साहित्य में तो परिलक्षित होता, साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को इससे एक नया जोश, ताजगी, गति और ताकत भी प्राप्त होती । समाज के युवा वर्ग में जनवादी चेतना का तुरन्त और व्यावहारिक प्रभाव पड़ा, जिसका प्रतिफलन तत्कालीन युवा कवि नागार्जुन की भगवान के प्रति अंध श्रद्धा रखने वाले लोगों की आँखे खोलने वाली निम्नलिखित कविता में स्पष्ट दिखाई पड़ता है -

गन करता है :
मैं उस अगस्त्य सा पी डालूं सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊ फिर इस तट पर
अंत्येष्टि करूं; लकड़ी तो बेहद मंहगी है
इस बालू में दफना दूं
नंगा करके
निर्लज्ज देवतागण ले लेना तुम उसका पीताम्बर
अनमोल रेशमी पीताम्बर

1- प्रो0 एम0 रंगय्या : समकालीन काव्य में प्रगंतिवादी चेतना पृष्ठ 49

2.2.6 (च) पड़ोसी देशों की समाजिक क्रांति

सम्पूर्ण भारतीय समाज में अवशोषण और दमन के प्रतिरोध की भीषण भावना प्रबल हो उठी और साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा पूंजीवाद के विशाल शोषक ढांचे को समूल नष्ट करने की भावना बलवती हो उठी। इस सन्दर्भ में आश्चर्य नहीं कि क्रांति की भावना से ओतप्रोत कुछ कर गुजरने को उतावली युवा पीढ़ी ने अपने अन्तर्मन को टटोल कर अपनी कमजोरियों को पहचाना। प्रगतिशील सामाजिक तत्वों ने आर्थिक - विषमता, नारीपीड़न एवं अशिक्षा, धार्मिक रूढ़ियों और समाज के उच्चवर्ग की सामन्तों तथा पूंजीपतियों से साठगॉठ जैसी सामाजिक बुराइयों को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया। वास्तव में इस नव जागरण काल की सब से बड़ी देन यह मानी जाएगी कि इसके परिणाम स्वरूप भारतवासियों में यथास्थिति के प्रति असंतोष की भावना उत्पन्न हुई तथा साप्रदायिकता और जाति-पाँति की दीवारों को तोड़कर फेंकने में सक्षम अपने बाहुबल के प्रति आस्था सुदृढ़ हुई । आम भारतीय के मन में शायद इस भावना का उदय पहलीवार हुआ कि यदि फ्रांस और रूस के गरीब किसा और मजदूर संगठित होकर साम्राज्यवाद और शोषण के रावण को जला सकते हैं, तो हम क्यों नहीं? किसी भी ह्सव ताकत की अपेक्षा मनुष्य की संकल्प शक्ति, कर्म के प्रति आस्था और स्वयं की समार्थ्य के प्रति आत्मविश्वास उसके उन्नयन के लिए अत्यधिक मूल्यावान और महत्वपूर्ण होते हैं।

अपने पड़ोसी देश में हुए महान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन से प्रेरणा प्राप्त करके सदियों की गुलामी और पिछडेपन से घृणा तथा मानवनिर्मित विभाजकों का भंजन करके शोषण और दम से मुक्त नए समाज की स्थापना की भावना का प्रस्फुटन स्पष्ट रूप से भारतीय समाज में दृष्टिगोचार होने लगा।

2.3 राजनीतिक एवं आर्थिक परिवेश

जिस प्रकार सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश किसी साहित्यकार की मानसिकता को प्रभावित करता है, उसी प्रकार साहित्यकार की मानसिकता और विचार धारा पर

युगीन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ भी अपना प्रभाव डालती और उसके व्यक्तितव को ढालने एवं उसमें लोच पैदा करने में भागीदार होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश सरकार ने प्रभावी ढंग से शासन चलाने और भारतीय समाज पर अपनी पकड़ मजबूत करने के निजी स्वार्थ के कारण रेल एवं संचार व्यवस्था कायम की। इस प्रकार, जहाँ आवागमन के द्रुतगामी साधनों से सरकार को लाभ मिला वहीं उसके न चाहते हुए भी देश के विभिन्न भाषा-भाषियों को आपस में मिलने जुलने का अवसर मिला और साथ ही पत्राचार द्वारा आपसी विचार विनिमय के सुविधाजनक साधन भी उपलब्ध हुए। भारत के कच्चे माल को इंग्लैण्ड ले जाने और उपभोग के लिए तैयार माल इंग्लैण्ड से भारत लाने की इस नई सुविधा ने भारत का आर्थिक दोहन करने में ईस्ट इंडिया कम्पनी को तो सुविधा प्रदान की ही लेकिन इसके साथ नया भारतीय पूंजीपति वर्ग भी धीरे-धीरे उभर कर सामने आने लगा। साधन सम्पन्न वर्ग के नव युवकों ने इंग्लैण्ड की तकनीकी व्यवस्था को समझने के बाद अंग्रेज उद्योगपतियों की भागीदारी में, और कुछेक ने स्वतंत्र रूप से भी, नई तकनीक अपना कर जूट एवं कपड़े की मिलें खोलने की दिशा में अपने कदम बढ़ाए। पहली रेल और कोयले की खान 1857 की सशस्त्र क्रांति से पहले ही खुल चुकी थी। इसी दशक में अंग्रेजो ने कलकत्ता में पहली जूट मिल भी खोली थी।[1] इसकी देखा-देखी भारतीय पूंजी निवेश से स्थापित पहली सूती मिल बम्बई में सन् 1857 ई0 में चालू हुई। सन् 1880 ई0 में भारत भर में कुल मिलाकर सूती मिलों की संख्या 156 तथा उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या 44 हजार हो गई, सन् 1900 ई0 आते-आते सूती मिलों की संख्या बढ़कर 193 तथा कामगारों की संख्या एक लाख 61 हजार तक जा पहुँची।[2]

1- सोवियत एकेडमी आन साइंसेज : कण्टेम्परेरी हिस्ट्री आन इंडिया पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1965 संस्करण भूमिका पृष्ठ 3

2- रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी पृष्ठ 121

2.3.1 औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव

भारत में सामन्त वर्ग के साथ साथ अब एक नये शोषक समुदाय यानी भारतीय पूंजीपति वर्ग का उदय हुआ। यद्यपि ब्रिटिश सरकार की नीति बिना औद्योगीकरण के भारत का शोषण करने की थी। तथापि भारतीय पूंजीपति वर्ग के उत्थान के कारण शोषण में भी प्रतियोगिता आरम्भ हुई और एक दूसरे से अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप भारतीय पूंजी निवेश द्वारा स्थापित उद्योगों की संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी। इस सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है - "यह सच है कि भारत में एक सामाजिक क्रांति लाने में इंग्लैण्ड निकृष्टतम उद्देश्यों से प्रेरित होकर काम कर रहा था, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि इंग्लैण्ड के चाहे जो भी गुनाह रहे हों, क्रांति को लाने में वह इतिहास का अचेतन साधान था।"[1]

यह एक ऐतिहासिक विडम्बना ही थी कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का दायित्व इसी नए भारतीय औद्योगिक एवं पूंजीपतिवर्ग ने संभाला। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई, किन्तु अपने आरम्भ काल में यह संस्था भी अपने ब्रिटिश शासकों की सेविका मात्र थी और इसी स्थापना भी इसी ध्येय के लिए हुई थी।[2]

सन् 1900 ई0 आते-आते भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में कुछ ऐसे भारतीय युवक प्रवेश पा चुके थे जो या तो इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके थे अथवा आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव द्वारा भारत के आर्थिक एवं औद्योगिक ढाँचे पर ब्रिटिश साम्राज्य के कसते हुए शिकंजे और उसके दूरगामी प्रभावों को समझने में सक्षम थे।

2.3.2 राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली लहर

सन् 1905 तक भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीयों को भी काऊसिलों में

1- कार्ल मार्क्स और एंजिल्स : भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857-59 पृष्ठ 15

2- रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी पृष्ठ 129

लिए जाने की नरम दल की विनम्र प्रार्थनाओं तक सीमित था अथवा गरम दल नेताओं जैसे बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, अरविन्द घोष, लाला लाजपत राय आदि के कट्टर हिन्दू राष्ट्रवाद के रूप में बाल विवाह और गोवध समाप्ति के नाम पर जनता के प्रतिक्रियावादी और अंधविश्वासी अंगों को उत्तेजित कर रहा था।[1] उधर ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी पुरानी नीति 'फूट डालो और राज्य करो' का अनुसरण करते हुए धर्म के नाम पर बंगाल-विभाजन की घोषणा कर दी। बंग-भंग की इस घटना ने भारतवासियों में साम्राज्यवाद के प्रति धधकती असंतोष की ज्वाला में घी का काम किया। परिणाम स्वरूप धार्मिक वैमनस्य को भुलाकर आमजनता ने पूरी सामर्थ्य से बंग-भंग का विरोध किया। इसके चले ही विदेशी माल का बहिष्कार तथा स्वदेशी की भावना का उदय हुआ। सन् 1906 ई0 में कांग्रेस के पितामह दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस के राजनीतिक लक्ष्य, स्वराज्य, की घोषण की। सरकार कैसे मूक दर्शक बनी रहती उसने अपना दमन-चक्र और भी तेज कर दिया। इन्हीं दिनों अखबार में साम्राज्यवाद विरोधी लेख लिखने के कारण बाल गंगाधर तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया। तिलक की गिरफ्तारी का विरोध प्रकट करते हुए बम्बई के कपड़ा मजदूरों ने हड़ताल की। यह हड़ताल वास्तव में शोषित वर्ग द्वारा शोषकों और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ खुला विद्रोह और चुनौती थी जिसका अभिनन्दन महान क्रांतिकारी लेनिन ने भारतीय मजदूरों की राजनीतिक परिपक्वता कह कर किया। इस स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप सन् 1909 ई0 में मिण्टो मार्ले सुधार लागू हुआ तथा केन्द्रीय विधानसभा में कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को लेने का प्रस्ताव सरकार ने स्वीकार किया। इन्हीं दिनों राज्यों के भाषावार गठन की बात भी भारतीय आंदोलनकारियों ने उठाई। सन् 1911 ई0 में जनता के दबाब के आगे बंग-बंग रद्द कर दिया गया। इस तरह बीसवीं शताब्दी की शुरूआत भारत में प्रगतिशील तत्वों के लिए उत्साहवर्द्धक रही।

1- एज आफ कन्सेन्ट बिल जिसमें लड़की की उम्र दस साल होने पर ही पति को संभोग की इजाजत थी। रानाडे ने इस बिल का समर्थन किया किन्तु तिलक ने यह कहकर विरोध किया कि यह हिन्दूओं के धार्मिक अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने वाला कानून है।

2.3.3 प्रथम महायुद्ध और उसके राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभाव

सन् 1914 ई0 में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं और जनता के विचार जाने बिना ही भारत को विश्वयुद्ध में धकेल दिया। इतना ही काफी न था। अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु ब्रिटेन ने भारत सरकार को भी स्वेच्छया 10 करोड़ पौण्ड का खिराज इस युद्ध में सहायतार्थ देने हेतु बाध्य किया और महायुद्ध में जबरदस्ती भर्ती किए गए भारतीय सैनिकों की संख्या भी 15 लाख तक जा पहुँची। सन् 1914 ई0 में भारत का राष्ट्रीय ऋण 410 करोड रूपये था जो कि इस थोपे हुए युद्ध के कारण बढ़ते-बढ़ते सन् 1923 ई0 में 781 करोड़ रूपये हो गया।[1] यद्यपि भारत के धनिक वर्ग को इन्हीं दिनों अपने प्रति वफादारी के एवज में अंग्रेजों ने कुछ सुविधाएँ और सम्मान भी प्रदान किए, किन्तु आम आदमी की हालत तो आर्थिक दृष्टि से दिन पर दिन बदतर होती चली गई। इस कारण उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष की भावना अधिक बलवती हो उठी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ही सन् 1914-15 ई0 में एक क्रांतिकारी दल 'गदर पार्टी' ने पंजाब में सरकार के खिलाफ विद्रोह किया जिसे सत्ताधारी अंग्रेजो ने बुरी तरह कुचल दिया।

सन् 1918 ई0 आते-आते रूस की अक्तूबर क्रांति के समाचार विस्तार से भारतीय जनता को उपलब्ध होने लगे और इसके कारण उसमें साम्राज्यवादी अंग्रेज सरकार तथा देशी सामन्तों एवं शोषक साहूकारों के विरूद्ध भावना भड़क उठी। इसका तात्कालिक प्रभाव सबसे पहले अफगानिस्तान पर पड़ा। वहाँ पठानों ने अपना स्वाधीनता-आन्दोलन छेड़ दिया जिसके प्रति सीमाप्रान्त और पंजाब के लोगों ने केवल सहानुभूति ही नहीं प्रदर्शित की, अपितु अनेक भारतीय सैनिक उनका साथ देने के लिए अंग्रेज सेना को छोड़ गए। इसी बीच सन् 1918-19 ई0 में भारत के एक बड़े भूभाग में भयंकर अकाल पड़ा और उसके कारण इन्फलूएंजा की महामारी फैली, फलस्वरूप उत्तर प्रदेश, बिहार उडीसा हैदराबाद बम्बई, पंजाब और मैसूर के विभिन्न क्षेत्रों में लाखो लोग काल कवलित हो गए। अकाल और महामारी के

1- शाह एण्ड खंभाता : वैल्थ एंउ टैक्सेबिल कैपेसिटी आप इंडिया : पृष्ठ 265

कारण कुल मिलाकर लगभग एक करोड़ तीस लाख लोग मौत के शिकार हुए। युद्ध के दबाव के कारण आयात और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के मूल्यों का अनुपात बहुत तेजी से बढ़ा। सन् 1913-14 ई0 की तुलना में निर्यात मूल्यों में जहाँ 25 से 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई वही आयात की जाने चीजों के दामों में यह बढौत्तरी 111 से 168 प्रतिशत तक जा पहुँची। बढ़ते हुए साम्राज्यवादी दोहन, असंतुलित विनिमय, अकाल-महामारी तथा देशी जमींदारों और साहूकारों के आर्थिक शोषण (सूदखोरी) ने छोटे किसानों और भूमि मजदूरों को न केवल खसता हाल बना दिया, बल्कि भुखमरी के कगार पर पहुंचा कर उनमें साम्राज्यवाद तथा सामंतशाही के प्रति घृणा, असंतोष और विद्रोह की भावना को भड़काने का काम भी किया। दूसरी ओर भारतीय पूंजीपति वर्ग की सुदृढ होती स्थिति ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद और इन पूंजीपतियों के बीच टकराव की स्थिति पैदा कर दी। परिणामस्वरूप तत्कालीन भारतीय पूंजीपतियों के समर्थन से परिपुष्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जनसाधारण की आर्थिक दुर्दशा की छाया में अपने लक्ष्य और क्रियाकलापों में परिवर्तन लाने का निश्चय किसा। सन् 1916 ई0 के लखनऊ अधिवेशन में गरमदल और नरमदल के बीच सौमन्स्य स्थापित हुआ। प्रथम महायुद्ध के बाद के वर्षों में भारतीय मजदूरों में जागृति उत्पन्न हुई क्योंकि युद्ध के कारण उद्योगपतियों ने तो खूब मुनाफा कमाया किन्तु मजदूरों की आर्थिक दशा बढ़ती हई कीमतों और पुरानी निश्चित मज्दूरी की दरों के कारण पहले से भी ज्यादा खराब हो गयी। श्रमिक वर्ग में असंतोष के कारण संगठन की भावना जोर पकड़ने लगी, नए-नए मजदूर संगठन उभरने लगे और हड़ताल अब मजदूरों के पक्ष में एक प्रभावी हथियार बन गया।[1] सन् 1920 ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना हुई और अनेक फैक्टरी अधिनियम भी बने। गो कि प्रथम विश्वयुद्ध की विवशतावश ब्रिटिश सरकार ने भारत का औद्योगिक विकास निहित स्वार्थों हेतु किया था, लेकिन भारत के पूंजीपतियों को भी उससे एक नया दिशाबोध हुआ। अपनी समृद्धि का विस्तार करने के लिए उन्होंने अपने ढंग से

1- भारत का सामाजिक सॉस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास : चोपड़ा, पुरी एवं दास पृष्ठ 209 इकानोमिक लाइफ से।

दिलचस्पी लेकर औद्योगीकरण में योगदान किया। किन्तु आने वाले वर्षो में देशी उद्योगपतियों की मुनाफाखोरी को अंग्रेजी उद्योगपतियों के कारण जब ठेस लगी तो उन्होंने अपने राजनीतिक हथियार का प्रयोग कांग्रेस के माध्यम से किया। सन् 1914 ई0 यानी युद्ध के आरंभिक दिनों में सूती मिलों की संख्या बढ़कर 273 और जूट मिलों 64 हो गई। जिनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या बढ़ते बढ़ते भारत की तत्कालीन जनसंख्या का 3.15 प्रतिशत अर्थात् लगभग दस लाख हो गई।[1] बढ़ते हुए औद्योगीकरण ने जहाँ मजदूरों को उनकी दैनिक समस्याओं के कारण संगठित होने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर देशी उद्योगपतियों में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा हतोत्साहित करने वाली नीति के कारण उनमें अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध असंतोष भी उत्पन्न किया। युद्ध के कारण ब्रिटेन की साम्राज्यवादी जकड़ अब भारत पर सर्वांगीण न रह सकी। मॉटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (सन् 1919) के फलस्वरूप उसे राजनीतिक कारणों से भारत को अपनी व्यापार नीति निर्धारित करने में काफी ढील देनी पड़ी। सन् 1921 ई0 में इस निर्णय के फलस्वरूप इस्पात, सूतीवस्त्र, कागज, माचिस, चीनी तथा भारी रसायन उद्योगों के लिए वित्त आयोग का गठन हुआ। अंग्रेजी सरकार और देशी उद्योगपतियों रूपी दो पाटों के बीच पीसे जा रहे भारतीय श्रमिकों के असंतोष के परिणाम स्वरूप कांग्रेस के समर्थ से सन् 1918 ई0 में 'आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना हो चुकी थी। हालांकि अपनी शैशवावस्था में इसमें कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया, फिर भी मजदूरों को अपना स्वर मुखर करने के लिए एक मंच तो प्रदान किया ही। सन् 1918 ई0 में 50 प्रतिशत मंहगाई भत्ते की उचित मांग करते हुए अहमदाबाद की कपड़ा मिलों के मजदूरों ने पहली बार बड़े पैमाने पर अपनी सुदृढ़ एकता एवं परिपक्व बुद्धि का परिचय देते हुए एक सफल हड़ताल का आयोजन किया जिसके गर्भ से बाद में इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जन्म हुआ।[3] जांच समितियों के प्रतिवेदन के अनुसार कि जब

1- एस0सी0 राय चौधुरी : भारत का सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास पृष्ठ 91। (आधुनिक औद्योगिकी का विकास अध्याय से)

2- उपर्युक्त पृष्ठ 92

3- एम0एच0देसाई : ए राइटियस स्ट्रगल संस्करण 1951 पर आधारित

तक मजदूरों का कोई संगठन या मंच नहीं होगा वे अपनी कठिनाइयों से सरकार को किस प्रकार अवगत करा पाएँगे, सरकार ने सन् 1926 ई0 में भारतीय ट्रेड यूनियन एक्टपारित किया जिसमें दिए गए प्रावधानों में था कि सात अथवा अधिक मजदूर मिलकर कोई भी श्रम संगठन बना सकेंगे और उनके हितों को किसी प्रकार से पूंजीपति द्वारा नुकसान पहुँचाए जाने की दशा में कानून हस्तक्षेप करेगा। इससे आगे आने वाले वर्षो में श्रमिक आन्दोलन को बड़ा बल मिला। सन् 1928 ई0 में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधिमंडल ने भारतीय श्रमिकों के जीवन और कार्य-दशा पर अपना असंतोष और आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा कि भारत में श्रमिकों का बुरी तरह शोषण होता है उसके आवास और स्वास्थ्य की ओर से तो पंजीपति वर्ग मानों आँखें ही मूंदे हुए है, जबकि स्वयं वे अंधा धुंध मुनाफा कमाते हैं।

2.3.4 **राष्ट्रीय आन्दोलन की दूसरी लहर - कांग्रेस पार्टी के राजनीतिक आन्दोलन एवं प्रस्ताव**

प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1918 ई0 में समाप्त हुआ। युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों को स्वाधीनता आन्दोलन के उग्र होने का भय था। भारतीय जनता के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन एवं आभार प्रकट करने के बजाय साम्राज्यवादी अंग्रेज सरकार ने मॉटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के आधार पर 18 मार्च 1919 ई0 को भारतीय जनता पर 'रौलेट एक्ट' थोप दिया। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रांतीय एवं केन्द्रीय धारा सभाओं की घोषणा की गई। केन्द्रीय असेम्ब्ली में दो सदनों का प्रावधान रखा गया। निचले सदन में कुल सदस्य संख्या 145 थी जिसमें से 103 का सीधे चुनाव और शेष 42 मनोनीत होने थे। मनोनीतों में 25 सरकारी अफसर तथा शेष अन्य लोग थे। इसी प्रकार 'काउंसिल आव स्टेट्स' में कुल सदस्य संख्या 60 में से 33 चुने हुए एवं 27 मनोनीत प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियों के चुनाव सम्पत्ति, धर्म एवं जाति के आधार पर कराने की योजना एवं घृणित एवं विभाजनकारी कूटनीतिक चाल थी। इसी प्रकार की व्यवस्था प्रान्तीय धारा सभाओं के लिए थी। केन्द्र एवं राज्य दोनों में ही क्रमशः गर्वनर जनरल एवं वायसराय तथा गर्वनर को असीमित एवं निरंकुश सत्ताधिकार प्राप्त थे। इस घिनौने अधिनियम

1- रिपोर्ट आन लेबर कंडीशन इन इंडिया पृष्ठ 10, आर0पी0दत्त की पुस्तक द इंडियन नेशन पृष्ठ 152 से उद्धृत।

के विरूद्ध भारत भर में जगह-जगह प्रदर्शन हुए। 13 अप्रैल, 1919 ई0 को ऐसी ही एक शान्त, विरोध प्रदर्शन हेतु जनसभा जलियाँवाला बाग में हो रही थी, जिस पर अपनी दानवी शक्ति का परिचय देते हुए साम्राज्यवादी सरकार के प्रतिनिधि जनरल डायर के आदेश पर बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरूषों की उस अहिंसक भीड़ पर पुलिस ने 1605 राउण्ड फायर किए। परिणाम स्वरूप 379 लोगों की घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई एवं अन्य 1200 व्यक्ति गंम्भीर रूप से घायल हुए। यह अपने आप में मानवता के नाम पर एक बेमिसाल क्रूरता का कलंक थी।[1] चार महीने तक इस हत्याकांड की रिपोर्ट किसी समाचार पत्र में नहीं छपने दी गई तथा पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया। फिर भी जगह-जगह देशभर में इसके विरोधस्वरूप जनसभाएँ हुईं। पंजाब में 'डंडा फौज' नामक संगठन ने सशस्त्र क्रांति का नारा बुलन्द किया। बर्बर सरकार ने प्रदर्शनकारियों के जुलूसों और सभाओं को तितर-बितर करने के लिए दमन का चक्र तेज कर दिया। कहीं कहीं तो जनसभाओं पर हवाई जहाजों से बम तक गिराए गए। सितम्बर, 1920 ई0 में कलकत्ता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन को संबोधित करते हुए लाला जालपतराय ने क्रांति का आवाहन करते हुए कहा, "यह एक तथ्य है कि हम एक क्रांतिकारी दौर से गुजर रहे हैं - वैसे हम स्वभाव से क्रांति के खिलाफ हैं, किन्तु यह भी एक कटु सत्य है कि कोई भी जीवित प्राणी अपने जीवन काल में क्रांति से एकदम अछूता नहीं रह सकता।"[2] इसी सम्मेलन में गाँधी जी ने असहयोग का प्रस्ताव रखा जो पारित किया गया। इसके अनुसार प्रान्तीय एवं केन्द्रीय धारा सभाओं का बहिष्कार अदालतों और शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार तथा सरकारी नौकरी छोड़ने के लिए अपील जारी करते हुए आम आदमी को चरखा कातने की सलाह दी गई तथा करबन्दी के प्रस्ताव को फिलहाल टाल दिया गया।

दूसरी ओर अंग्रेज अपनी कूटनीतिक चालके द्वारा भारत को साम्प्रदायिक आग में झोंकने की पूरी कोशिश कर रहे थे। उनका ध्येय था कि 'लंदन के आदेश पर हमें यह

1- आधुनिक भारत में प्रशासनिक एवं संवैधानिक सुधार : चोपड़ा पुरी एवं दास पृष्ठ 50
2- रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी पृष्ठ 148

देखना है कि कितना नहीं बल्कि कितने कम से कम स्वशासन के अधिकार से भारतवासियों को भ्रमित रखकर संतुष्ट किया जा सकता है।'[1]

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही ब्रिटेन द्वारा तुर्की पर किए गए हमले के विरोध में भारत में खिलाफत आन्दोलन चला जिसके सूत्रधार मुहम्मद अली और शौकत अली दो भाई थे। राजनीतिक सूझबूझ के अभाव में आम भारतीय मुसलमान इसे खलीफा के अधिकार क्षेत्र में फिरंगी सरकार का दखल मान कर 'खिलाफत आन्दोलन' में शरीक होना अपना मजहबी दायित्व मानता था। वास्तव में इस आन्दोलन ने साधारण मुस्लिम जनता को अंग्रेज सरकार के राजनीतिक विरोध का मोका प्रदान करके खलीफा के अधिकार की रक्षा के नाम पर ही सही उसके मन मे विदेशी सत्ता के खिलाफ भीतर सुलग रही नफरत की आग को खुलकर भड़कने और संगठित होने का सुअवसर प्रदान किया। सितम्बर 1920 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशनमें असहयोग आंदोलन के उद्देश्यों में स्वराज्य के साथ-साथ खिलाफत के समर्थन का प्रस्ताव भी शामिल कर लिया गया। इसी वर्ष दिसम्बर में नागपुर के वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस के संगठनात्मक ढांचे में भी अनेक परिवर्तन किए गये। एक प्रस्ताव द्वारा शांतिपूर्ण तथा उचित उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति कांग्रेस का भावी राजनीतिक लक्ष्य घोषित हुआ। हालांकि गाँधी जी के अनुसार वे ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य चाहते थे, वह भी, यदि हो सके तो केवल शांतिपूर्ण तरीकों से और प्रतिकूल परिस्थितियों में आवश्यकता पड़ने पर ही वे ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर निकलकर स्वराज्य के हिमायती थे।

इसी अधिवेशन मे एक सशक्त जन-आन्दोलन चलाने के लिए कांग्रेस को सशक्त राजनीतिक पार्टी बनाने का प्रस्ताव पारित हुआ। भारत के भाषावार पुनर्गठन पर भी इसी अधिवेशन में चर्चा हुई जिसे बाद मे कांग्रेस समर्थित नीतियों के प्रचार और उनको राजनीति में सक्रिय बनाने के लिए प्रयत्न करने की भी जोरदार वकालत हुई।[2] मजदूरों में एकता

1- जकरिया : रेनेसेन्ट इंडिया पृष्ठ 217

2- कांग्रेस का इतिहास: डा0 पट्टाभिसीतारमैया।

के परिणामस्वरूप जगह-जगह मजदूर संगठनों की स्थापना हुई और अब इन संगठनों के आह्वान पर न केवल स्थानीय समस्याओं के लिए अपितु अन्यत्र भी मजदूरों पर किए जाने वाले जुल्मों के विरोध में अथवा उनकी मांगों के समर्थन में जुलूस अथवा हड़तालों का आयोजन होने लगा। 30 अक्टूबर,1920 ई0 को बम्बई में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का पहला अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में हुआ। बम्बई, कल्कत्ता, अहमदाबाद, लखनऊ के मिल मजदूरों और आसाम के चय बागानों में कार्यरत मजदरों ने अपनी आर्थिक मांगों के समर्थन में उद्योगपतियों पर दबाब डालने के लिए बडी-बड़ी हडतालें की। सन् 1921 ई0 में गाँधी ने असहयोग आन्दोलन शरू किया। इस अहिंसात्मक आन्दोलन को काफी जनसमर्थन मिला जिससे अभिभूत होकर जगह-जगह लोगों ने विदेशी कपड़ों और शराब की दकानों पर धरने दिए, छात्रों ने अंगेजी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया तथा बडी संख्या में लोगों ने सरकारी नौकरियों से इस्तीफा दे कर इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। गांव-गांव में किसान सभाओं का गठन किया गया और भारतीय राजनीति के इतिहास में पहली बार अपनी शोचनीय स्थिति को नियति मानकर जीने वाला सतोषी और दब्बू किसान भी एक नए उत्साह से उत्फुल्ल होकर स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी भूमिका निभाने के लिए सजग और आतु हो उठा। किसान आन्दोलन में 1920 -21 ई0 में तीव्रता का समावेश हुआ। तत्कालीन संयुक्त प्रान्त, मलाबार और पंजाब में इस आन्दोलन ने व्यापक रूप ग्रहण कर लिया। एक तरफ उत्तर प्रदेश मे तो यह आन्दोलन राजनीतिक एव आर्थिक रूप से एक सीमा तक काफी सफल रहा जबकि दूसरी तरफ पंजाब और मलाबार में किसी हद तक धार्मिक रंग से प्रभावित होने के कारण यह काफी उग्र भी हो गया। पंजाब में इस आन्दोलन का रूख गुरूद्वारों की जमीन का उपयोग जमींदारों की तरह करने वाले महन्तों के खिलाफ था जिसमे पुरानी गदर पार्टी के बहुत सारे कार्यकर्ता शामिल थे। इस अकाली आन्दोलन के कारण सन् 1921 ई में तरनतारन और ननकाना साहब में किसानो ने सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरूद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया जिसे दबाने के लिए स्थानीय महन्तों की सांठ गांठ से ब्रिटिश शासको ने निहत्थी किसान जनता पर भयंकर आक्रमण किए जिनमें सैकड़ों किसान मारे भी गए।

2.3.5 मोपला विद्रोह

मालाबार का मोपला विद्रोह यद्यपि धार्मिक कारणों से प्रभावित था तथापि इसकी जड़ में भी मुख्यतः किसानों का सामन्तों और साम्राज्यवादी शासकों द्वारा किया जाने वाला उत्पीड़न और आर्थिक शोषण ही प्रमुख था और उसमें भूमिहीन निर्धन खेतीहर मजदूर ही बिशेष रूप से सक्रिय थे। वैसे मोपला विद्रोह को खिलाफत आन्दोलन से भी प्रेरणा मिली थी, फिर भी यह आन्दोलन खिलाफत आन्दोलन की तरह अहिंसात्मक नहीं रह सका। तिरूरंगादी नामक छोटे से कस्बे पर सन् 1921 ई0 में कब्जा करके मोपलों ने साम्राज्यवाद को खुली चुनौती दे डाली। चूँकि मलाबार क्षेत्र के अधिकतर जागीरदार और साहूकार हिन्दू थे, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने इसे साम्प्रदायिक रंग देने की पूरी कोशिश की। संगठन, प्रशिक्षण एवं अस्त्र-शस्त्रों के अभाव के कारण आधुनिक मारक हथियारों से लैस अंग्रेजी फौज के आगे मोपलों को पराजय का मुँह देखना पडा तथा तीस हजार से अधिक मोपला वीरों ने अपमान का घूंट पीकर विवशतावश सरकार के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। इस विद्रोह में लगभग 3266 मोपले मारे गये और 1825 घायल हए।[1] कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी में मोपला विद्रोह पर निन्दा प्रस्ताव रखा गया।

2.3.6 किसान आन्दोलन (उत्तर प्रदेश)

किसान आन्दोलन का सर्वाधिक संगठित एवं स्वतः स्फूर्त उत्तर प्रदेश के अवध और आगरा मंडलों मे उभरा। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इस आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, 'मुझे उस समय आश्चर्य तो इस बात पर हुआ कि बिना शहरी लोगों की सहायता अथवा राजनीतिक नेताओं की उपस्थिति के यह आन्दोलन किस प्रकार अपने आप इतना आगे बढता ही चला गया। यह आन्दोलन कांग्रेस के आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न था।[2] इस किसानआंन्दोलन के कुछ नेता अंग्रेज सरकार द्वारा गिरफ्तार भी कर लिए गऐ और सन् 1920

1- देखिए कण्टेम्परेरी हिस्ट्री आव इंडिया पृष्ठ 78

2- जवाहर लाल नेहरू मेरी कहानी पृष्ठ 166

ई0 के अन्त मे प्रतापगढ़ की कचहरी में इन किसान नेताओं को सजा सुनाने की प्रकिया के दौरान हजारों किसानों की भीड़ ने कचहरी को घेर लिया। भीड़ के उग्ररूप से घबराकर प्रतापगढ़ के अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने उन सभी नेताओं को छोड दिया।[1] अनपढ़ किसान अपनी इस सफलता पर फूले न समाए और इस तरह शायद व्यवहरिक रूप स पहली बार उन्हें 'संघे शक्ति कलौयुगे' कहावत जीवन मे चरितार्थ होती दीख पडी।

।92। ई0 के आरंभ में राय बरेली म तथा इस वर्ष के अन्त मे फेजाबाद में किसानों ने इसीप्रकार के असफल आन्दोलनों का प्रयास किया किन्तु बर्बर सरकार के आदेश पर मिलिटरी द्वारा गोली चलाने से असंख्य किसान हताहत हुए। कारण अंग्रेज किसी भी हालत में किसानों को उनकी सफलता से उत्साहित और उत्तेजित होकर स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय नहीं होने देना चाहते थे।[2]

उधर कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में फिर एक बार असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव गाँधी जी द्वारा रखा गया जिसका कि लाला लाजपतराय और देशबन्धु चितरंजनदास जैसे वरिष्ठ नेताओं ने विरोध किया। इन्हीं दिनों दीनबन्धु सी0एफ0 एण्ड्रूज ने भारत की स्वतंन्त्रता पर अपने एक लेख में स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भारतवासियों का खुला आवाहन करते हुए लिखा - "स्वाधीनता स्वयं के प्रयत्नों से स्वयं की शक्ति से तुम्हें प्राप्त होगी किसी अन्य देश अथवा स्रोत के प्रयत्नों या विदेशी सहायता से कदापि नहीं।[3] उनके इस लेख ने जवाहर लाल नेहरू और उसके समवयस्क हजारों नवयुवकों को स्वाधीनता आन्दोलन की ओर मुड़ने के लिए अनुप्राणित किया।

2.3.7 अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक अधिवेशन

वाशिंगटन में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक अधिवेशन के प्रस्तावों को एक सीमा

1- जवाहरलाल नेहरू मेरी कहानी पृष्ठ -59,60 (अंग्रेजी मूल संस्करण 1988)
2- जवाहरलाल नेहरू आत्मकथा (अंग्रजी) पृष्ठ 60 से 62 तक
3- वही, पृष्ठ 66

तक स्वीकृति देते हुए सन् 1922ई0 में भारतीय धारा सभाओं ने भारतीय श्रमिक कानून पारित किया और श्रमिक सुधारों की परिधि में विस्तार किया गया। यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में ही अंग्रेजों को भारतीय उद्योग के महत्व का पता चल गया था तथापि वे भारत में तीव्रगति से होने वाले औद्योगीकरणके पक्ष में नहीं थे क्योंकि इससे ब्रिटेन के व्यापरिक हितों को हानि की संभावना थी। यद्यपि श्री एस0एम0जोशी द्वारा श्रमिक संगठन की नींव अब तक रखी जा चुकी थीऔर यह श्रमिक संगठन मजदूर के बच्चों और उनकी स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु निरन्तर प्रयत्न करने के साथ-साथ मजदूरों को राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने की दिशा में भी जागरूकथा। अब भारतीय किसान - मजदूर अपने और बाल बच्चों के पेट भरने की सीमा तक ही न सोचकर समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के माध्यम से अपने देशवासियों और देश के आत्माभिमान से जुड़ने की दिशा में अग्रसर हो रहा था। अपने अधिकार एवं काम के लिए उपयुक्त वातावरण जैसी मांगों को मनवाने के लिए हड़तालें कामगारों का एक महत्वपूर्ण हथियार बन गईं। कांग्रेस के स्वयंसेवक भी किसान-मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए होने वाले आन्दोलनों में सहानुभूतिपूर्ण एवं सक्रिय रूचि लेते हुए भागीदारी हेतु आगे आने शुरू हुए। 4 फरवरी 1922 ई0 को गोरखपुर में किसानों की भीड़ काफी उग्र हो गई। साम्राज्यवादी पुलिस ने जब उसे भागने पर मजबूर करने के लिए गोली चलाई तो दम तोड़ते अपने साथियों के बलिदान का बदला लेने की भावना से किसानों की उग्र भीड़ ने चौरीचौरा के थाने में आग लगाकर अनेक पुलिस कर्मियों को जिन्दा जला डाला। इस किसान आन्दोलन का महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसकी अगुवाई करने वाले नेता किसानों के ही बीच से उठने वाले दलित वर्ग के साधारण एवं गरीब भूमिहीन किसान थे। क्योंकि यह आन्दोलन व्यक्तिगत सम्पति के विरूद्ध एवं हिंसा और बदले की भावना से प्रभावित था, इसके विरोध में और इसे रोकने के लिए गाँधी जी ने अनशन किया और कांग्रेस ने इस आन्दोलन की निन्दा एवं विरोध का प्रस्ताव पारित किया।

2.3.8 प्रिंस आफ बेल्स का भारत आगमन

सन् 1921 में ब्रिटिश युवराज 'प्रिंस आफ वेल्स' अपने भारत आगमन के दौरान जहाँ जहाँ भी गए उनके स्वागत में भारतवासियों ने विरोध सभाएँ एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया। अंग्रेजों ने गांधी जी के अतिरिक्त सभी बड़े-बड़े राजनीतिक नेताओं को पकड़कर जेल में डाल दिया जिससे आन्दोलनों का स्वरूप पहले से कही अधिक उग्र एवं कटु होने लगा। समाचार पत्रों पर इस आन्दोलन के समाचार छापने पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए। 1, फरवरी, 1922 ई0 को गाँधी जी ने वायसराय लार्ड रीडिंग को चेतावनी दी कि यदि सभी राजनीतिक बंदियों को शीघ्र ही जेलों से रिहा न किया गया और समाचार पत्रों पर लगे प्रतिबंधों को न हटाया गया तो उनके आन्दोलनों का अगला कदम करबन्दी होगा।

11-12 फरवरी को बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी की विशेष बैठक में चौरीचौरा की घटना से असहमति प्रकट करने के साथ अवांछनीय एवं अनुशासनहीन आचरण को मद्दे नजर रखकर पूरे असहयोग आन्दोलन को तत्काल वापस लेनेकी घोषणा कर दी गई।

गाँधी जी के इस अप्रत्याशित निर्णय से देश की जनता एवं जेलों में बन्द विशेषकर युवा पीढ़ी के अनेक सक्रिय जुझारू कार्यकता हतप्रभ होकर बौखला उठे। नेहरू ने इस प्रस्ताव के संदर्भ में अपनी आत्मकथा में टिप्पणी की है - 'जब जेलों में बन्द हम लोगों को यह मालूम हुआ कि ऐसे वक्त पेर जब हम सभी मोर्चों पर किसान मजदूर वर्ग की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त करते हुए सफलता की ओर अग्रसर हो रहे थे, यह जानकर कि हमारी लड़ाई बन्द कर दी गई है, हम लोग बहुत क्षुब्ध हुए।'[1]

राजनीतिक समीक्षकों का मत है कि बारदोली का यह प्रस्ताव पूरी तरह मजदूर-किसान वर्ग के हितों के संरक्षण का नारा देते हुए भी शोषित वर्ग के हितों के न केवल खिलाफ था, अपितु साम्राज्यवादी और सामन्ती ताकतों के पक्ष में उनके पस्त जोश को बढ़ाने वाला कदम सिद्ध हुआ । दूसरी ओर स्वतःस्फूर्त जनआन्दोलनों के लिए यह आत्मघाती जहरीला

1- नेहरू : माई आट्रोवायग्राफी पृष्ठ 168

कदम था। जनता के अदम्य उत्सोह के इस आकस्मिक अंत से मानों प्रेरित होकर ही अंग्रेज सरकार ने प्रभावी कदम उठाते हुए हिम्मत के साथ गांधी जी को गिरफ्तार कर मुकद्दमा चलाया और उन्हें 6 वर्ष के कारावास को पुरूस्कार दिया। बारदोली के इस निराशाजनक फैसले और गांधी जी के कारावास के कारण भारतीय जनता में अब एक निराशा जन्य पस्ती का वातावरण उत्पन्न हो गया। न केवल खिलाफत कमेटी ने कांग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद किया, बल्कि मुस्लिम लीग जिसकी आम मुसलमान जनता में राजनीतिक साख अभी कल तक नहीं के बरोबर थी, उसे भी जनता का समर्थन हासिल होने लगा और कालान्तर में वह एक प्रबल राजनीतिक दल के रूप में उभरी। दूसरी तरफ अप्रैल, 1925 ई0 में कलकत्ता में हिन्दू महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें हिन्दू समाज के हितचिन्तक के रूप में उभर कर आयी हिन्दू महासभा पार्टी। इसके समानान्तर दिसम्बर, 1925 ई0 में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ जिसने मुसलमानों को धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर संगठित होने की प्रेरणा दी। इस प्रकार बारदोली के फैसले के कारण भारत की तत्कालीन राजनीति ही नहीं भावी राजनीतिक मानचित्र में उठापटक एवं कटुता के नए अध्याय के जुड़ने की यह एक ऐतिहासिक शुरूआत थी। बारदोली की घटना के बाद कई वर्षों तक स्वाधीनता आन्दोलन को लकवा सा मारे रहा। जनता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत के आर्थिक ढांचे पर साम्राज्यवादी ताकतों की ढीली होती पकड़ को फिर से मजबूत होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। युद्ध के दिनों गठित बहुत सी भारतीय कम्पेनियों का दिवाला ही निकेल गया। सन् 1927 ई0 से 193। ई0 के बीच भारतीय पूंजी का सत्तर प्रतिशत ब्रिटिश बैंकों ने हथिया लिया एवं 154 भारतीय बैंक दिवालिया घोषित हुए।[1]

सन् 1929 ई0 के विश्वव्यापी आर्थिक संकट के आने से पहले ही भारतीय उद्योग का ढांचा चरमराने लगा था क्योंकि 1927 ई0 में भारतीय रूपये का ब्रिटिश पौण्ड की तुलना में अवमूल्यन करके उसकी स्थायी विनिमय दर निश्चित हो गई थी। किसानों पर कर्ज

1- देखिए : डा0 रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता पृष्ठ 116

का बोझ युद्ध आरम्भ होने से पहले की तुलना में लगभग पचास प्रतिशत बढ़ गया। किसानों की निरन्तर बिगड़ती दशा में उन्हें शहरों की ओर पलायन करने और कारखानों में मजदूरी की तलाश में भटकने को मजबूर कर दिया। शहरों के श्रम-बाजार में प्रतियोगिता बढ़ने से पूंजीपतियों को अधिक से अधिक शोषण का अवसर पुनः प्राप्त हुआ । देश की जनता में बढ़ती हुई निराशा, समाज में पनपते सांप्रदायिक वैमनस्य और गिरती आर्थिक दशा में स्वाधीनता आन्दोलन को उबारने के लिए कुछ राजनीतिज्ञ वस्तुतः पहले ही चिंतित हुए थे। कांग्रेस के परिवर्तनवादी धड़े के नेता पं0 मोतीलाल नेहरू एवं देशबंधु चितरंजनदास ने धारासभाओं के बहिष्कार को अनुपयुक्त कदम मानते हुए कांग्रेस के भीतर ही 1923 ई में एक स्वराज्य पार्टी का गठन किया। नवम्बर, 1923 ई0 में होने वाले चुनावों में अंग्रेजों के पिछलग्गू सामन्त एवं पूंजीपति वर्ग ने धारासभाओं की लगभग आधी सीटें जीत लीं। निराशाजन्य इस वातावरण ने कांग्रेस को फिर समझौतावादी रूख लेने के लिए मजबूर किया जिससे उसकी रही सही साख भी जनता में जाती रही।

2.3.9 साम्यवादी दल की स्थापना

इन्हीं दिनों मजदूर एवं किसानों में वर्गचेतना जाग्रत होने के कारण संगठित होने की भावना बलवती होनी शुरू हुई। सन् 1912 ई0 में कार्ल मार्क्स की जीवनी और विचारों पर रामकृष्ण पिल्लै की एक पुस्तक त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित हो चुकी थी। बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, मद्रास और कानपुर जैसे प्रमुख औद्योगिक नगरों में मजदूर के हितों की रक्षा के लिए साम्यवादी समूहों का गठन आरम्भ होने लगा। बंगाल के वामपक्षी दैनिक 'नवयुग' में काजी नजरूल इस्लाम तथा मुजफ्फर अहमद शोषित वर्ग के लोगों को सामन्तवादी एवं पूंजीपति वर्ग के खिलाफ संगठित होकर संघर्ष करने की निरन्तर प्रेरणा दे रहे थे। सन् 1921 ई0 में बम्बई में श्री पादअमृत डांगे ने गाँधी या लेनिन पुस्तक प्रकाशित करके मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के लिए उकसाया। अगस्त, 1922 में उन्होंने 'सोशलिस्ट' नामक एक समाचार पत्र भी बम्बई से प्रकाशित करना शुरू किया। बम्बई के युवावर्ग में साम्यवादी विचारों के प्रति जिज्ञासा और रूचि बढ़नी आरम्भ हुई। श्री डांगे को उनके प्रयासों में सहायता देने वाले एक

उदार हृदय मिलमालिक रणछोडदास लोटवाला थे। उनकी सहायता से बम्बई में साम्यवादी प्रकाशन केन्द्र और पुस्तकालय तथा एक छात्रावास का संचालन होता था। लाहौर में साम्यवादी आन्दोलन के सूत्रधार अर्थशास्त्र के एक प्रवक्ता गुलाम हुसैन थे। उन्होंने लोगों को जाग्रत करने के लिए 'इनकलाब' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इसी प्रकार दक्षिण भारत में सिंगराबेलू चेट्टियार नाम के वरिष्ठ वकील ने साम्यवादी विचारों के प्रचार एवं प्रसार का बीड़ा उठाया और 1922 ई0 में उन्होंने स्वयं को खुल्लम खुल्ला साम्यवादी घोषित कर दिया।

हिजरत के सिलसिले में जो बड़ी संख्या में मुसलमान अफगानिस्तान को गए थे उनमें से कुछ सोवियत रूस पहुँच गए। इसतरह वहाँ से साम्यवादी दल और कार्यकर्ताओं के सम्पर्क के बाद भारतीय साम्यवादी समूह का गठन किया। मास्को और बर्लिन में विदेशी जमीन पर बने इन भारतीय साम्यवादी दलों को अस्तित्व में लाने के पीछे एक महान क्रांतिकारी मानवेन्द्र नाथ राय ने सक्रिय भूमिका निभाई। मानवेन्द्र नाथ राय प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जर्मन हथियारों की प्राप्ति और सहायता की आशा से भारत से बर्मा, हिन्देशिया, चीन, जापान और फिलिपाइन्स होते हुए अमेरिका पहुँचे थे जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, परन्तु वहाँ से किसी प्रकार वे भाग निकले और मैक्सिकों पहुँच गए। मैक्सिको में मानवेन्द्र नाथ वहाँ के मार्क्सवादियों के सम्पर्क में आए और राष्ट्रवादी से मार्क्सवादी बन गए। सन् 1926 ई0 में मानवेन्द्र राय कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल के सदस्य के रूप में चीन गए किन्तु चीनी कम्यूनिस्ट नेताओं से विचारों के स्तर पर मतभेद के कारण उन्हें जर्मनी के 'ब्राडली संगठन' से सम्पर्क रखने के आरोप में साम्यवादी दल से निकाल दिया गया।

2.3.10 मजदूर आन्दोलन

इधर भारत में न केवल प्रौढ वर्ग, अपितु स्कूल कालेजों में अध्ययनरत तरूण पीढ़ी भी साम्राज्यवादी शिकंजे को तोड़ने के लिए उतावली हो रही थी। पूरे देश में अनेक स्थानों पर युवकसंघों का गठन हुआ। अगस्त, 1928 ई0 में बंगाल 'विद्यार्थी संघ' के खुले अधिवेशन को पंडित नेहरू ने सम्बोधित करते हुए उन्हें देश की आजादी में भाग लेने की प्रेरणा दी। कुछ ही दिनों के दौरान देश के युवा वर्ग में साम्यवाद और समाजवाद के प्रति

सक्रिय रूचि ने नए-नए स्थानीय और साम्यवादी संगठनों को जन्म दिया। तरूण एवं युवा पीढ़ी के ये संगठन संपूर्ण स्वराज्य की ललक से आन्दोलित हो उठे उन्हें गाँधी जी का आदर्शवादी दर्शन और राजनीति अनाकर्षक प्रतीत होने लगे। परिणाम स्वरूप उन्होंने समाजवादी-साम्यवादी दर्शन की राह पकड़ना श्रेयस्कर एवं उचित समझा। सन् 1924 में सरकार ने कानपुर षड़यन्त्र के सिलसिले में मुजफ्फर अहमद और श्रीपाद अमृत अंगे को कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने के आरोप में गिरफ्तार करके अन्य आरोपियों के साथ उन पर भी मुकद्दमा चलाया। प्रतिक्रिया स्वरूप सन् 1925 ई0 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अस्तित्व में आई। कानपुर षडयंत्र के मुकदमे में फंसाए गऐ लोगों को बचाने के लिए एक बचाव समिति गठित की गई और सन् 1926 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय समिति का गठन एवम् पार्टी का कार्यालय बम्बई में रखने की घोषणा हुई। इसके समानान्तर किसानों एवं मजदूरों के अनेक संगठन भी जिला एवं क्षेत्रीय स्तर पर उभरने लगे। ये संगठन यद्यपि साम्यवादी दल को ही अपना मुख्य प्रेरणा-स्रोत मानते थे, परन्तु राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से भी अपना सम्बन्ध बराबर बनाए हुए थे।[1] उत्तर प्रदेश एवं गुजरात के किसान आन्दोलनों की राह पर आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के तत्वाधान में मजदूरों ने देश के विभिन्न नगरों में प्रदर्शन एवं हड़तालों का सफल आयोजन किया। इन मजदूर आन्दोलनों को साम्यवादी नेताओं की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन मिल रहा था। सन् 1928 ई0 में खडगपुर रेलवे वर्कशाप एवं जमशेदपुर की टिस्कों फैक्टरी में मजदूरों ने हड़ताल की। सुभाष चन्द्र बोस ने इन मजदूर आन्दोलनों में मुख्य भूमिका निभाई। उधर इन्हीं दिनों बम्बई में इस युग के सबसे महत्वपूर्ण मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व साम्यवादी दल ने किया। बम्बई कपड़ा मिल के डेढ़ लाख कर्मचारी अचानक हड़ताल पर चले गए। यह हड़ताल लगभग पाँच महीने तक चली। सन् 1928 ई0 में कुल मिलाकर लगभग पांच लाख कामगारों ने विभिन्न अवसरों पर साम्यवादी दल के नेतृत्व में हड़तालें कीं।

साम्राज्यवाद और शोषण के प्रति युवा पीढ़ी का जो खुन खौल रहा था उसकी परिणति क्रान्तिकारी आतंकवादी संगठनों के रूप में हुई। प्रथम असहयोग आन्दोलन की विफलता

1- विपिनचन्द्र : आधुनिक भारत अध्याय 13 पृष्ठ 239-40

भी इसके पीछे एक कारण थी। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन ने अक्टूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति का निर्णय लिया। इसके अनेक युवा सदस्यों को काकोरी षड़यन्त्र के तहत उम्र कैद से लेकर फाँसी तक की सजाएँ सुनाई गईं। शीघ्र ही ये आतंकवादी संगठन समाजवादी विचारों से जुड़ गए और सन् 1928 ई0 में चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में हिन्दुस्तानी समाजवादी रिपबलिकन एसोसिएशन की स्थापना हुई।[1] इसी बीच 'साइमन कमीशन' के विरोध में जगह जगह नारेबाजी और सभाएँ हुईं जिनपर अंग्रेज सरकार ने लाठिया बरसाईं। ऐसी ही एक घटना में 30 अक्टूबर 1928 ई0 को लाला लाजपतराय का निधन हो गया। इस घटना से सम्पूर्ण युवा वर्ग में एक आक्रोश की लहर पैदा हुई। क्रांतिकारियों ने इस हत्या के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए सॉंडर्स की हत्या कर दी। बाद में गूंगी बहरी सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए क्रांतिकारियों ने केन्द्रीय धारा सभा में बम फेंक कर स्वयं की गिरफ्तारी दी। भगतसिहं और उनके साथयों ने एक प्रकट संगठन, 'नौजवान भारत सभा', बनाया था जिसका काम मजदूरों और किसानों के बीच गाँधी जी की समझौतावादी राजनीति के विपरीत कम्युनिस्ट विचारधारा पर आधारित क्रांतिकारी आन्दोलन की प्रेरणा देना था। नौजवान भारत सभा का जो घोषण पत्र सन् 1928 ई0 में प्रकाशित हुआ उसमें खुले आम यह प्रस्ताव पारित किया गया कि भारत को साम्राज्वादी पंजे से मुक्ति के बल जनता की व्यापक क्रांति द्वारा ही संभव है।[2]

भगतसिंह और बटुकेशवर दत्त की गिरफ्तारी के कुछ दिनों के बाद 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के केन्द्र और बम बनाने के कारखाने को ब्रिटिश पुलिस ने ढूंढ निकाला और इसके बाद इतिहास प्रसिद्ध लाहौर षडयंत्र केस चला जिसमें भगत सिंह को उनके कुछ साथियों सहित फांसी की सजा दी गई।[3] कांग्रेस का अगला वार्षिक अधिवेशन सन् 1929 ई0 में लाहौर में हुआ। बदले हुए वातावरण को देखकर स्वयं गाँधी जी ने जवाहरलाल

1- गोपाल ठाकुर : भगतसिंह : द मैन एण्ड हिज आइडियाज पृष्ठ 2-3

2- मन्मथनाथ गुप्त : राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 336 एवं यशपाल : सिंहावलोकन भाग 2

3- सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास भाग 1 पृष्ठ 290

नेहरू का नाम अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया। इसी अधिवेशन में पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन को शुरू करनेका निर्णय और 'पूर्ण स्वराज्य'को मुख्य ध्येय स्वीकार करते हुए , 26 जनवरी सन् 1930 को पूर्ण स्वराज्य दिवस मानने का निश्चय किया गया। 26 जनवरी से देश भर में जगह-जगह प्रदर्शन एवं जनसभाएँ आयोजित करने के साथ-साथ पूर्ण राज्य का घोषणा पत्र भी सबको पढ़कर सुनाया गया। 30 जनवरी को गाँधी जी ने वायसराय के सामने ग्यारह शर्तें रखते हुए कहा कि अगर सरकार इन्हें स्वीकार कर लेती है तो आन्दोलन रोक दिया जाएगा। इन शर्तों में मद्यनिषेध , रूपए के विनिमय का पुनर्निर्धारण, नमक कर की समाप्ति, लगान, सैनिक व्यय और सिविल सर्विस के वेतनों में आधी कटौती तथा विदेशी कपड़े पर आयात कर आदि मुद्दे शामिल किए गए थे।[1] यद्यपि गाँधी जी का शर्तों वाला यह प्रस्ताव स्वयं जवाहरलाल जी को बड़ा अप्रिय और अरूचिकर लगा और उन्होंने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा ' गाँधी जी द्वारा ग्यारह शर्तों को प्रकाशित करना बड़ी अचरज की बात थी। कुछ राजनीतिक और सामाजिक सुधारों की बातें ऐसे समय पर करना, जब हम आजादी के आन्दोलन के नाजुक दौर से गुजर रहे थे, क्या मतलब रखता था।[2] हालांकि कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में ही असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया गया था, परन्तु उसका कोई निश्चित कार्यक्रम तय नहीं हुआ था। इसी अधिवेशन के एक सत्र में सुभाष चन्द्र बोस ने समानान्तर सरकार के गठन का प्रस्ताव रखा था, वह समर्थन के अभाव में अस्वीकृत हो गया था। अधिवेशन की समाप्ति पर भावी कदम उठाने की बात गाँधी के विवेक पर छोड़ दी गई थी। दूसरी ओर गाँधी जी के लिए अहिंसा सर्वोपरि सिद्धांत था। उनका विचार था कि अहिंसा से रंचमात्र भी हटने से यदि स्वाधीनता मिलती तो वह उसे अस्वीकार कर देते।

इन सब सिंगतियों के चलते, अंततः यह आन्दोलन शुरू हुआ। 12 मार्च, सन् 1930 ई0 के दिन गाँधी जी ने इतिहास प्रसिद्ध दाँड़ी मार्च आरंभ किया एवं अप्रैल के प्रथम

1- कांग्रेस का इतिहास : सीता रम्या भाग ष्ठ 290
2- मेरी कहानी : नेहरू पृष्ठ 288
3- वही : पृष्ठ 172-73

सप्ताह में समुद्र के पानी से नमक बनाकर कानून तोड़ा। इसके बाद अंग्रेजी शराब और विदेशी सामान की दुकानों के आगे धरना देना शुरू हुआ। लड़खड़ाता हुआ यह आन्दोलन आगे बढ ही रहा था कि विभिन्न स्थानों पर गाँधी जी द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन होने लगा। ब्रिटिश पुलिस ने जनता पर क्रूरता पूर्वक दमनकारी अत्याचार शुरू किया, जिससे सोती हुई शान्त और असम्पृक्त जनता भी भड़क उठी। बंगाल के चटगांव शस्त्रागार पर भारतीय 'प्रजातंत्र सेना' के सदस्यों ने अधिकार कर लिया और कई दिनों तक नगर पर अपना अधिकार बनाए रखा। देश के कोने -कोने से ऐसे ही अनेको विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने गढ़वाल रेजीमेंट की दो सशस्त्र टुकड़ियों भेजीं, किन्तु देशभक्त फौजियों ने अपने ही भाइयों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया साथ ही उन्होंने अपने हथियार विद्रोहियों में बांटने शुरू कर दिये। कई दिनों तक सरकार फटी ऑखें जनता के इस इस दुस्साहसपूर्ण आक्रोश को देखती रही। सारे देश की जनता ने गढ़वाली सैनिकों की भूरि भूरि प्रशंसा की। परन्तु गाँधी जी और उनके अनुयायियों ने इसे दुर्भाग्यपूर्ण एवं निन्दनीय कहकर इस की भर्त्सना की। जब आन्दोलन गाँधी जी की निर्दिष्ट सीमा रेखाओं को तोड़ने लगा तो सरकार ने उन्हें 5 मई ।930 ई0 को गिरफ्तार कर लिया । फिर भी लोगों के जोश में कोई कमी नहीं आई। इन्हीं दिनों ऐसे ही एक आन्दोलन को दबाने के लिए महाराष्ट्र के 'शोलापुर' शहर में अंग्रेजी पुलिस ने जम कर गोली चलाई, किन्तु आन्दोलनकारियों ने जमकर विरोध करते हुए नगर पर कब्जा कर लिया। इस आन्दोलन में स्थानीय जनता के सभी वर्गों एवं धर्मो के लोग शामिल थे। शोलापुर काण्ड में स्त्रियों और

बच्चों तक की जांति-पांति धर्म के भेदभाव से ऊपर उठकर की गई भागीदारी के कारण जवाहरलाल नेहरू ने इस तरह के आन्दोलनों एवं प्रतिक्रियाओं पर न केवल आश्चर्य प्रगट किया, अपितु प्रशंसा भी की। सरकारी दमन दिन पर दिन उग्र होता जा रहा था। एक अनुमान के अनुसार इस आन्दोलन में लगभग 75 हजार स्त्री पुरूष को सरकार ने सजा दी। दूसरी और सरकार और राजनीतिक नेताओं के बीच समझौते की कोशिशें भी जारी थी। इसी के परिणाम

स्वरूप जनवरी 1931 ई0 में गाँधी जी एवं कुछ अन्य प्रमुख नेताओं को बिना शर्त जेल से छोड़ दिया गया। यद्यपि उद्देश्यों के लिए यह आन्दोलन शुरू किया गया था उनमें से एक भी प्राप्त नहीं हुआ, तथापि समझौते के प्रयास जोर शोर से किए गए और अंततः 5 मार्च 1931 ई0 को गाँधी इरविन समझौता हो गया।

3.2.11 कांग्रेस का कराची अधिवेशन

आशा के विपरीत लोग इस समझौते से बहुत असंतुष्ट और अप्रसन्न हुए। मार्च 31 में हुए कांग्रेस के कराची अधिवेशन में एक सदस्य ने इस समझौते पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए यहाँ तक कह डाला, 'यदि गाँधी जी के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति ने यह समझौता (गाँधी - इरविन पैक्ट) किया होता तो हम उसे उठा कर समुद्र में फेंक देते।'[1]

कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने गाँधी इरविन समझौते पर स्वीकृति की मुहर लगाने के साथ-साथ संगठन के वामपक्षी तत्वों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से एक प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम को भी मंजूरी दी जिसके अन्तर्गत देश के प्रमुख उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूर की हिस्सेदारी और उसके अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए कृषि व्यवस्था में सुधारों की माँगें शामिल थीं। अंग्रेजों के आतंकपूर्ण शासन से देश की जनता बुरी तरह त्रस्त और स्तब्ध थी, तथापि पाश्चात्य शिक्षा के आलोक से प्रभावित नई पीढ़ी में अंग्रेजों के खिलाफ एक जबरदस्त आक्रोश था और कुछ कर गुजरने की लालसा जोर मार रही थी। ग्रामीण क्षेत्रों में भी विदेशी शासन के प्रति कम असंतोष न था। किसानों की आर्थिक दशा अंग्रेजों की शोषण प्रधान नीति के कारण दिन पर दिन बरबादी की ओर उन्मुख थी। किसान उत्पादक होते हुए भी अपने उत्पाद के लाभ से वंचित ही रहता था। ब्रिटिश सरकार की शह पर सामन्तवर्ग तथा पूंजीपतियों के प्रतिनिधि ग्रामीण साहूकार किसान के शोषण के लिए जोंक का काम कर रहे थे। भारतेन्दु के शब्दों में 'कृषक समाज ऋण भार से कराह रहा था।' महाजनों के पौ बारह थे। सर्वदा से अच्छे लोग मात्र खाना और चूड़ी पहनना एक सा समझते

1- रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी पृष्ठ 184

2- कविवचन सुधा : 22 दिसम्बर 1873

हैं, किन्तु आजकल के आलसियों को इसी का अवलंब है, न हाथ हिलाना पड़े, न पैर, बस बैठे-बैठे भुगतान कर लिया।'[1] कृषक एवं मजदूर वर्ग में सरकारी नीतियों के प्रति क्षोभ की भावना तीव्रतर होती जा रही थी। सरकार ने लोगों को भुलाने में डालने के लिए गोलमेज सम्मेलन का नाटक किया जो अंततः दुखान्त एवं असफल ही सिद्ध हुआ। जनता के विरोध को दबाने के लिए दमन के शस्त्र को फिर कठोर और त्रासद बनाया गया। सन् 1932 ई0 के आरंभ में ही गाँधी जी की गिरफ्तारी से सरकार ने अपना रूख स्पष्ट कर दिया। गिरफ्तारी के कारण भड़कने वाले जना क्रोश और असंतोष की आशंका से कई अध्यादेश भी लागू कर दिए गए और कांग्रेस को फिर गैर कानूनी संस्था घोषित कर कई अन्य नेताओं को न केवल गिरफ्तार किया गया बल्कि उनकी चल-अचल सम्पत्ति को भी कुर्क करा लिया गया। कुल मिलाकर एक लाख बीस हजार लोगों को इस दौरान गिरफ्तार किया गया। व्यापक जन-आन्दोलन वैसे ही लम्बे समय तक चलते रहने कारण अपनी तीक्षणता खोने लगा था, परन्तु महात्मा गाँधी की दिलचस्पी की दिशा हरिजन उद्धार की ओर मुड़ जाने पर रही सही तीव्रता भी खत्म हो गई। अतएव जुलाई 1933 ई0 में जन-आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा कर दी गई और बदले में सरकार ने कांग्रेस पर लगी पाबन्दी हटा ली, किन्तु साम्यवादी दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

2.3.12 कांग्रेस में वामपंथी पक्ष का उभरना

दूसरे असहयोग आन्दोलन के असामयिक और दुखद अवसान के पश्चात कांग्रेस के भीतर एक ऐसा वर्ग उभरने लगा जो अपने दल की अग्रिम पंक्ति के नेताओं के कुंठित होते उत्साह से क्षुब्ध था। फलस्वरूप कांग्रेस के भीतर वामपक्षी गुट मजबूत होने लगा। वामपक्षी युवावर्ग अपने को समाजवादी कहलाने में गर्व महसूस करता था। इस कांग्रेसी वामपक्ष की मजबूती को मद्दे नजर रखकर गैर कानूनी कम्युनिष्ट पार्टी के लोग कांग्रेस के भीतर न केवल अपना प्रभाव बढाने की दशा में प्रयत्नशील हुए, अपितु अपनी पार्टी की क्रांतिकारी नीति और जुझारू

1- कविवचन सुधा : 22 दिसम्बर 1873

कार्यक्रमों द्वारा कांग्रेस के वामपक्षी कार्यकर्ताओं को अपनी विचारधारा की ओर आकर्षित करने लगे। कांग्रेस पर बढ़ते इस साम्यवादी प्रभाव को भाँप कर साम्यवादी प्रभाव की रोकथाम के लिए कांग्रेसी वामपंथियों ने सन् 1934 ई0 में कांग्रेस पार्टी के ही भीतर एक कांग्रेसी 'समाजवादी दल' की स्थापना की। इस दल के प्रवर्तकों में आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण और अशोक मेहता थे।[1] कालान्तर में इस समाजवादी दल पर वामपंथी प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि दक्षिण अनेक राज्यों में कांग्रेसी समाजवादी दल के सदस्य वहाँ के साम्यवादियों के साथ खुल कर सहयोग करने लगे। कांग्रेस के इस दल ने मजदूरों और किसानों के बीच अपने पाँव पसारने शुरू कर दिए। गाँव-गाँव में किसान सभाओं का गठन होने लगा तथा निश्चित अन्तराल पर इन किसान-मजदूर सभाओं के अधिवेशन भी होने लगे। राष्ट्रीय आंन्दोलन में इनका सहयोग प्रशंसनीय है।[2] इन परिस्थितियों के चलते सन् 35 में 'पिट का इंडिया एक्ट' लागू किया गया। वास्तव में यह एक ऐसा काला कानून था जिसके अन्तर्गत ब्रिटिश सत्ता द्वारा संचालित शासन में भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए कोई अधिकार ही नही रह गए। कोई भी परिवर्तन सिर्फ ब्रिटिश संसद के माध्यम से ही आ सकता था।[3] गवर्नर को एक मुश्त इतने अधिकार दे दिए गये थे कि वह जब चाहे स्वयं शासन संभाल सकता था और जिस क्षेत्र में चाहे हस्तक्षेप कर सकता था। इस एक्ट का सबसे अधिक विवादास्पद अंश था साम्प्रदायिक आधार पर मतदान का अधिकार दिया जाना। इस प्रकार एक बार फिर से लार्ड डलहौजी की पुरानी नीति-फूट डालों और राज्यकरों खुल कर सामने आई जिससे हिन्दू-मुस्लिम एकता छिन्न-भिन्न होने की पूरी-पूरी आशंका थी।[4]

2.3.13 किसान एवं विद्यार्थी संघ

ऐसी स्थिति में जहाँ साम्प्रदायिक दलों की हलचल बढ़नी शुरू हुई, वहीं

1- डा0 रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता पृष्ठ 130
2- डा0 रामव्या : समकालीन काव्य में प्रगतिवादी चेतना, पृष्ठ 45
3- जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी आव इंडिया संस्करण 1947 पृष्ठ 455
4- मन्मथनाथ गुप्त : राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ 375

साम्राज्यवाद के खिलाफ एक संयुक्त मोर्चा गठित करने के प्रयास भी तेज होने लगे। 'लाल ट्रेड यूनियन' और 'राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन' ने मिलकर 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना की और संयुक्त विरोधी प्रदर्शनों का अयोजन किया।[1] ग्रामीण इलाकों के किसान भी इस संयुक्त मोर्चे के प्रयत्नों की ओर उन्मुख हुए। पहले से गठित किसान सभाएँ सक्रिय हो उठीं। प्रो0 एन0जी0 रंगा के नेतृत्व में मद्रास में इन प्रान्तीय किसान सभाओं को जोड़कर एक अखिल भारतीय किसान संगठन बनाने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार अखिल भारतीय किसान संगठन का पहला अधिवेशन सन् 1936 ई0 में स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। इस किसान सभा ने अपनी मांगों का एक चार्टर तैयार किया तथा किसानों के रोटी और जमीन के अधिकारों के आन्दोलन को भारत के स्वाधीनता- आन्दोलन से सीधे जोड़ दिया। किसानों के कर्जे के बोझ को कम करने तथा जागीरदारी प्रथा समाप्त करके भूमिहीन किसानों को सरकारी जमीन देने की मांगे अब जोर पकड़ने लगीं। भारतीय किसान पहली बार अपने शोषण के विरोध में एकजुट होकर मुखर हुआ। सन् 1936 ई0 में पहली बार भारतीय किसानों ने मजदूरों के साथ मिलकर मई दिवस बड़े जोश से मनाया। इसी वर्ष 'अखिल भारतीय विद्यार्थी फैडरेशन' और भारतीय रियासती प्रजामंडल जैसे युवा संगठन भी अस्तित्व में आए। सन् 1936 ई0 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से बोलते हुए पंडित नेहरू ने कहा था -मैं तो चाहता हूँ कि कांग्रेस एक समाजवादी संगठन बन जाए और संसार की अन्य शक्तियों के साथ जो एक नई सभ्यता का सूत्रपात करने के लिए प्रयत्नशील हैं, सहयोग करें।'[2] इस शताब्दी के चौथे दशक में समाजवादी चेतना देश के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसारित होकर लोकप्रियता प्राप्त करने लगी। अब तक के विवेचन से स्पष्ट है कि समाजवादी चेतना ने समाज और राजनीति में अपने पाँव मजबूती से जमा लिए थे, अतएव इस का प्रभाव सहित्य में भी परिलक्षित होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य था। इसके प्रचार-प्रसार में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का सक्रिय एवं महत्वपूर्ण योगदान है। इसी वर्ग के निचले तबके से आए साहित्यकारों ने

1- ए कण्टेम्परेरी हिस्ट्री आव इंडिया, पृष्ठ 300-302

2- आज का भारत : रजनी पामदत्त पृष्ठ 545

वर्ग-चेतना को अपनी लेखनी का मुख्य लक्ष्य बनाया।

2.4.1 प्रगतिशील आन्दोलन की साहित्यिक पृष्ठ भूमि यर्थाथवादी साहित्य सृजन- प्रतापनारायण मिश्र एवं सरदारपूर्ण सिंह के निबंध

मार्क्सवादी मानदण्डों को अपना कर साधारणजन के दुखदर्द की परिस्थितियों का पर्दाफाश करते हुए उनकी जड़ों पर प्रहार करने वाली क्रांतिदर्शी और सर्वजन हितकारी कविता का प्रादुर्भाव इस युग के साहित्य-जगत में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। न केवल हिन्दी अपितु अन्य भारतीय भाषाओं में भी साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विरोधी स्वर इन्हीं दिनों साहित्य में मुखर होने लगे। वैसे भी कहा जाता है कि साहित्य समाज में साँस लेता है। समाज की गली-सड़ी मान्यताओं को निर्मूल करके उसे नया दिशा निर्देश करना साहित्य का ही उत्तरदायित्व है। 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त प्रगतिशील चिन्तन में कोई महत्व नहीं रखता। "साहित्य केवल जीवन का प्रतिविम्ब न होकर जीवन का निर्माता भी है। काव्य जीवन को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाए रखने के लिए प्राणवायु प्रदान करता है। काव्य जीवन को प्रभावित करता है और जीवन काव्य को नए आयाम प्रदान करता है क्योंकि जनता ही साहित्य की कसौटी है। मार्क्सवाद विषमताओं को समाप्त करके समाज में साम्य की प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार वह कला के सोद्देश्य रूप को स्वीकार करता है।"[1]

राजनीति के जीवन और समाज से जुड़े रहने के कारण साहित्य भी उससे अधिक दिनों तक दूरी नहीं बनाए रख सकता। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि न समझ लिया जाये कि साहित्य पार्टी के प्रचार का माध्यम या साधन है। उस दशा में वह साहित्य न हो कर राजनीतिक दल का भोंपू बनकर रह जाएगा। यद्यपि लेनिन साहित्य को पार्टी के अविच्छिन्न अंग के रूप में देखना चाहते थे तथापि उनका यह मन्तव्य कदापि नहीं था कि पार्टी नियमावलियों का निरूपण तथा सिद्धान्तों का पिष्ट पेषण ही साहित्य का मुख्य विषय बना दिया जाए। वस्तुतः लेनिन साहित्य को लोकाहंकारी एवं जन कल्याण के व्याख्याता के रूप में देखने का पक्षधर था।[2]

1- समीक्षा और आदर्श : डा0 रांगेय राघव पृष्ठ 50

2- समकालीन काव्य में प्रगतिवादी चेतना : डा0 रंगय्या, पृष्ठ 64

मानव जीवन का यथापरक चित्रण करना उसमें आए हुए गतिरोध को रेखांकित करते हुए अवरोधों को उत्पन्न करने वाले कारणों पर प्रकाश डालना और समाज की सर्वांगीण प्रगति के लिए सुझाव एवं प्रेरणा उद्‌भूत करना ही सही अर्थों में साहित्य का लक्ष्य माना जाना चाहिए। आधुनिक काल के आरम्भ से ही हिन्दी साहित्य में ऐसे तत्व परिलक्षित होने लगे थे जो जनता में समाजवादी चेतना जगाकर उसे सामन्तवाद और सूदखोरों के खिलाफ जाग्रत करने की चेष्टा करते दिखाई देते हैं। भारतेन्दु युग की देशभक्ति, परोपकार, मातृभाषा प्रेम, समाज सुधार और पराधीनता से मुक्ति की भावनाएँ, उन दिनों की प्रगतिशील मनोवृत्ति के चिन्ह हैं।[1] राजभक्ति की वृत्ति के बावजूद इस युग के साहित्य में देशभक्ति की भावना भी दिनों दिन विकसित हो रही थी।[2] विदेशी सरकार और उसके पिट्ठू देशी राजाओं, जागीरदारों एवं साहूकारों के शिकंजे में फँसी आम जनता की आहें साहित्यकार के संवेदनशील हृदय को मथने ओर आन्दोलित करने के लिए पर्याप्त थीं। देश की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा से उत्पन्न क्षोभ का स्वर अधिकाधिक मुखर होता जा रहा था।[3] सरदार पूर्ण सिंह के निबन्ध प्रतापनारायण मिश्र की कविता तृप्यन्ताम, भारतेन्दु की पहेलियाँ एवं मुकरियों में उस युग के समाज में व्याप्त शोषण और उसके प्रति उत्पन्न क्षोभ का यथार्थ देखा जा सकता है। द्विवेदी युवा आते-आते राष्ट्रीयता, समाज सेवा एवं सामाजिक-धार्मिक प्रश्नों के तार्किक समाधान की प्रवृत्तियाँ मुखर होने लगीं। अब जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टि कोण को मान्यता मिलने लगी। गाँधी और आर्य समाज ने इस युग के साहित्य को बहुत प्रभावित किया । गाँधी जी और आर्य समाज ही नहीं अपितु अन्य पुनरूत्थान विचारकों के दर्शन से उद्‌भूत प्रगतिशील तत्व इस युग के साहित्य में प्रभूत मात्रा में अभिव्यक्त हुए। रीतिकालीन पतनोन्मुखी साहित्य के प्रति प्रबल प्रतिक्रिया भी इस युग के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है। परिवान स्वरूप साहित्य में सोद्‌देश्यता और सामाजिक उपयोगिता पर विशेष बल दिया जाने लगा। साहित्य में लोक कल्याण और लोकोपकार आवश्यक तत्व समझे जाने लगे। आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी ने भी

1- हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य पृष्ठ 396
2- केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्य धारा का सॉस्कृतिक स्रोत पृष्ठ 100
3- रामविलास शर्मा : भारतेन्दु युग पृष्ठ 153

साहित्य की प्रगतिशील भूमिका का समर्थन करते हुए कहा - "साहित्य वही है जो जीवन का जाग्रत कलरव कानों को सुनाता है।"[1] भारतीय जनता के शोषित और दलित वर्ण को आधुनिक साहित्य में प्रतिनिधित्व मिलना साहित्यिक संसार में एक युगान्तरकारी घटना थी। इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त की रंचना किसान (प्रकाशन 1917) विशेष महत्वपूर्ण है। गुप्त जी के काव्य में हिन्दू नवजागरण अपने व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। और उसने प्रगतिशील आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में योग दिया।[2] इस युग के निबन्धकारों में सरदार पूर्णसिंह के प्रगतिशील विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने एक निबन्ध में वे कहते हैं - "जब तक जीवन के अरण्य में पादरी, मौलवी, पंडित और साधू संन्यासी हल कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे उनका मन और उनकी बुद्धि मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिन्तन, ध्यान, पुस्तकें और विश्वास - यहाँ तक कि उनका खुदा भी बासी हो गया है।" सरदार साहब अपने वाले युग के साहित्य को भी अपनी दूर-दृष्टि से सजगतापूर्वक देख लेते हैं। नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा, मजदूरों के कंठ से निकली हुयी कविता खेतों की मेंड़ों, कपडे के धागों, जूते के टाँकों और पत्थर की नसों का भेदभाव दूर करेगी।[3]

2.4.2 छायावाद का अवसान और प्रगतिशील साहित्य का अंकुरण पंत, निराला, प्रेमचन्द

प्रसाद-प्रेमचंद-शुक्ल युग में साहित्य-धारा प्रगतिशील चेतना से अनुप्राणित हो उठी। यद्यपि छायावादी साहित्य में व्यक्तिवाद का स्वर मुखरित होता हुआ दिखाई देता है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि छायावादी कवियों का यह व्यक्तिवाद सामंतवादी जड़ मानसिकता के विरूद्ध उभरने वाला प्रगतिशील व्यक्तिवाद था। परवर्ती छायावादी साहित्य में पलायन, निराशा अतिशय, कल्पनाशीलता, अमूर्तता तथा दुरूहता की जो प्रवृति उत्पन्न हुयी उसी की प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दी साहित्य में आगे चलकर यथाशक्ति प्रगतिशील आन्दोलन का बीज अंकुरित और विकसित हुआ। प्रगतिशील कविता के आरम्भिक दो कवि - सुमित्रानंदन पंत

1- आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी - 'आधुनिक साहित्य की भूमिका' से उद्घृत
2- रामधारी सिंह दिनकर - पुनरूत्थान के कवि मैथिलीशरण गुप्त पृष्ठ 10-38
3- सरस्वती, भाग 21, खण्ड-2, संख्या 3

और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला छायावादी ही थे। कहना न होगा कि अपनी रचना 'युगान्त' द्वारा पंत जी ने ही छायावाद के अंत की घोषणा कर दी थी। ग्राम्य-जीवन की गरीबी और जद्दोजहद का शब्दचित्र प्रस्तुत करके उन्होंने प्रगतिशील आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया। आगे चलकर निराला की लेखनी से 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता' और 'झींगुर डट कर बोला' - जैसी कविताएँ उनकी लेखनी से (कहे जानेवाले) निस्सृत हुयीं। दूसरी ओर ब्राह्मणवादी पुनरूत्थान से प्रभावित आचार्य रामचंद्र शुक्ल का साहित्य विषयक दृष्टिकोण भी बहुत दूर तक प्रगतिशील था।[1] लोकमंगल की साधना पर जोर देने की उनकी प्रवृति ने साहित्य के सामाजिक मूल्यांकन का रास्ता खोला। शुक्ल जी का दृष्टिकोण जीवन की संपूर्णता पर आधृत था।[2] शुक्ल जी के छायावाद की आलोचना ने प्रगतिवाद का मार्ग दर्शन किया। प्रगतिवाद उनका गुण माने या न माने, जहाँ तक कविता को जीवन के संपर्क में लाने का प्रश्न है, आचार्य शुक्ल किसी प्रगतिवादी से कम नहीं थे।[3]

प्रेमचंद का साहित्य प्रगतिशील आन्दोलन की सुदृढ़ पीठिका है। सन् 1917 ई0 में रूस की लाल क्रांति के बाद प्रेमचंद के साहित्य पर समाजवादी विचार धारा का प्रभाव पड़ने लगा था। 'गोदान' के प्रकाशन के बाद तो स्पष्ट रूप से प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन के अग्रदूत ही बन गये। वैसे इससे पूर्व ही जून, 1930 ई0 से प्रकाशित होने वाले "जागरण" और "हंस" पत्रों में प्रेमचंद के समाजवाद, साम्यवाद और रूसी क्रांति के परिचय तथा प्रशंसा सबन्धी लेख छपते थे। बाद में आचार्य नरेन्द्र देव के साथ 'जागरण' का सम्पादन करते हुए गाँधी जी के अहिंसा और असहयोग द्वारा स्वतंत्रता की प्राप्ति पर उन्होंने सन्देह व्यक्त करना भी शुरू कर दिया था।[4] प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को तिलिस्म

1- देखिये- रांगेय राघव का लेख, आलोचना भाग-4 सन् 1952
2- डा0 नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ पृष्ठ 61
3- शुक्ल और हिन्दी आलोचना - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
4- देखिए - जागरण 27 फरवरी 1933 और 28 जनवरी सन् 1934

के घेरे से निकालकर उसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के ठोस धरातल पर खड़ा किया। किसान का भूमि के प्रति लगाव (रंगभूमि प्रेमाश्रम), छोटे किसान का धीरे धीरे भूमिहीन होना (गोदान) , नारी पराधीनता और पीड़ा (सेवा सदन) जैसे गंभीर तात्कालिक मसलों पर उन्होंने लोगों का ध्यान केन्द्रित करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार सन् 1935 ई0 तक भारतीय साहित्य एवं समाज में प्रगतिशील आन्दोलन को स्वीकार करने और उसे आगे बढ़ाने के लिए अदम्य उत्साह का संचार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। इसी वर्ष इंग्लैण्ड के प्रवासी भारतीय युवकों की एक गोष्ठी में होटल नानकिंग में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की गई एवं एक घोषणा पत्र जारी करके उसे भारतीय मित्रों के पास भेज दिया गया । संभवतः इसीसे प्रेरणा प्राप्त कर युवा पीढ़ी के हिन्दी साहित्यकारों ने सन् 1936 ई0 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन का आयोजन प्रेमचंद के सभापतित्व में किया। इसीलिए सन् 1936 ई0 के आसपास से भारतीय साहित्य में प्रगतिशील कविता का जन्म माना जाता है। इस कविता का मूल स्वर शोषितों के प्रति सहानुभूति से भरपूर है। पूंजीपतियों, सामन्तों और शोषकों के प्रति प्रबल विरोध की अभिव्यक्ति इसका प्रमुख स्वर है।

सर्वज्ञात सचाई है कि 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना से प्रगतिशील आन्दोलन को एक नई ऊर्जा, दिशानिर्देश और गति मिली। अतएव इसकी गतिविधियों पर एक विहंगम दृष्टिपात करना भी युक्तिसंगत होगा।

2.4.3 अखिल भारतीय लेखक संघ का कार्य कलाप

वास्तव में सन् 36 में प्रेमचंद के सभापतित्व में हुए इसके प्रथम अधिवेशन ने सभी भारतीय भाषाओं और हिन्दी में भी प्रगतिशील आन्दोलन की लोकप्रियता की नींव रखी। इसके प्रथम अधिवेशन में उत्तर भारत के प्रमुख लेखकों ने अपनी उपस्थिति से इसके महत्व का प्रतिपादन किया। भाग लेने वालों में प्रमुख थे - सुमित्रा नन्दन पंत, यशपाल, फैज अहमद फैज, सज्जाद जहीर और हीरेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय। इस अधिविशन के समापन पर संघ का मुख्य इलाहाबाद स्थापित होने के साथ ही भारत के अनेक मुख्य नगरों में इसकी शाखाएँ भी सक्रिय

हो उठीं।[1] हालांकि इससे पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक संघ की बैठके क्रमशः 1934 में गोर्की की अध्यक्षता में (रूस), इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन की मुल्कराज आनन्द की अध्यक्षता में (1935 लंदन) जुलाई 1935 में पेरिस के बाल बुलिए हाल में बरबूज की अध्यक्षता में और ई0एम0 फॉर्सटर की अध्यक्षता में हो चुकी थी, तथापि भारत में प्रगतिशील संघ की स्थापना ने न केवल इस आन्दोलन की गतिविधियों को तीव्र किया अपितु कुछ नया कर गुजरने की तीव्र लालसा लिए समान विचारवादी युवकों को निकट लाने और संयुक्त प्रयास करने के लिए खुले आवाहन का काम भी किया। सन् 1936 ई0 के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद ने साहित्यकार के कर्तव्यों को रेखांकित करते हुए कहा - "साहित्यकार का लक्ष्य महफिलें सजाना और मनोरंजन करना ही नहीं साहित्य देश भक्ति और राजनीति का पिछलग्गू न होकर उनके आगे मशाल लेकर चलने वाली सचाई है। साहित्यकार समाज का झंडा लेकर आगे चलने वाला सिपाही है, सच्चा साहित्यकार स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता।"[2] प्रेमचंद साहित्य और कला को उपयोगिता की तराजू पर तोलने में भी कोई झिझक महसूस नहीं करते। उनके अनुसार वही साहित्य कसौटी पर खरा सिद्ध होगा, जिसमें चिन्तन हो, सौन्दर्य का सार हो स्वाधीनता का भाव, सृजन की आत्मा और जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो - जो हमारे अन्दर गति, संघर्ष और बैचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[3] साहित्य का सम्बंध जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से जोड़ने पर विशेष रूप से जोर देते हुए, इस अधिवेशन में साहित्यकार को समाज की समस्याओं को चुनौती के रूप में स्वीकारने तथा उनसे जूझने और स्पष्ट समाधान प्रस्तुत करते हुए नए समाज की संरचना में भागीदार बनने का उत्तरदायित्व साहित्यकार को सौपा गया।

2.3.4 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय अधिवेशन

अखिलभारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन दिसम्बर सन् 1938

1- रामप्रसाद द्विवेदी : प्रगतिवादी समीक्षा : पृष्ठ 102
2- प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ 22
3- उपर्युक्त, पृष्ठ 25

ई0 में गुरूदेव रवीन्दनाथ टैगोर की अध्यक्षता में हुआ। यद्यपि स्वयं टैगोर बीमार होने के कारण इस में भाग नहीं ले सके, किन्तु उनका वक्तव्य पढ़कर सुनाया गया। अधिवेशन के घोषणा पत्र में भारत की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए साहित्य में आदर्शवाद की अनावश्यकता स्वीकार करने तथा सजगता पूर्वक साहित्य सृजन की अपील की गई। इसके अतिरिक्त जीवनगत परिवर्तनों की अभिव्यक्ति एवं वैज्ञानिक बुद्धिवाद के समावेश के साथ क्रांति की भावना के विकास में सहायता करना भी साहित्य के लक्ष्य बनाने में शामिल करने पर जोर दिया गया। साहित्य में परिवार, धर्म, अर्थ, काम, युद्ध तथा अन्य सामाजिक मुद्दों पर प्रतिक्रियावादी अथवा प्रणय सम्बन्धी प्रवृत्तियों के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता, जाति द्वेष तथा मानव के द्वारा मानव के शोषण का मुखर विरोध भी इस आन्दोलन के समर्थक लेखकों के लिए एक अनिवार्य कर्तव्य ही निश्चित किया गया।[1] संघ के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए आगे यह भी जोड़ा गया - जो साहित्य तथा कलाएँ रूढ़िवादी हाथों में पड़कर निर्जीव होती जा रही हैं, उनको मुक्त कराके उनका जनता से निकट संबन्ध जोड़ना, उन्हें जीवन के यथार्थों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना और विश्व का नवनिर्माण करने वाली शक्ति बनाना है।[2] इससे आन्दोलन में एक नया जोश पैदा हुआ। हिन्दी साहित्य में 'हंस' और 'नया साहित्य' पत्रों ने इस दिशा में प्रचुर मार्ग दर्शन किया।

2.4.5 अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन

19,20 मई 1942 ई0 में दिल्ली में अखिल भारतीय फासिस्ट विरोधी लेखक सम्मेलन हुआ जिसमें हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन में फासिज्म का चेहरा बेनकाब करने के अतिरिक्त यह मन्तव्य भी प्रकट किया गया कि फासिज्म के बढते हुए खतरों को देखते हुए लेखक तटस्थ नहीं रह सकता। लेखक केवल कला और संस्कृति के स्रष्टा ही नहीं हैं, बल्कि कला, सस्कृति खतरे में पड़ती है, तो उसकी रक्षा के लिए

1- प्रगतिवाद : शिवदान सिंह चौहान पृष्ठ .

2- वही : पृष्ठ 337-38

लड़ने में भी वे आगे रहेंगे।[1] इस अधिवेशन के घोषणा पत्र में लेखकों से आग्रह किया गया - हमारा कर्तव्य है कि हम देश में एकता पैदा करें और जातीय वैमनस्य की खाई को पाट दें। हम भारत की महान संस्कृति के उत्तराधिकारी ही नहीं उसके प्रहरी भी हैं।[2]

2.4.6 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का तीसरा अधिवेशन

मई 1943 ई0 में प्रसिद्ध साम्यवादी नेता श्रीपाद अमृत डांगे की अध्यक्षता में बम्बई में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन सम्पन्न हुआ, जिसमें संघ का मुख्य कार्यालय बम्बई में स्थानान्तरित होने की घोषणा के साथ सज्जाद जहीर को प्रधान सचिव, विष्णु दे और ख्वाजा अहमद अब्बास को सहायक सचिव तथा मामा वरेरकर को कोषाध्यक्ष बनाया गया। इस अधिवेशन में प्रगतिशील लेखकों से राष्ट्र के मनोबल को ऊंचा उठाने, साहस और दृढ़ संकल्प के साथ देश की आजादी के लिए प्रयास करने तथा साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्ति और अविच्छिन्न अधिकारों की प्राप्ति तथा रचनात्मक कार्यों में भाग लेने का आग्रह किया गया।[3] उधर उर्दू के प्रगतिशील लेखकों का एक सम्मेलन अक्टूबर 1945 ई0 में हैदराबाद में हुआ जिसका उद्घाटन श्रीमती सरोजिनी नायडू ने किया, कृश्न चन्दर इसके अध्यक्ष बने।

2.4.7 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अधिवेशन

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अधिवेशन बम्बई के एक उपनगर भिवंडी में मई 1949 ई0 में आयोजित हुआ। क्योंकि उस समय भारत सरकार की नीति प्रगतिशील आन्दोलन के प्रतिदमनकारी होने के कारण बम्बई में अधिवेशन करने की अनुमति नही दी गई थी। सोवियत संघ से आनेवाले प्रतिनिधि मंडल को भी इस सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति नहीं मिली। मजदूर कवि अण्णभाई साठे अध्यक्ष एवं डा0 राम विलास शर्मा

1- हंस फरवरी 1942 पृष्ठ 727

2- प्रगतिवाद : शिवदान सिंह चौहान पृष्ठ 340

3- उपर्युक्त पृष्ठ 54

इस अधिवेशन में सचिव बनाए गए।[1] इस अधिवेशन के बाद प्रगतिशील लेखक संघ विघटन के कगार पर पहुंच गया लेकिन 1951-52 में संघ के पुनर्गठन एवं संयुक्त साहित्यिक मोर्चे के गठन के लिए पत्र पत्रिकाओं में चर्चा, सुझाव एवं व्यक्तिगत स्तर के काफी सफल प्रयास हुए।

2.4.8 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवा अधिवेशन

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवा अधिवेशन मार्च 1953 में दिल्ली में हुआ। इस सम्मेलन मे कृश्न चन्दर संघ के प्रधान सचिव चुने गए।[2] प्रगतिशील आन्दोलन को एक व्यापक आधार देने के विचार से ही घोषणा पत्र जारी करते हुए कहा गया - "हमारे देश की जनता अपने लिए उन्मुक्त जीवन समृद्धि के लिए प्रयासरत हैं। वह विश्व के सभी राष्ट्रों से विश्व शांति की स्थिरता हेतु शांति एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों की कामना करती है। हमें अपने साहित्य को मानवतावाद की भावना, जीवनमें आस्था और आलोकपूर्ण भविष्य की आशा से परिपूर्ण करना है।"[2] प्रगतिशील लेखक संघ की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से विशेष उल्लेखनीय है, दिसम्बर,1956 ई0 में दिल्ली में बुलाया गया एशियाई लेखकों का सम्मेलन जिसमें बर्मा, लंका, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, नेपाल, पाकिस्तान, सीरिया, सोवियत संघ तथा इण्डोनशिया के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री ने भी भाषण दिए।[4]

इसके बाद अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ मे फिर से शिथिलता घर करने लगी। कई वर्ष अखिल भारतीय स्तर पर न कोई गोष्ठी हुई और न सम्मेलन। हाँ, क्षेत्रीय एवं भाषाई स्तर पर छोटे-छोटे आयोजन यदा-कदा अवश्य हुए।

2.4.9 अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का छटा अधिवेशन

तेरह वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद सन् 1966 ई0 में अखिल भारतीय

1- कम्युनिज्म इन इंडिया पृष्ठ 33
2- क्रॉसरोड्स : 22 मार्च 1953
3- रवीन्द्रनाथ श्रीवास्ताव : प्रगतिशील आलोचना पृष्ठ 269
4- कम्युनिज्म इन इण्डिया : पृष्ठ 434-35

लेखक संघ को फिर से सक्रिय और संगठित करने के सार्थक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप दिसम्बर, 1966 ई0 में दिल्ली में संघ का छठा अधिवेशन आयोजित किया गया। गुजराती के प्रसिद्ध साहित्यकार गुलाबदास ब्रोकर की अध्यक्षता में हुए इस सम्मेलन में सज्जाद जहीर संघ के सचिव नियुक्त किए गए। इस अधिवेशन में पारित घोषणा पत्र में कहा गया - "हम मानवतावाद के महान आदर्श के अनुकूल विचारों और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं और उसका समर्थन करते हें क्योंकि हमारा विश्वास है कि वास्तविकता - विशेषतः सामाजिक वास्तविकता एक बहुपक्षीय और जटिल विषय है और उसकी व्याख्या में वस्तु और रूपाकार की बहुत सी विभिन्नताएँ संभव हैं। इसलिए हम यह घोषित करते हैं कि हम हमेशा साहित्यकारों और कलाकारों पर जो अपनी दृष्टि और कला के प्रति ईमानदार रहते हुए सच्चाई के, जैसा कि वे उसे देखते और अनुभव करते हैं, साक्षी बनते हैं, सैद्धांतिक एकसारता आरोपित करने के प्रयत्नों का विरोध करते रहेगें।[1]

ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सॉस्कृतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों में ही हिन्दी के 'प्रगतिशील साहित्य' का जन्म हुआ और फला-फूला तथा विकसित होकर लोकप्रिय बना। अखिल भारतीय लेखक संघ के अधिवेशनों और उसके संगठित करने के प्रयत्नों के फलस्वरूप अन्य भारतीय भाषाओं की भांति हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों ने भी संगठन के महत्व को समझते हुए समय-समय पर हिन्दी लेखकों के प्रगतिशील विचारों के आदान-प्रदान के लिए सम्मेलनों का आयोजन किया। वैसे तो सन् 1936 ई0 के अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सभापति पद पर हिन्दी के युग प्रवर्तक उपन्यासकार प्रेमचन्द के चुने जाने एवं निराला और पन्त जैसे कवियों द्वारा सड़ी गली मान्यताओं के विरोध में शंखनाद करने के बाद से ही हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील लेखन को स्फूर्ति प्राप्त हुई थी, फिर भी संयुक्त प्रयास की दृष्टि से सन् 1942 ई0 में हुए काशी के प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन का अपना महत्व है। इसी संघ का द्वितीय अधिवेशन 12 फरवरी सन् 1945 ई0 में हुआ जिसकी अध्यक्षता हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक नन्द दुलारे वाजपेयी ने की। इस अवसर पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद

1- डा0 रणजीत की पुस्तक हिन्दी की प्रगति कविता पृष्ठ 145 (लिंक 8 जनवरी 1967 से उद्घृत)

मिश्र और श्री बाबू राव विष्णुपराड़कर ने सारगर्भित वक्तव्य दिए जिसने प्रगतिशील हिन्दी आन्दोलन में नई जान फूँकी । आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने कहा - "प्रगतिशील साहित्य से तात्पर्य है साहित्य का नवीनतम प्रगति से जुड़ना इसके मूल में समाजवादी राष्ट्रीयता है। श्री बाबूराम विष्णुपराडकर ने साहित्य और प्रगति में सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा - राष्ट्रीय साहित्य और प्रगतिशील साहित्य कोई अलग अलग दो वस्तुएँ नहीं हैं क्योंकि प्रगतिशील साहित्य का राष्ट्रीय होना अनिवार्य हैं। किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रा ने प्रगतिशील साहित्य की समीक्षा बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से करते हुए कहा - "प्रगतिवादी लेखकों को अपने साहित्य में जन साधारण की समस्याओं को चित्रित करना चाहिये उन्हें केवल नाम के लिये फैशनेबुल प्रगतिवादी नहीं बनना चाहिए।"[1] इस अवसर पर एक घोषणा पत्र भी प्रकाशित हुआ जिसमें लेखकों से जातीय संकीर्णता तथा साम्प्रदायिकता से दूर रहने का भी आग्रह करते हुए स्पष्ट किया गया कि प्रगतिशील लेखक संघ एक स्वतंत्र साहित्यिक संस्था है, जिसकी अपनी नीति, उद्देश्य और विधान हैं, जिनसे वह संचालित होता हैं उसे किसी कोरे राजनीतिक संगठन से नीति और निर्देश उधार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रगतिशील लेखक संघ साम्यवादी दल की नहीं उन लोगों की संस्था हैं जो इसके सदस्य हैं अथवा बनेंगे।"[2]

2.5 निष्कर्ष

राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का अभी तक कोई ऐसा संगठन नहीं था जिसमें समान धर्मा लेखक अपने विचार-विनिमय का उपयुक्त अवसर पा सकते। इसी दिशा में वरिष्ठ साम्यवादी विचारधारा के लेखकों के प्रयत्न से सन्, 1947 ई0 में महापंडित राहुल सॉकृत्यायन की अध्यक्षता में इलाहाबाद में पहला अधिवेशन आयोजित हुआ । इस अवसर पर सम्मेलन में भाग लेने वाले लेखकों ने स्वतंत्र भारत की नई राष्ट्रीय सरकार के गठन का स्वागत करते हुए देश के साम्प्रदायिक दंगो की आग को शान्त करने और भारत के सांस्कृतिक

1- हंस : फरवरी - मार्च 1945 पृष्ठ 300

2- वही पृष्ठ 302

नवनिर्माण में सरकार को पूर्ण सहयोग देने का निश्चय किया। सरकारी सेंसर नीति की आलोचना तथा मलाबार और तिरूवॉकुर में प्रगतिशील साहित्यकारों के दमन का विरोध भी किया गया। इस सम्मेलन में लेखकों के अधिकार यथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर विशेष जोर दिया गया। ब्रिटिश सरकार द्वारा बन्दी बनाए गए स्वाधीनता सेनानियों की शीघ्र एवं सम्मानप्रद रिहाई की माँग भी सरकार के सामने रखी गई।"[1] हिन्दी के प्रगतिशील लेखक संघ का द्वितीय अखिल भारतीय अधिवेशन फिर से इलाहाबाद में ही दिसम्बर 1957 ई0 में हुआ। यह अधिवेशन दस वर्ष के लम्बे अन्तराल पर हुआ था, इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का जोश किस प्रकार धीरे धीरे ठण्डा पड़ने लगा था। यही कारण है कि व्यावहारिक रूप से बहुत से आलोचक यह मानने लगे कि हिन्दी काव्य में प्रगतिशील आन्दोलन का सन् 1948 में ही असामयिक अवसान हो चुका था। साहित्यिक दलबंदी, गुटबाजी या खेमेबाजी के कारण भले ही प्रगतिशील आन्दोलन को एक जबरदस्त झटका लगा हो किन्तु यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्रगतिशील आन्दोलन के कारण ही साहित्य का यथा समय परिष्कार हुआ और वह पूंजीपतियों, सरकार और सामन्तशाही के शिकंजे से मुक्ति पाने में सफलता हासिल कर सका। पारस्परिक विवाद से उत्पन्न दलगत कटुता के बावजूद साहित्य में वैचारिक उत्तेजना उत्पन्न करने का श्रेय तो प्रगतिशील आन्दोलन को देना ही पड़ेगा । परम्परा के पाश से मुक्त करके एवं सामान्य जनता से जोड़कर कविता को जो अब तक केवल शिक्षित समुदाय का बुद्धि विलास समझी जाती थी, जनप्रिय बनाने के परिपेक्ष्य में यह आन्दोलन, मर-मर कर जी उठने में सामर्थ्यवान सिद्ध हुआ है। आज भी कोई साहित्यकार जनरूचि की अवहेलना करके सृजन का सक्षम दावेदार बनने का दम नहीं भर सकता। मात्र वर्ग चेतना, वर्ग संघर्ष अथवा मार्क्सवाद का नारा या दुहाई देकर कोई साहित्यकार प्रगतिशील लेखक नहीं कहला सकता। अतः यह कहना सही होगा कि आज प्रगतिवादी साहित्य-प्रचारात्मक सस्ती नारेबाजी को त्यागकर अन्तस्सलिला के समान जीवन और युग की चेतना की मूल शक्ति बन गया है। मानव का सम्पूर्ण क्षोभ,

---

1- हंस अक्टूबर सन् 1947

असन्तोष, पीड़ा, उल्लास, अदम्य उत्साह और अप्रतिहत शक्ति साहित्य में आज भी उसी प्रकार केन्द्र बिन्दु एवं आकर्षण के विषय हैं, जैसे सन् 1948 ई0 से पहले थे और इन विषयों तथा समस्याओं पर लेखन चलाने वाले कवि एवं कथाकार आज भी जन साधारण के हृदय में शीर्ष स्थान बनाए हुए हैं। दूसरी ओर साम्राज्यवादी एवं प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ संगठित होकर प्राणपण से इस प्रगतिवादी विचारधारा से प्रेरित साहित्यकार और साहित्य का गला घोटने की चेष्टा में अनवरत प्रयासरत हैं। आजकल हास्य-व्यंग्य शैली के माध्यम से प्रगतिशील विचारधारा को एक नवोन्मेष प्राप्त हुआ है और वह लोकप्रियता की लहर पर सवार देश के एक कोने से दूसरे कोने तक जनता जनार्दन का कण्ठहार बनी हुई है।

तृतीय अध्याय

नागार्जुन की प्रगतिशील चेतना की पृष्ठभूमि और प्रेरणास्त्रोत

वैसे तो प्रत्येक मानव अनन्त संभावनाओं का सुषुप्त बीज-रूप होता है किन्तु उसे जागृत एवं प्रस्फुटित करने के लिए प्रेरणारूपी जल की आवश्यकता होती हैं। साहित्यकार भी इसका अपवाद नही होता, भले ही उसे यह प्रेरणा अपने समकालीन सामाजिक, सॉस्कृतिक-साहित्यिक, राजनीतिक- आर्थिक परिवेश से मिले अथवा पारिवारिक स्नेहीजनों से मिले। युगान्तरकारी कवि नागार्जुन ठहरे आद्यन्त प्रगतिशील , अतएवं उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा में हर पग पर हर चौराहे और मोड़ पर सजग उन्मीलित नेत्रों से प्रत्येक विकासोन्मुखी घटना और उससे जुड़े मानव संदर्भ को जिज्ञासा पूर्वक निहारा, सराहा और ग्रहण की उससे साहित्यिक स्फूर्ति , फिर ढाल कर अपने चित्रात्मक शब्द विन्यास में 'त्वदीयम् वस्तु गोविन्द तुम्यमेव समर्पये' के अन्दाज में कर दिया समर्पित उसी समाज को जिससे उसे ग्रहण किया था।

3.1 प्रगतिशील चेतना की पृष्ठ भूमि

सन् 1911 में बिहार के एक गुमनाम से गॉव में पैदा हुए बालक नागार्जुन ने अपने शैशव में ही स्नेहमयी मॉ को खो दिया। शायद अर्थाभाव के कारण सुचारू चिकित्सा के अभाव में। शिशु मन मे नारी की उस त्यागमूर्ति एंव दैन्यावस्था की छवि जो एक बार अंकित हुई सदा सर्वदा के लिए, उसके भावी लेखन का केन्द्र-बिन्दु एव वर्ण्य विषय बन गई। नारी की असहाय, उपेक्षित और हर प्रकार के शोषण का शिकार बनने के लिए मजबूर उसकी परमुखापेक्षी अवस्था, उनकी अनेक कविताओं का विषय बनी है। विज्ञापन सुन्दरी, शकुन्तला, शूर्पणखा, अहल्या, जोड़ा मन्दिर, एक फांक आँख एक फांक नाक और जूनि अबउ भरि राति मेल ट्रेन आदि कविताओं में विविध रूपा नारी व्यक्तित्व देखने को मिलता है। हमें उनके काव्य मे आरंभ से रूढ़ियों के प्रति विद्रोह , दीन-हीन जन के प्रति अमित सहानुभूति ही नहीं वरन्

अपनेपन की भावना की झलक शोषण और अत्याचार के खिलाफ तीव्र आक्रोश की भावना मिलती है। नागार्जुन रातोरात प्रगतिशील जनवादी रंग में नहीं रंगे अपितु यह चिन्तन और इस विचारधारा के प्रति लगाव उनमें स्वतः स्फूर्त एवं सहोदर सहचरा जैसा मालूम पडता है। 'जाके पाय न फटी बिवाई सो का जाने पीर पराई' नागार्जुन के समस्त साहित्य में समाई पीर उनकी स्वानुभूत पीडा है। इसीसे कलम उनकी भावानुगामिनी बन गई। नारी की विशाल हृदयता उस पर समाज द्वारा थोपी शालीनता, सहनशीलता ने उसे पूजा घर की निर्जीव मूर्ति में बदलकर, अपने हाल पर सिवाय ऑसू ढलकाने के अन्य कुछ न कर पाने की असमर्थता तथा उन दिनों की नारी की असूर्यम्पश्या स्थिति कवि के सूक्ष्म पर्यालोचन से कभी ओझल नहीं हो पायी। विवशता की बेडियों में कराहती दम तोडती सामर्थ्यवान पुरूष समाज की जननी को परिस्थितियों की कैद से मुक्ति की प्रेरणा दिलाने के लिए नागार्जुन की लेखनी में अपूर्व छटपटाहट दिखाई पड़ती है :

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं।

× × × ×

उथल पुथल है जन जीवन में
सभी ओर उत्क्रांति हो रही
टूट रहे हैं अन्तःपुर के ढाँचे
आज या कि कल
तुम भी तो निकलोगी बाहर
हवेलियों से डेवढ़ियों से। (तालाब की मछलियाँ)

3.2 **प्रकृति से प्रेरणा - पीपल के पीले पत्ते**

अबोध शैशव काल में ही स्नेह की छाया माँ से बिछोह और उग्र व्यक्तित्व पिता ने बालक ठक्कन को अन्तर्मुखी बनने को विवश तो किया ही होगा लेकिन इस कारण बाल सुलभ चंचलता को झाड़कर वह अपने चारों ओर घट रहे दृश्य पर अपनी तरह से सोचने, कार्यकारण सम्बन्ध जोड़ने की ओर भी मुड़े होंगे। उधर अपने पिता के घुमन्तु स्वभाव से उन्हें प्रकृति और

समाज की विविधता के भी दर्शन सहजता से हुए होंगे। जितना बहुत से लोग प्रौढ़ होने तक देख-सोच और समझने का अवसर नहीं पाते, उतना नागार्जुन को तरूणावस्था तक ही प्राप्त हो गया होगा, फिर अनुभवों की आँच और सोच की भट्टी में तपकर उनकी लेखनी में रंग कर जो कलाकृति साहित्य के उपभोक्ता को मिली, वह निश्चय ही उपादेयता की दष्टि से अपने आप में अनुपमेय है। उनकी घुमक्कड़ी का जो लाभ उनके कवि को मिला उसे हम उनकी कविता में सहज ही देखते हैं। "भारत मे पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्खिन सब तरफ के जीवन और सब तरफ की प्रकृति से नागार्जुन का सहज परिचय है। जीवन की विपुल अनुभव -राशि किसी कवि की चेतना को किस रूप में ढालती है, नागार्जुन की कविताएँ इसका अकाट्य उदाहरणहैं।"[1] प्रकृति से कवि के सहज तादात्मय के दर्शन करने हों तो उनकी प्रसिद्ध कविता 'बादल को घिरते देखा है' की एक ही झलक यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि कवि के घुमन्तु स्वभाव के कारण प्रकृति का साहचर्य उसे कितने उत्कृष्ट शब्द चित्र, प्रस्तुत करने योग्य, विशुद्ध एवं पवित्र भावोत्पादक कविता लिखने को प्रेरित ही नहीं, मानों बाध्य कर सका हो। इसी प्रकार फिसल रही चांदनी, हरे हरे नए पात, नंगे तरू हैं, 'नंगी डाले,' सुबह सुबह' तथा 'वसन्त की अगवानी' जैसी सभी कविताओं को पढ़कर 'यात्री' कवि को जगह जगह और समय समय पर प्रकृति के नयनाभिराम रूप के दर्शन और वर्णन का अवसर और प्रेरणा नित्य निरन्तर मिलती रही है। लेकिन प्रकृति की गोद में अनिवर्चनीय सुख प्राप्त करते हुए भी जनवादी कवि इहलोक वासी होने के कारण पारलौकिक कल्पना-जाल में नहीं उलझता बल्कि प्रकृति से माता-पुत्र अथवा गुरू-शिष्य सम्बन्ध रखते हुए उससे उत्साह, शौर्य एव उन्मेष प्राप्त करते हए अपने उद्देश्य के प्रति बराबर सजगता की झोली को सहेजे बरबस गुनगुना उठता है -

खड़-खड़-खड़ करने वाले
ओ पीपल के पीले पत्ते!
अब न तुम्हारा रहा जमाना
शकल पुरानी रंग पुराना

1- नागार्जुन की कविता : अजयतिवारी पृष्ठ 28

सीख पुरानी ढंग पुराना
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है
बदल गई ऋतु राह देखती लाल-लाल पत्तों की दुनियाँ
हरे हरे कुछ भूरे-भूरे टूसों से लड़ रही टहनियां।[2]

पतझड़ और उसका पीछा करता हुआ आ रहा वसन्त देखते ही कवि प्रकृति की गोद में भी मानव-समाज की अड़ियल बूढी पीढ़ी और उसका स्थान पाने की आतुरता पूर्वक प्रतीक्षारत युवा पीढ़ी के पारस्परिक मतभेदों, संघर्षो से ग्रस्त जीवन्त समस्या का समाधान सरलता पूर्वक संधान करके समाज के सामने प्रस्तुत कर देता है। आज जिस जेनरेशन गैप के कारण भारतीय समाज के अगणित परिवार और राजनीतिक दल विघटन के कगार पर पहुंच रहे हैं, वे मानों प्रकृति से आँखे मूंद कर कान बन्द किए हैं अथवा देखकर भी न देखने का स्वांग भरते हैं।

3.3 क्रांतिकारी देश-भक्तों से प्रेरणा

प्रगतिशील साहित्य की नींव की जब पहली ईंट रखी जा रही थी, वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' बनने की तैयारी में थे, देश में दिल हिला देने वाली घटनाओं का सिलसिला चल रहा था। पराधीनता की बड़ियों में जकड़ी भारत माँ को स्वतन्त्र कराने के लिए आजादी की दीवाने अपना सब कुछ दांव पर लगाकर फाँसी के फन्दे को चूमने के लिए मतवाले हो रहे थे, ऐसे समय में हाथ पर हाथ धरे मूकदर्शक बने रहना किसी भी जनवादी प्रगतिवादी लेखक के लिए सामाजिक दायित्व से मुह मोड़ना - आँखे मूँदना जैसा कहलाता है। क्रांतिकारियों के ये बलिदान सन् 1936 मे प्रकाशित उनकी रचना 'अन्तिम प्रणाम' में इस प्रकार रूपायित होते है -

---

1- पीपल के पीले पत्ते : प्रकाशन 1937 ई0

कृत-कृत नहीं जो हो पाए,
प्रत्युत फांसी पर गए झूल
कुछ ही दिन बीते हैं फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल!
उनको प्रणाम!
दृढ व्रत औ' दुर्दम साहस के
जो उदाहरण थे मूर्तिमन्त,
पर निरवधि बन्दी जीवन ने
उनकी धुन का कर दिया अन्त (उनको प्रणाम, 1936)

3.5 श्री लंका प्रवास

फिर नागार्जुन बनने के लिये जन्म भूमि- मातृभूमि त्याग समुद्रपारीय पड़ोसी देश श्रीलंका का प्रवास, विख्यात विद्यालंकार परिवेण में अध्यापन और बौद्ध भिक्खु होना भी मातृभूमि के प्रति उनके अटूट रागात्मक सम्बन्ध को पहले से भी अधिक भावाकुल बना देता है। जब सम्पूर्ण देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन पराकाष्ठा के दौर से गुजर रहा था,उनके आत्मीयजन उसमें बढ़ चढ़कर अपनी भूमिका अदा कर रहे थे, उनकी अपनी जन्मभूमि बिहार में किसान और मजदूर साम्राज्यवादी सरकार के प्रति विद्रोह पर उतर आए थे, ऐसे में भावुक युवा कवि कैसे शांत और मूक रह सकता था। उसके अन्तर्तम में स्वयं को दायित्व से पलायन का दोषी महसूस करते हुये अनायास ही, मानों दिसम्बर 1937 में प्रकाशित जन्मभूमि शीर्षक कविता में रूदन करते हुये फूट पड़ा-

जीवनक उद्देश्य की ,पथ कौन,
कैल निश्चित मुड़ा भेल विलम्ब!
बूझि पड़ल कल्याणमय, तैं हेतु-
जा रहल छी, एहि देश हम अन्न!

3.6 सन् 1939 का चम्पारन का किसान आन्दोलन

इसके बाद सीधे बिहार के अमबारी स्थान पर स्वामी सहजानन्द द्वारा चलाए जा रहे किसान आन्दोलन में शरीक होने पर राहुल जी के साथ साथ छह मास की जेल यात्रा की'। 'जनजीवन से जुड़े' कवि को जेल में भी चैन कहां! उसे तो अपने आस पास चहुं ओर बिखरी काव्य सामग्री ही बेधती और हुलसाती है। द्रष्टव्य है सन् 1939 में चम्पारन के सत्याग्रह के बाद जेल जीवन और जेल की खिड़की से बाहर गंधमादिनी रजनीगन्धा से प्रेरित रचना 'रजनीगन्धा' का यह अंश -

प्रहरी परिवेष्टित इस बन्दीशाला में
मैं सडूं सही, पर ताजी रहे कहानी
तुम खिलो रात की रानी
यह प्रहरी के बूटों की कर्कश टापें
रह रह कर बहुधा नींद तोड़ जाती हैं
आंखे खुलती हैं तो बस झुंझला उठता हूं
ये हृदयहीन! ये नर पिशाच! ये कुत्ते!

3.7 रविठाकुर, प्रेमचन्द्र, भारतेन्दु, निराला का प्रभाव

इन्हीं दिनों साहित्यजगत में सुमित्रानन्दन पन्त और 'निराला' अपने ढंग से साहित्य को ग्राम बीथियों और अर्थाभाव से पीड़ित किसान-मजदूरों के जीवन से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। पन्त जी ने अभावों, मजबूरियों हताशा और अकर्मण्यता की विवशता को भोगते ग्रामीण जीवन को अपनी लेखनी से जीवन्त और मूर्त्त बनाने की चेष्ट की, तो निराला ने 'तोड़ती पत्थर' 'बादल राग' और 'कुकुरमुत्ता' जैसी कविताओं द्वारा मजदूरों की आहों, शोषित, पीडित दलित और भूमिपुत्र होते हुए भी स्वामित्व के अधिकार से वंचित खेतिहर और गरीबों का खून चूसकर इतराते, इठलाते पूंजीपति को अपनी लेखनी का निशाना बनाया। अपने पूर्ववर्ती अग्रज तुल्य, समान -

---

1- नागार्जुन : मेरे बाबू जी : शोभाकांत पृष्ठ 17

धर्मा, मुंहफट 'निराला' से नागार्जुन को मनोवांछित प्रेरणा और दिशा-निर्देश मिला। अपने पूर्ववर्ती इन कवियों का व्यक्तिगत जीवन एवं उनका साहित्य भी बाबा के लिए कम प्रेरणादायी नहीं रहा होगा। संभवतः उनके रचनाकर्म के कारण ही उनके प्रति आदर की भावना से परिपूर्ण काव्यांजलियां, उन्होंने इन आदर्श पुरूषों को अर्पित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझा। रवि ठाकुर (1941) प्रेमचन्द के प्रति - लो देखो अपना चमत्कार (सन् 1948), भारतेन्दु (1950) महाकवि निराला (1950) आदि कतिपय ऐसी रचनाएँ हैं, जिनसे लगता है, कि किसी न किसी रूप में नागार्जुन अपने साहित्यिक जीवन में प्रभावित अवश्य ही हुए हैं। 'रविठाकुर' के प्रति कविता में तो तुलना करते हुए कवि अपने विपन्न जीवन को ही मानों अपनी रचना की मूल प्रेरणा मानता दिखाई पड़ता है जो इन पंक्तियों से पुष्ट प्रायः होता है -

पैदा हुआ था मैं -
दीन-हीन-अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि? मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते हैं
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में
मुझको भी मिली है प्रतिभा की प्रसादी .....
मुझसे भी शोभित है प्रकृति का अंचल .....

दरिद्रता ही जिसके रचनाकर्म की आधार शिला रही हो, जो अभाव का आसव पी पीकर साहित्यिक पुष्टि प्राप्त करने की क्षमता और हौंस रखता हो वही स्वाभिमान से सिर ऊंचा करके, कहने का साहस करेगा कि उसने साहित्य-स्थली को शोभायमान बनाने में अपना दायित्व निभाया है। वही गरीबों के जीवन का साहित्य में यथातथ्य निरूपण करने का दुस्साहस करेगा। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों से गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों के जीवन का एहसास नहीं हो सकता। अतएव नागार्जुन को जनसामान्य से जोड़ने में जो एकाधिक कारक रहे

हैं, उनमें सबसे जबरदस्त उनका स्वयं का अनुभूत सत्य है। वह कागद की लेखी'न कहकर 'आँखन की देखी' कहने वाले और पाठक के अन्तस्तल की गहराइयों को छू लेने की सामर्थ्य के धनी हैं। सन् 1928 से 1939 तक देश की स्वाधीनता के लिए विभिन्न आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी और बन्दी जीवन में विविध अनुभवों की प्रेरणा कवि के लिए जहाँ स्फूर्तिदायिनी बनी, वहीं 'भारतीय नारी के परित्यक्ता जीवन से भी वे भावविभोर हुए बिना न सके अपनी स्वयं की पत्नी अथवा अपने जैसे अनेक उच्च शिक्षित विवाहोपरान्त, भगोड़ा बने लोगों की पत्नियों की तपस्या और त्याग से भाव विहवल होकर वह कह ही उठते हैं -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल !
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल !

× × × × ×

सान्ध्यनभ में पश्चिमान्त समान
लालिमा का जब करूण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल

3.8 शिशुओं से प्रेरणा

साम्यवाद से प्रभावित होते हुए भी ध्यातव्य है कि कवि स्वभावतः अत्यधिक संवेदनशील हैं। जीवन में चारों ओर कठोर और खुरदरा यथार्थ विखरा होने और उसका यथातथ्य चित्रण करने के लिए कटिबद्ध एवं प्रगतिवादी विचारधारा का कट्टर समर्थक और प्रसारक होते हुए भी नागार्जुन बच्चों के बीच सच्चे सार्थक स्वरूप में बाबा (पितामह) बनकर वात्सल्य रस के प्रति अपनी ललक को नहीं रोक पाते। पेड़ - पौधों, पशुओं से लेकर मानव-शिशु तक सभी रूपों में मचलता, जीवन से सराबोर बचपन, उन्हें बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। फिर तो कवि हृदय दुनियादारी से बेखबर बच्चा बादशाह की प्रशस्ति में चहक उठते हैं -

तुम्हारी यह दन्तुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि धूसर तुम्हारे ये गात .....
छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण
पिघलकर जल बन गया होगा पाषाण
छू गया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल
बाँस था कि बबूल ?

मन के कोमल तमतारों को झंकृत करने वाले इस रूप के विपरीत रह रह कर मातृभूमि की पराधीनता के कारण नागार्जुन घूम कर फिर अपनी कर्मस्थली पर आकर देश के लिए कुछ कर गुजरने के भाव से इधर उधर दृष्टि डालते हैं तो देश के विगत गौरव के प्रतीक सिन्धुनद की लहराती जलराशि पर उनकी नजर ठहर जाती है -

इस महादेश की जनता का
तेरे प्रति है विश्वास और
हे दूत, महान हिमालय के
सन्देश सुनाना भूल गए
तुम बने इधर चिरमूक, उधर
लाखों फाँसी पर झूल गए।

सिन्धुनद को सम्बोधित यह कविता समकालीन महाकवि दिनकर की 'मेरे हिमगिरि मेरे विशाल' की भांति निश्चय ही युवा हृदय को आलोड़ित करके देश के खोए हुए गौरव की पुर्नप्रतिष्ठा के प्रति अनवरत प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देती है। अपने पिता से विरासत में मिली घुमक्कड़ी और कमजोर आर्थिक स्थिति, गृहस्थ जीवन में उनके लिए भले ही अभिशाप सिद्ध हुई हों किन्तु घुमन्तु जीवन से उन्हें भारतीय जीवन की विविधता से निकट

परिचय करने का मौका मिला तो वह क्षेत्रीय और भाषाई सीमाओं को तोड़कर लोककवि से राष्ट्रीयजन कवि बनने में सफल हुए। घूमने से प्राप्त जीवन की विपुल अनुभव राशि का निरूपण उन्हें आधुनिक हिन्दी साहित्य के कबीर के आसन का अधिकारी बनाता है। जीवन के अनुभव और रचनात्मक साहित्य में जितना प्रत्यक्ष सम्बन्ध नागार्जुन के काव्य में मिलता है उतना विभिन्न कारणों से उनके समकालीन या बाद के अधिकांश कवियों में नहीं मिलता।[1] दूसरी ओर विरासत में मिली आर्थिक विपन्नता ने उन्हें वर्ग-संघर्ष तथा जीवन के कटु यथार्थ से आमने-सामने होने का अवसर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप जगा उनके कवि मानस में आलोचनात्मक विवेक। अनुभवों की पूंजी और विवेक-सम्मत आलोचना ने निश्चय ही नागार्जुन को जनप्रिय एवं लोकोपकारक कवि के रूप में उभरने की ऊर्जा प्रदान की। यही कारण है कि वह परम्परावादी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होने के बावजूद ब्राह्मण-संस्कारों के प्रति उग्रतापूर्ण प्रदर्शन करने से भी नहीं चूकते और बौद्ध मठ में रहते हुए, बौद्ध भिक्खु बनकर भी मन से तो बौद्ध बन ही नहीं सके।

3.9 **धार्मिक शोषण - भगवान एक कल्पना, दिवालो**

हिन्दू और बौद्ध धर्म के बाह्य एवम् आभ्यंतर स्वरूपों को अच्छी तरह पहचानने के बाद धर्म की भूमिका का खोखलापन उनपर प्रकट होने लगा। उन्हें अब स्पष्टतः प्रतीत हान लगा कि समकालान जीवन में धर्म की अब कोई प्रगतिशील सामाजिक भूमिका नहीं रह गयी है अपितु मनुष्य धर्मान्धता के कारण अनेक अमानुषिक कार्यों में बढ़कर हिस्सा लेने पर उतारू हो जाता है अथवा ईश्वर पर अन्धश्रद्धा के कारण मनुष्य अकर्मण्य, आलसी, विवेकशून्य एवं जीवन के यर्थाथ से पीठ दिखाकर पलायनवृत्ति की ओर उन्मुख होता है। मानव चेतना से दैवी शक्तियों का आतंक उतार फेंकने को आतुर कवि जनसाधारण के मन की बात कहता हुआ बोल उठता है -

लिया मैंने मुक्ति पथ को देख
नदी कर ली पार उसके बाद
नाव को लेता चलूं क्यों पीठ पर मैं लाद
सामने फैला पड़ा है शतरंज सा संसार
स्वप्न में भी न समझता मैं इसे निस्सार

लिया मेने मुक्ति पथ को देख
नदी कर ली पार उसके बाद
नाव को लेता चलूं क्यों पीठ पर मैं लाद
सामने फैला पड़ा है शतरंज सा संसार
स्वप्न में भी न समझता मैं इसे निस्सार
इसी में भव इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन इसी में प्राण

× × × × ×

कल्पना के पुत्र हे भगवान, चाहिए मुझको नहीं वरदान । (सन् 1946)

हाथ पर हाथ धरे, ईश्वर भरो से रह कर सॉसारिक दुख संतापों को भाग्य के भरोसे झेलने की विवशता से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से ही कवि ने ईश्वर को मानवमन की मात्र कल्पना कहकर मनुष्य को 'कर्म क्षेत्रे कुरूक्षेत्रे' बाहुबल की आजमाइश करने के लिए ललकारा है। उसी प्रकार लक्ष्मी पूजन का मजाक उड़ाते हैं -

कब तक चलेगा ऋण, कब तक उधारी
झुकाकर व्यथित माथ
खाली मन खाली हाथ
पूजें तुम्हें कैसे कोटि-कोटि नर-नारी
घर घर हो स्वर्ग धाम, जन जन को पूर्णकाम
द्वार द्वार उमगे दीपावली प्यारी।

झूठी शान शौकत के साथ दिवाली मनाकर दिवाला निकालते लोगों की हालत से जैसे 'लक्ष्मी' कविता की रचना करने की कवि को प्रेरणा मिली हो। उधर लोगों को अभावों से जूझते देखा, उनकी दयनीय दशा से प्रेरित होकर लगता है कि समाज में व्याप्त निर्धनता के

के इस कलंक के लिए यदि ईश्वर (विष्णु) ही जिम्मेदार है तो उसके प्रति भी आक्रोश व्यक्त करने के लिए कवि का मन व्याकुल हो उठता है।

मन करता है :
मैं उस अगस्त्य सा पी डालूँ सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल-वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊँ फिर इस तट पर
अन्त्येष्टि करूं; लकड़ी तो बेहद मंहगी है
इस बालू में दफना दूं नंगा करके।

समदर्शी भगवान के संसार में आर्थिक असमानता के लिए उस सिरजनहार की पोले खोलकर उसे नंगा ही कर डालना चाहता है कवि, और पुरातन संस्कारों से विद्रोह करते हुए हिन्दू धर्म के विपरीत अंत्येष्टि के स्थान पर वह उसे बिना कफन के दफन करने का प्रस्ताव रखता है क्योंकि लकड़ी और कपड़ा तो जिन्दा लोगों को खाना पकाने और तन ढकने को भी उपलब्ध नहीं है तो मुर्दालाश के लिए इतनी फिजूल खर्ची भी आखिर क्यों?

3.10 **नारी शोषण के विरूद्ध बगावत - भिक्षुणी, अहल्या**

बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् नागार्जुन बने वैद्यनाथ मिश्र को भिक्षु एवं भिक्षुणियों के जीवन को वास्तविकता की कसौटी पर कसने का भी अवसर मिला। विभिन्न विवशताओं के कारण बचपन में ही भिक्षुणी तथा भिक्षु बने लोग स्वविवेक जागृत होने पर किस प्रकार मनमसोस कर अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को बेमौत मरते देखते हैं, इसे देखकर ही शायद कवि को भिक्षुणी जैसी कविता लिखने की प्रेरणा मिली होगी ओर बचपन से यौवन की दहलीज पर पदार्पण करती उस अनाम भिक्षुणी के उद्‌गारों को मानों वाणी मिली -

भगवान अभिताभ सहचर मैं चाहती
चाहती अवलंब चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बात लो कहती हूँ आज मैं -
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती .....
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मैं होती।" (युगधारा पृष्ठ 19 सन् 1946)

बुद्ध के प्रति भिक्षुणी के आकर्षण का केन्द्र है मातृत्व की भूख जो एक मानवीय आकांक्षा है किन्तु सन्यास के आवरण में न जाने कितनी साध्वियाँ/भिक्षुणियाँ इस सहज-स्त्रीसुलभ आवश्यकता को कुचलने को विवश हैं। मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से युवावस्था के इस ओढे हुए अनासक्ति के कौषेय की निरर्थकता को भलीभांति समझा जैसा सकता है। इसीप्रकार रामायण के अहल्या उद्धार प्रसंग से प्रेरणा प्राप्त करते हुए वह अहल्या के मन की शंका को भी आधुनिक परिपेक्ष्य में, स्वभाव से सामन्ती प्रथा के प्रतीक पुरूष वर्ग के प्रतीक राम के समक्ष रखने में तनिक भी संकोच न करते हुए कहते हैं -

अन्त:पुर में षोडशियों के मध्य
बिता सकोगे तुम भी तब दिन-रात
शरद शिशिर मधु ग्रीष्म और बरसात
नहीं अहल्या आएगी फिर याद।

श्रीराम अहल्या में नारी के पूजनीय मातृस्वरूप का दर्शन कर उसे पॉव छूकर प्रतिज्ञाबद्ध होकर कहते है -

जीवन भर वह तुम्हें रखेगा याद
नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर
नहीं करेगा वह दूसरा विवाह
सदा रहेगा एक पत्नीव्रतशील
कभी न मेरे अन्तःपुर के मध्य
होगा षोडशियों का जमघट व्यर्थ
नहीं करूंगा सपने में भी अम्ब
क्रयक्रीत दासी का भी अपमान।

नागार्जुन के प्रेरणा स्रोत वैसे तो मूलतः आधुनिक सामाजिक समस्याओं तथा उनमें निहित मानवीय संदर्भों से जुड़े हैं परन्तु पोषण हेतु उनके काव्य की जड़ें प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य और समाज में प्रवहमान मानवीय धारा से रस लेने में परहेज नहीं करतीं। यहाँ अहल्या-राम वार्ता में भी आधुनिक नारी समाज का सिरदर्द पति के बहुविवाह के कारण उसके जीवन को नारकीय बना देने की समस्या की ओर इंगित करता है। यहाँ नागार्जुन भक्तिकालीन कवि-नागार्जुन के मन की भड़ास 'कत विधि सृजी नारिजग माहीं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे निराला ने स्वयं को तुलसीदास की भावधारा से जोड़ा था। डा0 अजय तिवारी के शब्दों में हिंदू जाति की संघर्षशील चेतना का विकास करने वाले कवि नागार्जुन का तुलसी और निराला की - भक्ति आन्दोलन और छायावाद की सामन्त विरोधी परम्परा से जुड़ना स्वाभाविक ही है।[1]

3.11. सरकारी वितरण प्रणाली और कृत्रिम अभाव की स्थिति

नागार्जुन के काव्य का एक मुख्य प्रेरणा स्रोत कष्टमय, कलहपूर्ण एवं उपेक्षित जीवन जी रहे अथवा जीने के लिए बाध्य कर दिए गए समाज के साधन हीन वर्ग के देशवासी हैं। उनकी सक्रिय सहानुभूति ऐसे लोगों का पक्ष लेते हुए कभी तो कविता में व्यंग्य का रूप

1- नागार्जुन की कविता : अजय तिवारी

धारण करती है और कभी आक्रोश का। सरकार के कुप्रबन्ध और पूंजीपतियों द्वारा अनाज को अण्डरग्राउंड करने की कला की देन अकाल का केसा सजीव चित्रण उन्होंने किया है -

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

अकाल के दिनों में न केवल मनुष्य अपितु कीडे-मकोड़े, पशु-पक्षियों तक की दुर्दशा कवि की पैनी दृष्टि से नहीं बच सकी, जिसकी पीडा ही मानों यहां 'अकाल और उसके बाद' कविता में अभिव्यक्त हुई है। यही नहीं अन्न के अभाव और भुखमरी से तड़पते निर्धन वर्ग की करूण पुकार जब सरकार के कानों से टकरा कर, निरर्थक बन लौटती है तो नागार्जुन चुनौती भरे स्वर में खबरदार करते हुए ललकारने लगते हैं -

राजनीति क्या नाप सकेगी अन्नब्रह्म की माया
कूटनीति क्या भॉप सकेगी अन्नब्रह्म की माया
मरी खाल की फूंक बनेगी अन्नब्रह्म की माया
दस लेनिन दस तिलक जनेगी अन्नब्रह्म की माया

भूखों की गुहार को अनसुना करने और दमनकारी कदमों के अंजाम से बेखबर शासकों की आँखें खोलने के लिए ही मानों कवि को यह कविता लिखने की प्रेरणा मिली। युवा पीढ़ी से देश के नवनिर्माण और उत्थान की आशा लेकर उसे सही दिशा की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहन देना भी कविकर्म है।

3.12 युवा पीढ़ी : परिवर्तन की आशा का एक मात्र केन्द्र

किसी भी देश की स्वस्थ युवा पीढ़ी की कर्तव्य-परायणता, कर्मठता एंव विवेक संगत भूमिका से समाज और राजनीति सदा प्रभावित होती है। नागार्जुन को भी युवा पीढ़ी से बड़ी आशाएं, नये खून में नये जोश को लक्ष्य करके उनकी रागिनी कुहुक उठती है -

तुम्हें नहीं तो और किसे हम देखें बोलो!
निविड़ अविद्या से मनमूर्च्छित
तन जर्जर है भूख प्यास से
व्यक्ति-व्यक्ति दुख दैन्य ग्रस्त है
दुविधा में समुदाय पस्त हैं
लो मशाल अब घर-घर को आलोकित कर दो
सेतु बनो प्रज्ञा-प्रयत्न के मध्य
शान्ति को सर्व मंगला हो जाने दो
खुश होंगे हम -
इन निर्बल का यदि उपहास तुम्हारा
क्षणिक मनोरंजन करता हो
खुश होंगे हम।

नागार्जुन ने तरूण पीढ़ी की दुखती रग पर मानो हाथ रख दिया हो। वे बालक जो बीते पौरूष का उपहास उड़ाते हैं, उन्हें देश और समाज के सपने साकार करने के लिए, उनसे रचनात्मक भूमिका अदा करने की बात कहकर, सखा भाव से वह उनका मार्गदर्शन करते हैं। अन्याय, अत्याचार और शोषण को निरपेक्ष एवं उदासीन होकर देखते तरूणों की उभरती जवानी, बूढ़े से बूढ़े कवि की प्रेरणा स्रोत बन जाती है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होते हुए श्री नागार्जुन को कोई भी ऐसी घटना जिससे समाज प्रभावित होता हो, विचलित किए बिना नहीं रहती। भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद भी जब सम्प्रदाय, धर्म , मजहब और अर्थाभाव तथा अन्न के संकट के काले बादल देश के क्षितिज पर गहरा रहे थे, देश में साम्प्रदायिक सौमनस्य की एक मात्र किरण के रूप में राष्ट्रपिता गाँधी की ओर समस्त जनता बड़ी आशा और श्रद्धा से टकटकी लगाए थी किन्तु साम्प्रदायिक उन्माद से उन्मत्त, जब एक स्वदेशवासी ने ही उनकी निर्मम हत्या कर

कर दी तो देश ही नहीं अखिल विश्वपरिवार के नयन अश्रुपूरित हो गए। लोग स्वयं को असहाय और अनाथ समझकर हाहाकार कर उठे। नागार्जुन ने जनता की बेबसी के ये आँसू देखे और सहन नहीं कर पाने की स्थिति में जोश में आकर कह उठे -

हाँ बापू, निष्ठापूर्वक मैं आज शपथ लेता हूँ
हिटलर केये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे -
हिन्दू-मुस्लिम-सिख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी -
संप्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खंडहर न बनेंगे
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊंगा। (शपथ : सन् 1948)

बचपन के दिन किसी भी मानव-मन में स्मृति की अशेष और अमिट छाप लिएअंकित रहते हैं। बाल्यावस्था के मित्रों के साथ नदी किनारे खेत-खलिहान कछारों और अमराइयों में धमा चौकड़ी की वे सब करतूतों कवि के स्मृति पटल पर फ्लैशबैक के समान उभर कर साकार हो उठती हैं। बस फिर न सही तन, परन्तु मन तो बरजोरी उड़ानभर उसी चिरस्मरणीय-रमणीय क्रीड़ा प्रांगण में जा पहुंचता है। ऐसे में कवि का मन अपने बाल सखा को पत्र लिखने के लिए आतुर हो जाता है। हृदय की सारी विवशता जन्य पीड़ा वह उस पत्र में उंड़ेल देता हैं -

मैं प्रवासी
मित्र तुम तो देश मे हो
हो रही ईर्ष्या तुम्हारे भाग्य से
पर क्या करूं अभिशप्त ठहरा
बन्धु मेरे पास भी यदि
बाप दादों की उपार्जित भूमि होती
धान होता बखारों में
आम कटहल लीचियों के बाग होते

पोखरा होता मछलियों से भरा
फिर क्या न मैं भी
याद कर प्रथमा द्वितीया तृतिया (प्रेयसी) को
सात छेदों की रूपहली बासुंरी में फूंक भरता।

नागार्जुन के लिये धरती प्रेरणाका अजस्र एवं सतत स्रोत हैं, कारण सीधा और सपाट हैं वह वायवी कल्पनाओं में विहार करने वाले नही अपितु धरती से मन-प्राण की डोर से निरन्तर जुड़े रहने वाले कवि हैं। वह धरती में अनन्त संभावनाओं को साकार करने की क्षमता देखते हैं। उनके लिये 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याम्' की परम्परा पालन करने वाली कहावत नहीं बल्कि स्फूर्तिदायिनी ऊर्जस्विनी माँ वसुन्धरा अपनी संतति में सद्गुणों के स्फुरण और विकास की अपेक्षा और अभिलाषा की आकांक्षा पालने वाली प्राणवान जननी है। धरती मानव को पुरूषार्थ के लिये प्रोत्साहन देने वाली जननी है। कवि की मान्यता है कि धरती की सेवा मनोयोग पूर्वक करने वाले के मनोरथ अवश्य सिद्ध होते हैं-

धरती धरती है
सचल- अचल वस्तुओं की जननी
सर्वसहनशील अन्नपूर्णा वसुन्धरा
स्तुति नहीं श्रम-कठोर श्रम मांगती
चाहती आई हैं सदा से धरती
कर्षण-विकर्षण-सिंचन-परिसिंचन
वपन-तपन-सेवा-शुश्रूषा
कर-चरण-तन का सचेतन संस्पर्ष
सुदुर्लभ स्वेदकण
प्रतीक्षातुर नयनों के स्निग्ध तरल प्रेक्षण
शिष्योचित श्रद्धाभक्ति

पुत्रोंचित परिचर्या
पतिसुलभ प्रीति
मातृसुलभ ममतां
पितृसुलभ परिपोषण
चाहती आई है सदा से धरती

3.13 नेहरू नीति का विरोध कॉमन-वेल्थ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी यूरोप और विशेषतः विगत ब्रिटिश साम्राज्य से नाता जोड़े रहने की ललक में भारत को ब्रिटिश राष्ट्रकुल (कॉमनवेल्थ) का सदस्य बनाने का कदम बाबा को बड़ा ही कटु, अप्रीतिकर एवं अनुचित लगा अपने भूतपूर्व शोषक राष्ट्र का पिछलग्गू बने रहना उनके जैसे अन्य बहुत से राजनीतिकचिन्तकों को भी कचोट तो रहा था भलेही वे खुलकर अपना क्षोभ व्यक्त न कर सके हों। ऐसे में विनोबा जी द्वारा चलाया जाने वाला भूमिदान आन्दोलन, मुहफट जननेताओं द्वारा राजकीय प्रसाद रूपी उपकुलपति अथवा राज्यपाल पद पाने के लिए की जाने वाली अथक कोशिश, नागार्जुन को मर्मवेधी चोट पहुंचाती हैं। कोई भी समवयस्क राजनीतिज्ञ अथवा वरिष्ठ नेता नेहरू के विशाल एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के आगे मुंह खोलने से कतराता है। यह स्थिति कवि के लिए असहनीय होते हुए भी उसे जन-मन की पीड़ा को वाणी देने के लिए प्रेरित करके उनकी लेखनी से जयतिजयति जय सर्व मंगला' जैसी कविता लिखवा लेती है। ऐसे समय में वह परम्परागत राजपुरोहित अथवा राजगुरू की मुद्रा मे जवाहर लाल नेहरू को झिड़कते हुए कह उठते है -

लीला-ताण्डव-पंडित बनकर झूल रहे हो आसमान में
हे अद्भूत नटराज, तुम्हारा इन्द्रजाल मैं समझ न पाता।
समझ न पाता, कॉमनवेल्थी छकड़े पर क्यों सवार हो!
समझ न पाता, काशमीर में बन्दर पंञ्चों की अगवानी क्यों करते हो!

समझ न पाता इन्द्र सिंह ने कौन बड़ा अपराध किया है
जिसके कारण बेचारे का पीछा करती फौज तुम्हारी
रौंद रही नेपाल समूचा।

विविधताओं से सम्पन्न भारतीयों के जीवन में त्योहारों-उत्सवों का न केवल पौराणिक बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी बडा महत्व है। होली और दीपावली जैसे राष्ट्रीय उल्लासपर्व जन-मानस में प्रेम एवं उत्साह की लहर उठाकर जीवन मे उत्साह का सृजन करने की क्षमता रखते हैं। प्रत्येक घर-परिवार इन पर्वो को अपनी अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप अच्छे से अच्छे ढंग से मनाने का भरसक प्रयत्न तो करता है लेकिन पुरानी कहावत 'दिवाली दिवाला निकाल देती है' से भी खिसियाता है। यह जानते हुए भी कि गरीब के लिए तो सदा 'दिवाली स्वाद की जो घर घी गेहू होंय' वह बच्चों के मन को रखने की खातिर कर्ज लेकर भी इन त्योहारों को मनाता है, अन्यथा लक्ष्मी तो साहूकारों की तिजोरियों में कैद है। उस गरीब के लिए तो छूना और भोगना तो दूर दर्शन तक करना दुर्लभ है। पर सामाजिक प्रथा के पालन और परम्परा निर्वाह के लिए अथवा अन्धश्रद्धा, विश्वास और झूठी आशा के बहकावे में निर्धन वर्ग लक्ष्मीपजन करते हैं। श्रमहारा वर्ग की आंतरिक भावनाओं के चितेरे नागार्जुन ऐसे धनहीन जनों के लिए, अन्तस्तल से इस प्रकार के पूजन-अर्चन के विरोधी और प्रबल कटुआलोचक होते हुए भी धन की अधिष्ठात्री देवी से सवाल भी करते हैं, ओर साथ ही जन-जन के लिए शुभ दीपावली की कामना भी -

खाली मन खाली हाथ
पूजें कैसे तुम्हें कैसे कोटि-कोटि नरनारी
घर-घर हो स्वर्गधाम
जन-जन को पूर्ण काम
द्वार-द्वार उमगे दीपावली प्यारी

मुख मुख पर हास
सुखशान्ति पावें मानव-तन-धारी
दस बीस अरब पति
नहर लें तुम्हारी मति
प्रलय नहीं भर्चावें क्रूर कुविचारी। (लक्ष्मी सन् 1953)

3.14 भुखमरी और गरीबी

इस देश में कुछ लोग अधिक खाने और पाचन शक्ति की कमजोरी के कारण बीमार होते हैं तो कुछ लोगों को दोनों समय भरपेट खाने के लाले पड़े रहते हैं। जीवन भर सुबह से शाम तक हाड़तोड़ परिश्रम करने पर भी परिवार के सबसदस्यों के पेट भरने का जुगाड़ नही कर पाते, फिर भी स्वाभिमान के ऐसे धनी और व्यवहार के पाखंडी खाली पेट पर हाथ फेरते हुए, आवश्यकता से अधिक खा लेने का स्वांग भरते हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद कुछ वर्षो तक खाद्य पदार्थो की भारी तंगी के कारण गरीब और निम्नमध्यवर्गीय लोगों की हालत दयनीय हो गई थी। देश के अनेक भागों में अकाल की स्थिति एवं दोषपूर्ण सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कारण भुखमरी की घटनाएँ आम बात हो गई थीं परन्तु सरकारी पक्ष बराबर इन खबरों का खण्डन करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठा था। भुखमरी की इन घटनाओं ने संवेदनशील नागार्जुन के कवि मन को 'प्रेत का बयान' व्यंग्य कविता लिखने को उद्वेलित कर दिया -

'भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का!!'
निकल गया भाफ आवेग का

शान्त स्तिमित स्वर मे प्रेत बोला -

"जहॉ तक मेरी अपनी बात है

तनिक भी पीर नहीं

दुख नहीं, दुविधा नहीं

सरलतापूर्वक निकले थे प्राण

सह न सकी जब आंत पेचिश का हमला।" (सन् 1950)

यथार्थ की कठोरता आखे मूंदकर कल्पना के सुनहरे स्वप्न जाल बुनते अपने ही सहकर्मी कवि एंव साहित्यकार बन्धुओं के प्रति नागार्जुन का मन एक अजीव वितृष्णा से भर उठता है। जिन्हे वह पृथ्वी पर जीवन के सर्वसुखों का निरपेक्ष भाव से उपभोग करते देख महसूस करता है कि वे परोपजीवी अजगर के वंशधर हैं और सामाजिक उदासीनता को लक्ष्य करके अपने मन को समझाते हुए सहसा बोल उठता है -

सब कहीं खींच हैं सब कहीं तनाव -----

बीचों बीच खड़ा है वह अपटुडेट बाबा मलूकदास!!

समष्टि से निरपेक्ष,युग से उदास!!!

3.15 पूंजीपतियों की ठाठ पूर्ण जिन्दगी

जोंक की तरह समाज का खून चूस चूस कर तुन्दल, मुटल्ले हुए पूंजीपतियों की सन्तान की ऐयाशी और निठल्लापन किसी भी संवेदनशील मानव के मन में क्रोध का उबाल उत्पन्न कर देगा। जिस समाज में लोगों की नितान्त आवश्यक आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान भी पूरी न होती हों, शोषक वर्ग की गुलछर्रे उड़ाती सन्ताने मानो मानवता का मखौल उड़ा रही हैं। स्थिति सहनशीलता की सीमा का उल्लंघन करने लगती है तो ऐसे पूंजीपतियों की बिगड़ैल औलाद की स्वच्छन्दता, स्वैराचार और निरंकुशता की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए नागार्जुन की लेखनी से स्वतःस्फूर्त वाणिक्य पुत्र जैसी कविता निस्सृत

होती है -

कार में बैठकर निकला हवा खाने
गेंहुअन का पोआ .....
कगार पर पहुंच रहा है बचपन
टानना सीख गया है अभी से '555'

पूंजीपति-साहूकारों को समाज और राष्ट्र से कोई सरोकार नहीं। स्वार्थरत शोषक वर्ग पाषण हृदय से अकाल और भुखमरी के दो पाटों के बीच पिसती जनता की दशा से सहानुभूति रखने के विपरीत अपने लाभ की ही योजनाएँ बनाने में दत्तचित्त रहता है। विशेष रूप से जब जनता के तथाकथित प्रतिनिधि अपनी कुर्सी की दौड़ और राजनीति के संगठन में अपनी स्थिति मजबूत करने में ही व्यस्त हैं धनिक वर्ग को मनमानी धाँधली करने का मौका मिलता हैं। समस्त सरकारी योजनाएँ अधर में लटकी रह जाती हैं। जन कल्याण के स्थान पर जन-जन का आर्थिक शोषण ही पूंजीपति वर्ग का उद्देश्य बन जाता है। परोक्ष रूप से भ्रष्ट राजनीति और राजनीतिज्ञ तथा अफसरशाही उसके लिए पूरा सरंजाम जुटा कर उस की लक्ष्यपूर्ति में उसके सहायक की भूमिका अदा करते हैं। आश्चर्य और आक्रोश तो तब उत्पन्न होता है, जब सरकारी गल्ले की दुकान पर स्टाक न होने का बोर्ड लटका हो परन्तु वही सरकारी गल्ला चोर बाजारी में मनमाने दामों पर बेचा और खरीदा जाता है। यह सरकार की कमजोरी, अक्षमता एवं सरकारी अंकुश के अभाव का दुष्परिणाम है -

लूटपाट की होड़ मच गई नरभक्षी हैवानों में
लटक रहा है ताला गल्ले की सरकारी दूकानों में
बिजली की नीली लाइट में सजा चोर बाजार
गाँधी टोपी की किश्ती में कलियुग हुआ सवार
पीच रोड पर मचल रही है तीस हजारी कार।

जाँता चुप है, चूल्हा ठण्डा हाँडी तौला खाली है
फसलों की बर्बादी क्या थी, जनता की पा माली है।

(तीस हजारीकार, सन् 1953)

3.16 समसामयिक साहित्यकार - अज्ञेय, केदार, फूलबाबू राज कमल

साहित्य के संसार में गुटपरस्ती और खेमेबाजी बड़ी साधारण एवं आम सी बात है जिसके कारण पारस्परिक वैमनस्य तक उत्पन्न हो जाता है। कई बार सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण अलगाव की दीवारें इतनी मजबूत हो जाती हैं कि एक दूसरे की परछाइयों से भी बड़े बड़े साहित्य-मनीषी दूर रहने का प्रयत्न करते देखे जाते हैं। एक दूसरे से दूरियाँ बनाए रखने की इस प्रवृत्ति से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। इस मतभेद को एक दूसरे के सान्निध्य में पारस्परिक विचारविनिमय द्वारा दूर करके साहित्य और समाज के हित साधन की दिशा में सार्थक प्रयास किए जा सकते हैं। अपने अपने दृष्टिकोण को एक दूसरे के सामने रखकर साफगोई से दिल का गुबार और मैल दूर करने में निश्चय ही सफलता मिल सकती है। उदार दृष्टिकोण एवं विशाल हृदय के धनी नागार्जुन सिद्धान्त और दृष्टिकोण की दृष्टि से एकदम भिन्न विचारधारा और आस्था में जीने वाले अपने साहित्यिक बन्धुओं की विलगता को सहन नहीं कर पाते। वह प्रयोगवादी आन्दोलन के समर्थकों की विलगता को सहन नहीं कर पाते। प्रयोगवादी आन्दोलन के जन्मदाता स0ही0 वात्स्यामन अज्ञेय और नागार्जुन दोनों भिन्न भिन्न दिशाओं के यात्री हो सकते हैं किन्तु उन दोनों के बीच लम्बे मौन से वह विगलित हो उठते हैं। ऐसी दशा में वह उनसे मिलने के लिए उतने ही आतुर है जितना कोई अपने सहोदर भ्राता से लम्बे बिछोह के बाद हो सकता है। स्नेह विगलित ऐसे क्षणों में कठोर एवं खुरदुरे व्यक्तित्व वाले नागार्जुन अपने अन्तर्मन को टटोलना आरम्भ करते हैं, तो क्षुद्र लोगों की तरह वह दूसरे पक्ष की गलतियाँ न ढूंढ कर और गिनाकर अपने स्वयं के दोषों और कटूक्तियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए अपने विरोधी ही सही पर एक श्रेष्ठ साहित्यिक बन्धु का साक्षात्कार एवं

सान्निध्य पाने के लिए अजीबोगरीब तड़प और छटपटाहट महसूस करते हैं जो उनकी कविता 'आओ प्रिय आओ' (सन् 1957) की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

आओ प्रिय आओ,
भले ही बोलचाल बन्द रहे
पूछापेखी नदारद
तो भी साथ-साथ बैठे घड़ी-आध घड़ी
खोंटकर दूब की नरम-नरम सींक
खोदता रहूंगा दांत
सोचता रहूंगा तुम्हारे ही बारे में
और तुम भी निकाल लेना सिगरेट
जला लेना धीरे से
उठेगी तो सही आवाज माचिस पर तीली घिसते ही
उड़ते रहेंगे धुएँ के छल्ले
सोचते रहोगे शायद मेरे बारे में।

इस प्रकार की पवित्र मित्रता की जीती जागती मिसाल है अपने आप में नागार्जुन। ऐसा स्नेह सिक्त, साहित्य की दुनिया में अनुपमेय आमन्त्रण कोई निर्मल-निष्कलुष व्यक्तित्व का धनी है दे सकता है, जो समकालीन ही नहीं अपने बाद की पीढ़ी के कवियों और जन साधारण के लिए, सदा-एर्वदा के लिए लिखी गई एक तहरीर है ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत काम आए।

उधर ऐसे भी मित्र हैं, जो समय और परिस्थितियों की धाराओं के प्रवाह के कारण जीवन धारा के दो कगारों पर खड़े बचपन के लंगोटिया यार होने के बावजूद भी मिलन-लालसा रहित हैं क्योंकि राजनीति के ज्वार से उछाल पाकर एक एम0एल0ए0 और मंत्री है दूसरे की

दीनहीन स्थिति एक गरीब मास्टर की। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्राइमरी स्कूलों में जहाँ देश का भावी कर्णधार ढाला जाता है, उन स्कूलों की इमारतों की दुर्दशा तो देखते ही बनती है। न जाने कब स्कूल की यह जर्जर इमारत भरभराकर ढह जाए और उन बेकसूर-अबोध शिशुओं की दर्दनाक मौत का एक बहाना बन जाए जिस पर राज्य सरकार और राष्ट्रीय नेता घड़ियाली आँसू बहाते हुए समवेदना का स्वर अलापते हुए, संतप्त परिवारों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करके आने वाले चुनाव में अपने वोट मजबूत करने का अवसर पा सकें। मास्टर यह सोचकर कि उसके बचपन का दोस्त ही अब तो शिक्षा मंत्री है, अत्यन्त आश्वस्त होकर शिक्षार्थियों के हित का चिन्तन करते हुए मंत्री से मिलने जाता है परन्तु हाथ लगती है सफलता के स्थान पर निराशा अथवा खोखला आश्वासन। ऐसी घटनाएँ नागार्जुन को कहीं गहरे तक कचोटती हैं तो उनके सहज उद्‌गार उद्‌भूत होते हैं इन पंक्तियों में -

घुनखाए शहतीरों परकी, बारा खड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे।
चार कोस से दौड़े आए जब मन्त्री जी की सुनी अवाई
लड़कों ने बेले बरसाए, मास्टर ने माला पहनाई
संगीनों की घनी छाँव में हिली माल मूरत मुसकाई
तम्बू में घुस गए मिनिस्टर, मास्टर पर कुछ दया न आई ।।

3.17 नक्सली प्रतिहिंसा

सेठ-साहूकार, सामन्तशाही, अफसरशाही और स्वातंत्र्योत्तर भारत में पनपते शोषण के नए प्रतीक राजनेताओं का सतत विरोध नागार्जुन के काव्य की मुख्य पृष्ठ भूमि और ऊर्जा का स्रोत खेत-खतिहान में कठोर परिश्रम करते किसान और भूमिहीन ग्रामीण कृषि-मजदूर एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप उभरते शहरी नवधनाढ्यों और कारखानों के मजदूरों के बीच

संघर्ष और समन्वय से ग्रस्त-त्रस्त शहरी मजदूर बस्तियाँ हैं। उन्हें सामान्यजन के जीवन का निकट अध्ययन करने के अवसर नित्यप्रति मिलते हैं। कभी जीवन की कठिनतम परिस्थिति में तनाव और घुटन का जीवन जीते साधारण जन की क्षीण दशा उन्हें काव्य का मसाला देती है तो कभी विषम परिस्थितियों में भी श्रमिक महिलाओं की दूध सी उजली हँसी उन्हें भीतर गहरे तक गुगगुदा जाती है। ट्राम में मजदूरों से घिरे भद्रजन को यात्रा करते देखकर उन्हें घिन तो नहीं आती है? जी तो नहीं कुढ़ता है?' जैसा परिहास सूझता है। कहीं गंगा के किनारे नाविकों के किशोर बालकों को देखकर डुबकी लगाने से इकट्ठे हुए पैसों को खर्च करने की योजना बनाते बाल-मनोविज्ञान की तह में जाने की उत्सुकता है तो वोट डालने के लिए गई परन्तु उंगली पर दाग लगने के भय से बिना वोट डाले लौट ने वाली आधुनिका के प्रति खीझ और व्यंग्य में प्रतिक्रिया की सफलता साकार हुई। नार्गाजुन आंखें खोलकर देशाटन करने वाले यायावर हैं उनके सामने प्रेरणा के स्रोतों की कोई कमी नहीं है। अपने चारों ओर नित्यप्रति घटने वाली साधारण से साधारण बात उन्हें कवि कर्म के प्रति सचेष्ट और प्रेरित करती है। उनके रचना कर्म के लक्ष्य की स्पष्टता के कारण उन्होंने स्पष्टोक्ति पूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति से कभी मुंह नहीं चुराया। विचारों से अक्खड़ एंव स्वभाव से फक्कड़ नार्गाजुन ने कवि की भूमिका से अपनी हैसियत को सन्।965 में स्पष्ट कर दिया था यह कह कर-

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊं?
जनकवि हूं मैं साफ कहूंगा, क्यों हकलाऊं?

(हजार हजार बाहों वाली पृष्ठ 142)

'उनकी यथार्थवादी चेतना का ज्यों ज्यों विकास और निखार हुआ उन्होंने जनता की वस्तु स्थिति समझकर अपनी कला को नए दायित्वबोध से जोडा।'[1] समाज के कलंक रूपी शोषक वर्ग के प्रति सहज आक्रोश ओर प्रतिहिंसा उन्के काव्य को उत्कर्ष देने वाली सबल सचेतन प्रेरणा हैं जिससे उद्वेलित होकर वह शोषित वर्ग का पक्ष लेने को सदैव तत्पर दिखाई देते हैं -

प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का
जन जन में जो ऊर्जा भर दे मैं उद्गाता उस रवि का

(हजार हजार बहों वाली पृष्ठ ।।)

।- नागार्जुन की कविता : अजय तिवारी पृष्ठ 43 से उद्घृत

किन्तु नार्गाजुन की यह प्रतिहिंसा क्रान्तिकारी चेतना का सकारात्मक पक्ष है।[1] शोषित वर्ग के प्रति सहज सहानुभूति एंव कर्तव्यबोध से प्रेरित होकर अपने रोष को उन्होंने काव्यात्मक तरीके से अभिव्यक्त करके जन-जन में उर्जा भरने में वह पूरी तरह सफल रहें हैं। वे जनता के कर्म, संर्घष, उत्साह और अविरल- अजस्र ऊर्जा के प्रति दृढ़तापूर्वक आश्वस्त रहकर जन सामान्य को निरन्तर उत्कर्षोन्मुखी, दिशा-निर्देश के प्रति समर्पित आशावादी चेतना के धनी, यर्थार्थवादी प्रगतिशील साहित्य के शलाका पुरूष हैं।

1- नागार्जुन की कविता: अजय तिवारी पृष्ठ 43 से उद्घृत

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन की कविता में सामाजिक संदर्भ

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य के मन, मस्तिष्क, आचारण और संस्कारों में उसके सामाजिक परिवेश का प्रभाव हमेशा परिलक्षित होता है। जिस प्रकार समाज की मांगों और लक्ष्य के अनुरूप साहित्य में परिवर्तन आते हैं तथा परिवर्तन के लिए तत्पर साहित्य ही लोकप्रिय बन पाता है, उसी प्रकार साहित्य एक ऐसा सक्षम माध्यम है जिसके द्वारा समाज में अघटित भी घटित होता है। साहित्य द्वारा वांछनीय परिवर्तन-मोड़-लचीलापन आदि उत्पन्न करके समाज को प्रगति के सोपानों पर अग्रसर किया जा सकता है। जिस काम को जोर-जबरदस्ती कराना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य लगता है, उसी काम को मनुष्य का हृदय परिवर्तन करके बड़ी आसानी एवं शीघ्रता पूर्वक कराया जा सकता है। कविता मनुष्य से स्वभावतः रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण मानव-मन को आप्लावित और आन्दोलित कर उसमें परिवर्तन लाने की अद्‌भुत सामर्थ्य से सम्पन्न साहित्य विधा है।

4.। समकालीन समस्याओं का यथार्थ निरूपण

प्रगतिशील कविता के उद्‌भव का मूल जन समूह की आर्थिक , राजनीतिक विषमताओं से उद्‌भूत सामाजिक उपेक्षा, दुराचार भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, अन्याय आदि विविध आयामों से जुड़ा है। सामाजिक होने के कारण आरंभ से ही मनुष्य की समस्याएँ सदा, सर्वदा, सर्वत्र समाज के दायरे में ही उत्पन्न होती हैं, तो उनका समाधान भी समाज के भीतर ही कहीं ढूंढा जा सकता है। कहना न होगा कि जनवादी काव्य की प्रमुख प्रवृति सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति ही है। प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक यथार्थ दृष्टि मूलमन्त्र के रूप में अभिव्यक्त हुई है। विलासी-सुविधा भोगी समाज के आधार स्तम्भ कृषक और मजदूर हैं। उन्हीं कृषक और मजदूरों को प्रगतिवादी काव्य में प्रमुख स्थान भी दिया गया है।[1] इसीलिए ग्राम्य प्रकृति एवं

।- हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ: डा0 जय किशन प्रसाद खंडेलवाल पृष्ठ 559

वहाँ पलते मटमैले बच्चों का चित्रण भी प्रगतिशील काव्य की प्रिय विषय-वस्तु है। नागार्जुन ठहरे मस्तिष्क से जनवादी और स्वभाव से घुमक्कड़। उन्होंने भारत के कोने कोने में घूमते हुए, समाज के विविध रूपों को जितने निकट से देखा है, बहुत कम ही लोगों के लिए यह संभव होगा। सामाजिक जीवन की छोटी से छोटी घटनाएँ, उनकी सूक्ष्मदर्शी आँखों से ओझल नहीं हो सकीं और संवेदनशील तथा भाव-प्रवण होने के कारण उनकी कविता में यथार्थ पूरी शिद्दत से रूपायित हुआ। उनके इस कवि-कर्म अथवा समाज के प्रति निष्ठा तथा कर्तव्य बोध ने कविता को कल्पनालोक से उतार कर यथार्थ की कठोर चट्टान पर ला खड़ा किया जिससे काव्य और समाज में अनिवर्चनीय निकटता आ गई है। कविता को समाज के हर वर्ग में घुमाने से कविता संवेद्य और आस्वाद्य तो बनी ही है, उसने उपेक्षित आम आदमी को भी बरबस अपनी ओर खींच लिया है। यह वही आम आदमी है जो कुछ वर्षों पहले तक कविता से कटा हुआ तो नहीं था, पर वह खुद को कटा हुआ अनुभव करता था। उसकी दृष्टि में कविता उच्च वर्गीय लोगों का बुद्धि विलास तथा समय-यापन का साधन भर थी जिसे उपेक्षापूर्ण कौतूहल से देखते हुए साधारण जन के लिए अनुपयोगी तथा दुर्बोध समझकर वह दूर ही से प्रणाम करता था।

प्रगतिशील कविता में मानव और उसके सामाजिक सम्बन्धों पर इतनी गहराई से विचार किया गया है कि मानव जीवन में इसकी प्रांसगिकता अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गई है। इंसानियत के इस अहम् मुद्दे से भी नागार्जुन की कविता संदर्भ और विषयवस्तु का अटूट सम्बन्ध स्थापित करने में अत्यन्त सफल कही जा सकती है। नागार्जुन ने समाज के उस वर्ग को अपने साहित्य में केन्द्रीय स्थान और मुख्य भूमिका का गौरव प्रदान किया है, जो सामन्ती व्यवस्था में उपेक्षा और हेय व्यवहार का शिकार होने के कारण धीरे धीरे न केवल समाज से कटता जा रहा था, अपितु उचित मार्ग-दर्शन के अभाव में निराशा एवं कुण्ठाग्रस्त होने के सबब दिग्भ्रमित होकर अवांछनीय दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था। आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में वह असामाजिक तत्व की संज्ञा से भी अभिहित हो। उन्होंने इस वर्ग को दुलार-पुचकार कर प्रोत्साहन तथा मार्ग दर्शन द्वारा उसमें साहस, नैतिक बल, उत्कंठा, कर्मठता और निडरता का

संचार करके राष्ट्र तथा समाज की मुख्य धारा से तो जोडा। साथ ही उपेक्षित और कमजोर वर्ग की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार शोषक वर्ग का बड़ी निर्भीकता से निर्धारण करते हुए तथाकथित उस उच्च वर्ग को, उसकी गलत नीतियों का एहसास कराने की भी पुरजोर कोशिश की है। नागार्जुन की पैनी और सूक्ष्म पर्यालोचनपरक दृष्टि से समाज की रूढियाँ कुरीतियाँ अन्ध विश्वास, खोखली आस्था, पोंगापन्थी आडम्बर आदि कुछ भी अनदेखा नहीं रह पाया है। वह सच्चे अर्थों में एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने सुने हुए अथवा पत्र-पत्रिकाओं में पढ़े हुए के आधार पर नही अपितु स्वयं के अनुभवजन्य सत्य का आधार लेकर सामान्य जन की पीड़ा को अपनी कविता द्वारा स्वर प्रदान करने का अभूतपूर्व सफल प्रयास किया है। सामान्यजन को केन्द्र में रखकर किए गए कवि-कर्म के कारण न केवल उनकी कविता बल्कि स्वयं नागार्जुन समाज के अधिसंख्य वर्ग के केन्द्र-पुरूष बन गए हैं।

" किसी भी युग और किसी भी साहित्यकार की रचना अपने समय के सामाजिक यथार्थ से असम्पृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकती।"[1] साहित्यकार सदैव जाने-अनजाने , प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपने समाज से जुड़ा अवश्य रहता है। नागार्जुन की कविता हर स्तर पर किसी न किसी सामाजिक संदर्भ से बराबर अपनी भागीदारी बनाए रखती है, फिर चाहे वह ग्राम्य जीवन के विविध पक्षों को रूपायित करती हो अथवा उसमें नागरिक जीवन या पारिवारिक जीवन की समस्यांओं एवं संघर्षो का प्रतिफलन हुआ हो।

4.2 ग्रामीण जीवन और किसान

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकाश जनता गॉवों में रहती है। गरीबी, सामन्तों-साहूकारों के शोषण तथा गरीबी से उत्पन्न विविध कठिनाइयों से जूझते हुए भारतीय किसान और खेतिहर मजदूर अपने चेहरे की मुस्कान को अक्षुण्ण बनाए रखता है। ग्रामीण सामाजिक जीवन, उसके रीति-रिवाज से लेकर खेत-खलिहान तक का सूक्ष्म चित्रांकन नागार्जुन के काव्य की विशेषता है। खेतों में वन्य पशु-पक्षियों को डराने के उद्देश्य से खड़े किए गए घास के पुतले के माध्यम से कवि ने जिस सामाजिक व्यंग्य की फुलझड़ी छोड़ी है,

---

1- डा0 रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृष्ठ 159

उसकी एक झांकी दर्शनीय है -

फैलाकर टाँग
उठाकर बाहें
अकड़कर खड़ा है भुस भरा पुतला
कर रहा है जिनगरानी
ककड़ी-तरबूज की
खीरा-खरबूज की
सो रहा होगा अपाहिज मालिक घर में निश्चिन्त हो

× × × × ×

सरग था ऊपर नीचे था पाताल
अपच के मारे बुरा था हाल
दिल-दिमाग भुस का, खद्दर की थी खाल।

खेतों में लगभग अधपकी सुनहरी बालियों के साथ झूमती लहलहाती फसलों को देखकर प्रकृति प्रेमी कवि का मन भी झूमने लगता है। आर्थिक विषमताओं से पग-पग पर जूझने वाले भारतीय किसान के मन में तो इसी 'सोनिया समंदर' के ज्वार से आशा का संचार होता है, यही उसके अभावग्रस्त जीवन में प्रसन्नता की हिलोरें उत्पन्न करने वाला पारावार है -

सोनिया समंदर
सामने
लहराता है
जहाँ तक नजर जाती है
सोनिया समंदर

× × × × ×

बुला रही हैं
गेहूँ की तैयार फसलें
अपने अपने कृषकों को।

अपने प्रिय मित्र केदारनाथ अग्रवाल के गॉव जाने पर कवि ने बेतावा के प्राकृतिक सौंदर्य का दर्शन कर वहाँ की प्रकृति से ऊर्जा और स्फूर्ति ग्रहण की। पर अपने आस-पास बिखरे उस सौंदर्य का चित्रण करते हुए भी, कवि के मन को यह मानसिक संताप होता रहता है कि देश का असली राजा किसान खून पसीना एक करके भी आज तक गरीबी से मुक्ति नहीं पा सका है :

बदली के बाद खिल पड़ी धूप
बेतवा किनारे
सलोनी सर्दी का निखरा है रूप
बेतवा किनारे
रग रग में धडकन वाणी है चूप
बेतवा किनारे
सब कुछ भरा-भरा, रंक हैं भूप
बेतवा किनारे
बदली के बाद निकल पड़ी धूप
बेतवा किनारे।

(बेतवा किनारे सन् 1979)

बुन्देलखण्ड की कठोर भूमि पर कुदाल चलाते किसान की आर्थिक दुर्दशा से दुखी कवि को यह कटु सामाजिक सत्य बराबर उद्वेलित करता रहता है कि संविधान द्वारा प्रदत्त वाणी-विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, आर्थिक - विवशताओं के कारण, लोगों के भीतर ही कैद होकर रह गई है। गॉव के भूमिहीन किसानों के आर्थिक दोहन और शोषण के साथ-साथ उनकी बहू-बेटियों के शीलहरण और उनके विरोधकरने पर नक्सलवादी होने का झूठा आरोप लगा कर पुलिस की सॉठ गॉठ से अमीर किसानों द्वारा उन्हें जेल भिजवाना जैसे दृश्य गॉव की यथार्थ कथा है। इस रहस्य का भंडाफोड़ किया है उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'इनकी कब होगी दीवाली' में कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है -

सातों के सातों चमार थे
अति दरिद्र थे भूमिहीन थे

करते थे मेहनत मजदूरी
मालिक लोगों के अधीन थे
भूमिहरण बर्दाश्त कर गए
चुप्पी साधी मार-पीट पर
गुस्सा तब भड़का, बहुओं की
इज्जत जब लूटी घसीट कर।

लेकिन नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन की कुत्सा ओर विषादको ही नहीं उसकी उन्मुक्तता और मस्ती को भी अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। देखिए, गॉव में ऋतुराज वसन्त का आगमन किस प्रकार मनोरम दृश्य प्रस्तुत करता है -

अबके इस मौसम में
कोयल आज बोली है
पहली बार!
टूसों को उमगेकई दिन हो गए
टेसू को सुलगे कई दिन हो गए
अलसी को फूले कई दिन हो गए
बौरों को महके कई दिन हो गए

इसी प्रकार गॉव की सुहावनी सुबह की बेला कितनी स्फूर्तिदायक एवं उल्लासप्रद होती है, उसका वर्णन कवि ने अपनी शैली में इस प्रकार किया है -

सुबह सुबह
अधसूखी पतइयों का कौड़ा तापा
आम के कच्चे पत्तों का
जलता कडवा कसैला सौरभ पिया
सुबह सुबह

गंवई गॉव के निकट
घेरे में बैठने बतियाने का सुख लूटा
आँचलिक बोलियों का मिक्सचर
कानों की इन कटोरियों में भरकर लौटा
सुबह सुबह।

ग्रामीण जीवन के समस्त अभावों के बीच कृषक समाज की दयनीय दुर्दशा से उत्पन्न क्षोभ को तो नागार्जुन ने अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया ही है, साथ ही ग्रामीण समाज की दुर्धष जिजीविषा और अकथनीय सहनशीलता, सुख-दुख में एक दूसरे के साथ साझेदारी तथा मनोरम प्राकृतिक दृश्यों - मौसमी त्योहारों पर उफनते उल्लास का चित्रण भी उतने ही उत्साह से किया है। आधुनिकता की अंधी दौड़ का अनुसरण करते यह समाज कहीं अपनी मौलिकता और गॅवई संस्कृति को न गँवा बैठे, अन्यथा आसिन मासके राति इजोड़िया, फागुनक इजोड़िया टहाटही, जेठक विकट दुफरिया, श्याम घटा सित बीजुरि-रेह और जोड़ा मन्दिर की पृष्ठभूमि एवं वातावरण अतीत की कल्पना बनकर रह जाएँगे।

4 3 नारी की शोचनीय सामाजिक स्थिति

भारतीय संस्कृति , समाज तथा साहित्य में नारी का स्थान बड़ा ही सम्माननीय माना गया है। प्राचीन साहित्य में इसके अनेक उदाहरणों के होते हुए भी वास्तविक रूप से आज के भारतीय समाज में पुरूष की सहधर्मिणी होते हुए भी वह पति की अनुगामिनी और उसकी परछाईं मात्र बन कर रह गई है। उसकी दुर्दशा की ओर समाज सुधारकों एव देश के नीति निर्धारकों का ध्यान शायदहीकभी गया हो। पुरूष को बहुविवाह, सौंदर्य लोलुपता की ताक झांक, परकीया प्रेम आदि सब बातों के लिए खुली छूट दे रखी है पुरूष प्रधान समाज ने, किन्तु इसके विपरीत भारतीय नारी आज भी अशिक्षा अन्ध विश्वास तथा कुल मर्यादा के नाम पर जीवन के हर क्षेत्र में आज भी पिछड़ी हुई, दकियानूसी रूढ़ियों के बन्धन में जकड़ी हुई पिंजरबद्ध पक्षिणी की भाँति छटपटा रही है। नागार्जुन ने पुरूष की अर्द्धांगिनी और जननी की पीड़ा को मिथिलाँचल में

बहुत निकट से देखा है। उन्हें पौराणिक पात्रों में शबरी, अहल्या, सीता, सूपनखा और रेणुका की दुर्दशा , उन पर पुरूष समाज द्वारा ढाए गए जुल्मों की याद हैं, तो साथ ही बहुविवाह , सती प्रथा ओर दहेज की बलिवेदी पर चढ़ती आज के युग की नवयुवतियों की करूण कथा भी कहीं गहरे में मर्मान्तक वेदना पहुंचाती है। माता पिता और समाज द्वारा धर्म के नाम पर बलिदान की बकरी बननेवाली नवयुवती को भिक्षुणी के वेष में देखकर उनका मन उसके हृदयगत भावों से मानो तादात्म्य स्थापित कराता है। तब नागार्जुन मनोवैज्ञानिक अन्दाज में उसकी मनोव्यथा का शब्द चित्र बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते है -

महायान हीन यान सभी मैं जान गई
किन्तु नहीं जान सकी -
मानव का मानवी का सहजयान क्या है।

× × × × ×

किन्तु कौन पूछेगा मुझे कल परसों?
गलित होगा यौवन जब!
पलित होंगे केश जब!
किसी की दृष्टि क्या मुझें पर उठेगी?
भगवान अमिताभ सहचर मैं चाहती
चाहती अवलम्ब, चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बातलो कहती हूं आज मैं -
नारी के अन्तर की पीड़ा और वह भी एक भिक्षुणी के मुख से।

साम्प्रदायिक तनाव और विवाद के तूल की आड़ लेकर अच्छे-अच्छे धैर्यवान और साहसी भी इतने स्पष्ट और बेबाक शब्दों में कहने से कन्नी ही काटते नजर आते हैं। समाज के किस व्यक्ति से भिक्षुणी जीवन ढोने को विवश इन युवतियों का दारूण दुख छिपा

है। कानूनी दृष्टिकोण से बहुविवाह प्रथा हिन्दू समाजमेंअपराध गिने जाने के बावजूद अनेक स्थानों पर विशेषतः बिहार के मैथिली ब्राह्मण समाज में एक प्रचलित पुरातन परम्परा के रूप में विद्यमान है। निर्धनता के कारण अनेक युवितयाँ अपने पिता की आयु के पुरूषों से न केवल विवाह करने के लिए बाध्य होती हैं, बल्कि आजीवन पर्दे के भीतर कैद ड्योढी लांघने को भी तरस कर रह जाती है। वे ऐसे बूढ़े पुरूषों की पत्नी बना दी जाती हैं जिसकी दो-दो चार-चार पत्नियाँ पहले से मौजूद रहती हैं। इन युवतियों के अरमान भीतर ही भीतर घुटकर दम तोड़ देते हैं। उन्होंने नारी मुक्ति आन्दोलन का तो शायद कभी नाम भी नहीं सुना। वे इसी को अपना प्रारब्ध मानकर असहाय एवं अबला की दयनीय जिन्दगी जीने को मजबूर हैं। समाज-सुधारकों की दृष्टि भी इन असहाय नारियों के प्रति या तो उपेक्षा पूर्ण है अथवा वे इस ओर से बिल्कुल बेखबर हैं। नागार्जुन ने बहु विवाह प्रथा से त्रस्त नारी समाज की इस दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक एवं करूण दृश्य अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। ऐसी स्त्रियों में साहस का संचार करने की भरपूर चेष्टा करते हुए उन्होंने इस घिनौनी प्रथा द्वारा चलने वाले शोषण का पूर्ण उन्मूलन करनेके लिए उनका आवाहन भी किया है। इस संदर्भ मेंउनकी प्रसिद्ध कविता 'तालाब की मछलियाँ' की कुछ पंक्तियां उल्लेखनीय है -

दो टूटे दाँतों वाले इन भद्र अधेड़ महानुभाव
(मथुरा पाठक) की
मधुर तृतीया भार्या
प्राणों से भी प्यारी
वह कुलीन मैथिल की कन्या
फिर फिर सुनने लगी वही आवाज .....
हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं

वनिता धर पल्लव में किंवा
जंबीरी रस सिक्त मत्स्य खण्डों में
कहीं नहीं अन्यत्र
इन्हीं में
मिलती आई है अमृत द्रव की अशेष परितृप्ति

कुल मर्यादा की बलि वेदी पर अपनी समस्त अभिलाषाओं और यौवनोचित आकांक्षाओं की बलि देकर समाज के इन नर-पिशाचों की हवस को शान्त करने की चेष्टा में पीढ़ीदर पीढ़ी घुल घुल कर और घुट घुट कर जीवन -मरण के बीच त्रिशंकु बनी भारतीय नारी आखिर कब तक यह सब बर्दाश्त करती रहेगी? पुरूष प्रधान समाज द्वारा उसके ऊपर थोपी गई वर्जनाएँ जिन्हें उसने पायल समझ कर स्वीकार किया था न जाने कब उसके अज्ञान, भोलेपन और सरलता के कारण बेड़ियाँ बनकर उसकी प्रगति की राह में सशक्त बाधा बन गई। सम्पूर्ण विश्व में जब नारी-मुक्ति की चर्चा और प्रयास जोरों से चल रहे हैं, भारतीय नारी को भी अस्वाभाविक एवं अमानवीय बन्धनों से मुक्त होने के लिए प्रेरणा देना प्रत्येक प्रबुद्ध भारतीय नागरिक का कर्तव्य है। आवश्यकता है, उसमें आशा, आकांक्षा एवं विश्वास उत्पन्न करने की। एक बार यदि उसमें मुक्ति की आकांक्षा जाग्रत हो जाए और सफलता के प्रति वह आश्वस्त महसूस करने लगे तो कोई वजह नहीं कि वह समाज में अपने खोए सम्मान को पुनः प्राप्त करने के लिए प्राण-पण सेजुट जाए। नागार्जुन ने त्रस्त भारतीय नारी को मछली के प्रतीक रूप में प्रस्तुत कर उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा की पुर्नस्थापना के प्रति आशान्वित किया है , इसे इन पंक्तियों में सुना जा सकता है -

टूट रहे हैं अन्तःपुर के ढाँचे
आज या कि कल
तुम भी तो निकलोगी बाहर
हवेलियों से डेवढ़ियों से
फिर जनपद के खण्ड नरक ये मिट जाएँगे

शब्दकोश को छोड़ कहीं भी
नहीं 'असूर्यम्पश्या' का अस्तित्व रहेगा
'औरतदारी' रह न जाएगी

भारतीय नारी को स्वयं अपने पति का विश्वास अर्जित करने में भी कितनी मर्मान्तिक पीड़ा के दौर से गुजरना पड़ता है और जिन्दगी की इस जद्दोजहद मेंवह किस प्रकार उपहास की पात्र बनकर आजीवन तड़पती है, इस तथ्य को कवि ने अपनी कविता अहल्या में शब्दांकित किया है। अहल्या का अनिन्द्यसौंदर्य ही उसके जीवन में कड़ुवाहट पैदा करने वाला तत्व सिद्ध होता है -

नाहक ही
उतना अधिक रूप दिया
विधाता ने
गौतम की शकल बना के
सचमुच क्या इन्द्र ही आया था?
समान आकृति वाले
दो पुरूषों की छाया में
पथरा गई बेचारी!

पुरूष , वह भी साधारण नहीं, अपितु इहलोक की इच्छा के प्रतीकादर्श, इन्द्र की वासना का शिकार बनी। और बदले में उसे क्या मिला? अबोध , निर्दोष तथा श्रेष्ठतमपुरूष की छलना की शिकार जिस नारी को संकट की उन नाजुक घडियों में पति से सॉत्वना और सहानुभूति मिलनी चाहिए थी, उसे मिली प्रताड़ना; जिसने जीती जागती सौंदर्य की प्रतिमा को संज्ञाशून्य पत्थर की प्रतिमामें परिवर्तित कर दिया। जिस समाज में आकर्षण और फिसलन पौराणिक ऋषियों के लिए जीवन का एक गरिमामय अध्याय माना जाता है, उसी समाज में नारी को निरपराध होते हुए भी 'अबला सब अघ खानि।' की संज्ञा से अभिहित कर उस पर अत्याचार

भी कम नहीं किया गया। सामाजिक न्याय का यह कैसा परिहास है। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का उच्चारण करते हुए गर्व-गौरव का अनुभव करने वाला समाज अहल्या के संदर्भ में उसके सौंदर्य को ही उसका अभिशाप सिद्ध करता है, कैसी क्रूर नियति है नारी की।

4.4 देश की भावी पीढी - तरूण भारत

नागार्जुन वर्तमान के गर्भ से जन्म लेने वाले भावी भारत की झाँकी को देखने वाले दूरदृष्टि संपन्न एवं सामर्थ्यवान साहित्यकार हैं। जिस देश में बच्चों के खान-पान, शिक्षा-दीक्षा एवं पालन-पोषण के प्रति समाज और समाजवादी न्याय की दुहाई देने वाली सरकार दोनों का ही रूख उपेक्षापूर्ण हो, उसे देश के भावी समाज और आर्थिक ढाँचे की कल्पना रोंगटे खड़ी करने वाली होगी। हँसते मुस्कराते खिले चेहरों वाला बचपन किसी भी थके हारे प्रौढ़ के मन को गुदागदा कर नई ऊर्जा से अनुप्राणित करने में सक्षम है -

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि धूसर तुम्हारे ये गात .....
छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात
परसपाकर तुम्हारा ही प्राण
पिघल कर जल बन गया होगा कठिन पाषण

(यह दंतुरित मुस्कान 1943)

अभावों से घिरे, अखाद्य खाकर पेट भरने के लिए बाध्य, रोगाक्रान्त एंव ममता के लिए तरसते ग्रामीण बालकों को देखकर कवि नागार्जुन भाव विह्वल एवं विचलित हो उठते हैं। भूमिहीन मजदूरों के बच्चों को अभाव की यह मार सबसे अधिक झेलनी पड़ती है। माँ तो पति का अनुसरण कर किसी जमींदार के खेत पर मजदूरी करने चली जाती है, रह जाता है झोंपड़ी में अकेला बच्चा, भगवान भरोसे। रोज कुआँ खोदकर पानी पीने की स्थिति वाले इन मजदूरों के घर दोनों समय के भोजन का दिन क्या किसी उत्सव से कम महत्व रखता है? प्रायः शाम को मजदूरी से मिले अनाज को ही पीस-पोकर रात को कहीं खाने का जुगाड़ हो पाता है। पहाड़ सा लम्बादिन भूखे अधखाए, अनखाए गुजारना, मजदूर के नन्हें बालक को बचपन की राजसी उम्र में समस्या का स्वयं समाधान खोजने और जीवन की लड़ाई अकेले ही लड़ने के लिए

विवश करता है। देखिए, भूख से व्याकुल काम पर जाने में असमर्थ, रोगिणी असहाय अवस्था में, झोंपड़ी में पड़ी माँ की मजबूर आँखों के सामने उसका नन्हा लाल क्या करता है -

आँत की मरोड़ छुड़ा न पाई बरगद की फलियाँ
खड़ा है नई पौध , पीपल के नीचे खाद की खोज में
देख रहा ऊपर
कि फलियाँ गिरेंगी
पेट भरेगा
और फिर जाकर
सो रहेगा चुपचाप झोंपड़े के अन्दर
भूखी माँ के पेट से सटकर।

(नई पौध 1948)

नन्हें शिशुओं को पूंजीवाद के विरूद्ध नारे लगाते देखकर बाबा का मन आह्लादित हो उठता है और उनके अन्तस् में आशा की नई किरण चमक उठती है -

सुने इन्हीं कानों से मैने तुतलाहट में गीले बोल
तीन साल वाले बच्चों के प्यारे बोल रसीले बोल

× × × × ×

नई लगी मुझको श्रमिकों की बस्ती वही पुरानी
दमक रहा था शिशु मुखड़ों पर तरूणाई का पानी
भूल गया क्यों जाने मुझको अपना दुसह बुढ़ापा
उनकी तुतलाहट से यह बासी स्वर अपना नापा।

× × × × ×

उन बच्चों की ग्रीवाओं में रग रग फूल रही थी
बाल दृगों में जाने कैसी आशा झूल रही थी
छोटी छोटी झंड़ी थामे मुन्ने प्यारे प्यारे

अग्रज पीढ़ी की अनुकृति में लगा रहे थे नारे!

'मेला नाम विएनाम

तेला नाम विएनाम..... '

मैंने सोचा : निर्भय होकर शोषण की बुनियादें ये खोदेंगे

मैंने सोचा : बेबस बूढ़े विप्लवियों की कालिखये धो देंगे

फिरकाबन्दी जाति-वाद का झाड़ेंगे यह भूत

मैंने सोचा : निविड़ विषमता को मिटाएँगे

नवयुग के शिशु दूत!

(रहे गूंजते बड़ी देर तक, 1971)

नागार्जुन नई पीढ़ी को खुश देखकर सचमुच पुलकित हो उठतें हैं।वहशिशु, किशोर और युवा सभी के साथ हिलमिल कर उनके अधरों पर खेलती मुस्कान और उनके अदम्य उत्साह को देखतें हैं तथा उनके प्रशंसक हैं। भावी पीढ़ी को थकित, म्लान और हताश देखना उन्हें गवारा नहीं। चाहे इसके लिए नास्तिक नागार्जुन को, नदी को मइया मानकर प्रार्थना ही क्यों न करनी पड़े:

पुल पर से गुजर चुकी है ट्रेन

नीचे प्रवहमान उथली छिछली धार में

फुर्ती से खोज रहें हैं पैसे

मलाहों के नंग धडंग छोकरे

× × × × ×

प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह

बहुधा अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह

देखना ओ गंगा मइया!

निराश न करना इन नंग- धडंग चतुर्भुजों को।

देश में चारों तरफ जैसा आपाधापी का वातावरण फैला हुआ है, उसके चलते देश के भावी कर्णधारों की किसे चिन्ता है। निराशाजनक इस वातावरण में भी नागार्जुन नई पीढ़ी के उज्जवल भविष्य के प्रति पूरी तरह आशावान है। वे सपने में नई पीढ़ी की प्रगति के विविध आयाम देखने में सक्षम हैं, जिससे शायद सरकारी तंत्र की मोहतन्द्रा यदि कभी भंग हो तो किशोर पीढ़ी के विकास की कम से कम सही योजना तो बना सके। देखिए बाबा के सपने की एक झाँकी -

चन्दू , मैंने सपना देखा, फैल गया है सुयश तुम्हारा
चन्दू, मैनें सपना देखा, तुम्हें जानता भारत सारा
चन्दू, मैने सपना देखा तुम बहुत बडे डाक्टर हो
चन्दू, मैंने सपना देखा, अपनी ड्यूटी में तत्पर हो

भारतीय संविधान के रचयिताओं की भाँति कवि को पूरा विश्वास है कि कभी न कभी वह दिन इस भारत में अवश्य ही आएगा जब अर्थाभाव किसी किशोर - की प्रतिभा के विकास के मार्ग में रोड़ा नहीं बन पाएगा। इस बात को उन्होंने भली भाँति अपनी विभिन्न कविताओं में तो स्पष्ट किया ही है उनके उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में रतिनाथ जैसे मेधावी और परिश्रमी छात्र की पढाई कराने के लिए कोई न कोई सहायक आ ही जाता है। 'प्रतिबद्ध हूँ' (सन् 1975) रचना में तो वह स्पष्ट घोषणा ही कर देते हैं कि वे देश के इन नन्हें नागरिकों से कितने जुडे हैं। उन्हीं के शब्दों में -

तीसरी-चौथी पीढ़ियों के दंतुरित शिशु-सुलभ हास में .....
लाख-लाख मुखड़ों के तरूण हुलास में .....
आबद्ध हूँ, जी हाँ शतशः आबद्ध हूँ!

यदि इसी प्रकार समाज के बुद्धि जीवी , साहित्यकार तथा समाज सेवी देश की किशोर पीढ़ी के सर्वांगीण विकास की ओर सरकार और समाज का ध्यान समय समय पर आकर्षित करते रहें, तो निश्चय ही आने वाला कल देश के लिए सुखानुभूति से परिपूर्ण हो

सकता है। नागार्जुन की कविता ठोस अनुभवों पर आधारित है, निरी कल्पना नहीं।

4.5 मजदूर वर्ग-शोषण

अपने रक्त और मज्जा को श्रम की भट्टी में झोंककर देश के औद्योगिक विकास को निरन्तर गतिमान बनाए रखने वाले श्रमिक वर्ग का विकासशील देश के सामाजिक उत्थान में विशेष महत्व होते हुए भी उसके व्यक्तिगत एवं पारिवारिक हितों के प्रति प्रायः समाज उदासीनता का ही परिचयदेता है। स्वतंत्रता के पश्चात आशा थी कि श्रमिकों को न्याय मिलेगा, उनकी आर्थिक दशा में सुधार होगा और उनका सामाजिक दर्जा ऊंचा उठेगा, किन्तु पूंजीपतियों की मजबूत पकड़ ने इस दिशा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होने दिया। इण्टक, ऐटक, सीटू और भारतीय मजदूर संघ आदि कितने ही मजदूर संगठनों के होते हुए भी मजदूर आज भी दिग्भ्रान्त है। उसके चन्दे की रकम पर हवाई यात्रा करते पूंजीपतियों के बिचौलिया बने मजदूर नेताओं की तो चाँदी ही चाँदी है। सबसे अधिक शोचनीय दशा तो असंगठित एवं दैनिक मजदूरी पर काम करने वाले मजदूर वर्ग की है। बड़े बड़े किसानों के फार्म हाउसों पर जुल्म सहते, ईंट-भट्टों पर अस्थायी रूप से भर्ती, कोयला झोंकते हुए मजदूर की दुर्दशा (विशेषतः उत्तर भारतीय क्षेत्रों में) देखकर मन आक्रोश से विद्रोह कर उठता है। कलकत्ता, बम्बई , दिल्ली जैसे महानगरों के रेलवे स्टेशनों पर बोझा ढोते, फुटपाथ पर लगे खोमचे नुमा ढाबे का खाना खाते, नंगे पाँव मजदूरी की टोह में दौड़ते इन मजदूरों की दशा आजादी के 45 वर्ष बीत जाने पर भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती नवयौवना 'जो मार खा रोई नहीं', को देखकर महाप्राण निराला का हृदय रो उठा था। आज भी गोवा में निर्माण कार्य के ठेकेदारों की दया-दृष्टि पर पलते कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिल नाडु आदि से आए खुले आसमान तले जीवन बिताने को मजबूर इन श्रमिकों को आलीशान भवन बनाने के लिए चट्टानों को तोड़ने , नींव खोदते तथा दिल्ली जैसे महानगरों में बहुमंजिली इमारतों पर खतरनाक स्थितियों में ईंट-गारे का काम करते देखा जा सकता है। इन मजदूरों के लिए न तो प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ ही उपलब्ध है, न ही कोई जीवन-बीमा या

भविष्यनिधि जैसी योजना अभी तक साकार हो पाई है। सरकारी कागजों पर फाइलों में जरूर ऐसी अनेक कल्याणकारी परन्तु अविश्वसनीय दस्तावेजें होंगी। मजदूरी पाने की आशा में बैठे यही मजदूर विभिन्न नगरों के चौराहों पर ऐसे बैठे मिलते हैं, जैसे किसी युग में गुलाम बिकने के लिए बाजारों के चौराहों पर मिला करते थे। पसीने से लथपथ फटे-चिथड़ेनुमा वस्त्रों से शरीर ढके, फटी बिवाइयोंसेग्रस्त पाँवों वाले ये मजदूर जब सार्वजनिक परिवहन से यात्रा करते हैं, तो किराया देने के बावजूद कण्डक्टर से लेकर यात्री तक सभी उन्हें हिकारत की नजर से देखते हैं। कोई यात्री किसी मजदूर को अपने पास बैठाने के लिए तत्पर नहीं होता। देखिए इस स्थिति की एक झलक -

कुली मजदूर हैं
बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला
धूल-धुँआ-भाप से पड़ता है साबका
थके माँदे जहाँ तहाँ हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन
आकर ट्राम के अन्दर पिछले डब्बे में
बैठ गए हैं इधर-उधर तुम से सटकर
आपस की उन बात कही
सच-सच बतलाओं,
नागावार तो नहीं लगती है?
जी तो नहीं कुढ़ता है?
घिन तो नहीं आती है?

(घिन तो नहीं आती है? सन् 1960)

उपर्युक्त कविता में काम से लौट कर घर आते थके माँदें मजदूरों से बचते सफेदपोश सहयात्रियों के मनोभावों को भी बाबा की पारदर्शी निगाहों ने पकड़ ही तो लिया। मजदूरों को उनके शोषण से मुक्ति दिला सकती है, उनकी आपसी एकता और उनका अटूट

संगठन। किसान-मजदूर, छात्र और नवोदित शिक्षकों का संगठित स्वरूप ही सच्ची क्रांति ला सकने में समर्थ है। इसलिए वे इन सबका आवाहन करते हुए कहते हैं -

मैं तुम्हीं को अपनी यह शेष आस्था अर्पित करूंगा
मैं तुम्हारे लिए ही जिऊंगा, मरूंगा
मैं तुम्हारे ही इर्द गिर्द रहना चाहूंगा
मैं तुम्हारे ही प्रति अपनी वफादारी निबाहूंगा
आओ, खेत-मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान-श्रमिक और फैक्ट्री-वर्कर नौजवान
आओ, कैम्पस के छात्र और फैकल्टियों के नवीन प्रवीण प्राध्यापक
हाँ, हाँ, तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे हैं
आगामी युगों के लिबरेटर

(मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूंगा, 1973)

सभ्यता के इस युग में और वह भी गांधी के देश में आज भी आदमी ,आदमी को ढोता है। मुर्दा लाश या बोरे भर कर नहीं जीवित मनुष्य को। मनुष्य कहा जाने वाला यह प्राणी अपने भूखे पेट को भरने की खातिर पशुवत जीवन जीने के लिए बाध्य है। पैदल रिक्शा चलाने या खींचने वाले ये मजदूर जेठ की तपती दुपहरी में पहाड़ी नगरों में ही नहीं अपितु कलकत्ता जैसे महानगरों में कुछ जगह दृष्टिगोचर हो सकते हैं। तीर्थ यात्रा का धर्म कमानेवाले तोंदियल सेठों को वैष्णों देवी, चिन्तपूर्णी (हिमाचल प्रदेश) तथा कश्मीर, नैनीताल, कुल्लू-मनाली में पीठ पर कुर्सी या मोढ़ा बाँधकर प्राकृतिक सौंदर्य के दर्शन कराने के लिए तत्पर इन मजदूरों के झुण्ड के झुण्ड देखे जा सकते हैं। खच्चर और टट्टू की तरह बोझ ढोते इन मजदूरों के शरीर पर कंपकंपाती ठंड और तपती दुपहरी में भी नाम मात्र को फटे चिथड़े ही रहते हैं। दूसरी ओर कुछ आधुनिक शहरों में मिलेंगे साइकल रिक्शा खींचते मजदूर, जिनके पाँवों में, पैडल विहीन रिक्शा खींचने से, बिवाइयाँ और गठ्ठे पड़ गए है -

दे रहे थे गति
रबड़-विहीन ठूंठ पैडलों को
चला रहे थे
एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र
कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
नाप रहे थे धरती का अनहद फासला
घण्टों के हिसाब से ढोये जा रहे थे
देर तक टकराए
उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पऊंगा फटी बिवाइयाँ

(खुरदरे पैर सन् 1957)

संभव है , कवि के इस चित्र से सरकार नहीं तो शायद समाज के अभिजात्य वर्ग की मानसिकता में कुछ परिवर्तन आए और समाज का ध्यान शोषण के शिकार इन असहाय असंगठित मजदूरों की दशा में सुधार पर केन्द्रित हो, यही तो कवि का लक्ष्य है।

4.6 **दलित वर्ग**

सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण और सामाजिक अत्याचार सहन करने के लिए बाध्य दलित वर्ग के आर्थिक सामाजिक उन्नयन के लिए नागार्जुन ने अपने काव्य में पुरजोर आवाज उठाई है। शहर में सफाई कर्मचारियों द्वारा अपनी माँगें पूरी कराने के लिए संगठित होकर हड़ताल करने का वह पूरी तरह समर्थन करते हैं। हड़ताल के सफल होने पर भंगियों का उत्साहपूर्वक जुलूस निकालना उन्हें पुलकित कर देता है -

और यह जो उमड़ी आती है
भंगियों भंगिनों की जमात जंगजू
बात बात पै करती जो तकरार

कदम कदम पर जो करती है प्रहार
प्राकृत अपभ्रंश के वजनदार गोलों का

× × × × ×

इन्किलाब जिन्दाबाद
मेहतर यूनियन जिन्दाबाद
ध्यान लगा के सुना तो समझ में आई बात
निकली थी यह विजयी मेहतरों की बारात
मस्त थे वे मांग मनवा लेने की खुशी में
चटपटे कमरे से मैं भी निकला
जीवों के सम्भावित महामोक्ष की खुशी में
मेरे भी मुंह से निकल ही तो पड़ा
-जय हो बम्भोला।

(हो बम्भोला, सन् 1956)

दलित वर्ग विशेषतः हरिजनों ने जो सामाजिक यंत्रणा झेली है, वह अकथनीय है। आजादी के इतने वर्षो के बाद जब संविधान के अनुसार उन्हें आरक्षण और निःशुल्क शिक्षा जैसी कुछ सुविधाएँ देने के लिए सरकार ने कुछ सक्रियता दिखाई भी तो समाज का उच्च वर्ग उससे क्षुब्ध होकर हरिजनों के नरसंहार जैसे घिनौने कृकृत्य पर उतर आया। इसी का सजीव चित्रण नागार्जुन ने अपनी प्रसिद्ध 'हरिजन गाथा' रचना में कुछ इस प्रकार किया है -

हाल ही में घटित हुआ वो विराट दुष्काण्ड
झोंक दिए गए थे उसमें तेरह निरपराध हरिजन
सुसज्जित चिता में .....
यह पैशाचिक नरमेघ

पैदा कर गया है दहशत जन जन के मन में
इन बूढ़ों की तो नींद ही उड़ गई है तबसे!
बाकी नहीं बचे हैं पलकों के निशान
दिखते हैं दृगों की कोर ही कोर
देती है जब तक पहरा पपोटों पर
सील मुहर सूखी की चड़ की

होनहार हरिजन बच्चे के जन्म पर उसका भविष्य बाँचने आए 'गरीबदास महाराज' उस बच्चे की हस्त रेखाएँ देखकर विस्मित और फिर आतंकित हो उठते हैं। मन ही मन वे इस बालक के लालन-पालन के लिए उसको भगाने की योजना तैयार कर लेते है और कहते है कि उसे कहीं दूर खदानों पर काम करने वाले मजदूरों की बस्ती में भेज कर ही सुरक्षित रखा जा सकता है। जब तक बच्चे की माँ को कुछ काम धन्धा न मिलेगा तब तक वह उसे पालन-पोषण में होने वाले खर्च की कोई न कोई व्यवस्था करते रहेंगे। वे जानते हैं , आखिर यही बालक एक दिन बड़ा होकर सामाजिक क्रांति का अग्रदूत जो बनेगा। कमजोर पिछड़े वर्ग के लोगों को संगठित होते देख कर नागार्जुन मानों हर्ष विभोर हो उठते हैं और स्वयं को ही 'गरीबदास' की भूमिका में देखने लगते है -

कहाँ रखोगे छोकरे को?
वहीं न जहाँ अपनी बिरादरी के
कुली मजूर होंगे सौ पचास?
चार छः महीने बाद ही
कोई काम पकड़ लेगी सुखिया भी.....
और फिर अपने आपसे
धीमी आवाज में कहने लगा बुद्धू.....
'छोकरे की बदनसीबी तो देखों

माँ के पेट में था तभी इसका बाप भी
झोंक दिया गया उसी आग में.....
(हरिजन गाथा सन् 1977)

आर्थिक तंगी, सामाजिक अपमान तथा उपेक्षा तो किसी प्रकार यह वर्ग बर्दाशत करता रहा है परन्तु जब उनकी बहू-बेटियों के साथ उच्चवर्ग के लोगों ने अनाचार एवं कुकृत्य का चक्कर चलाया तो वे विद्रोह कर बैठे जिसे सत्ता के ठेकेदारों ने राजनीतिक विद्रोह, नक्सलवादी षडयंत्र और न जाने क्या क्या नाम दे डाले -

पता चला वे सात जने थे
जाने कब से यहाँ पड़े थे।
सातों के सातों नक्सल थे
अपने हक के लिए लड़े थे।
सातों के सातों चमार थे
अति दरिद्र थे भूमिहीन थे
करते थे मेहनत मजदूरी
मालिक लोगों के अधीन थे
भूमिहरण बर्दाश्त कर गए
चुप्पी साधी मार-पीट पर
गुस्सा तब भड़का, बहुओं की
इज्जत जब लूटी घसीट कर।

जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो समाज में न्याय, समता और सुरक्षा की आशा कैसे शेष रह सकती है। अन्याय और अत्याचार, असंतोष तथा विद्रोह को ही जन्म देते हैं। शोषण के लिए यह असंतोष और संगठित विद्रोह क्या अप्रासंगिक कहा जा सकता है?

4.7 दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली और शिक्षा व्यवस्था

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा निरन्तर यह अनुभव किया जाता था कि भारत के सभी प्रकार से पिछड़े होने का कारण मुख्य रूप से शिक्षा का अभाव और भारतीय जनमानस पर थोपी गई विदेशी शिक्षा पद्धति रही है। शिक्षा के अभाव में आजादी से पूर्व जहाँ अधिसंख्य नागरिक स्वतंत्रता के महत्व और अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होने के कारण न केवल अन्ध राजभक्त बनते थे अपितु वे विविध प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों और ब्रिटिश तथा सामन्ती शोषण के कुचक्र में अनजाने ही फंसते थे। राष्ट्र निर्माताओं का मन्तव्य शिक्षा को सामाजिक जीवन के परिवर्तन का एक सशक्त एवं प्रभावी माध्यम बनाना था, किन्तु राजनीतिज्ञों के दुष्चक्र में फँस कर आजादी के बाद भी शिक्षा प्रणाली, शिक्षक और शिक्षार्थी उपेक्षणीय ही रहे। उन्हीं के शब्दों में शिक्षा की यह झाँकी देखिए -

घुन खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है छत चूती हैं, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे।।

(मास्टर, सन् 1953)

यह कविता तो स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद लिखी गई थी किन्तु आज भी भारत के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति लगभग ज्यों की त्यों है। प्रशासनिक कार्यों एवं अन्य सरकारी तामझाम तथा शान-शौकत में कोई कमी या कटौती न होकर आर्थिक कटौती का शिकार सबसे अधिक शिक्षा बजट ही होता है। यही कारण है कि गाँव के सरकारी स्कूलों में प्रायः खस्ता हाल पुरानी इमारतों में स्कूल चलते हैं जिनमें न तो श्याम पट्ट हैं और न छात्र-छात्राओं के बैठने के लिए टाट पट्टी। कहीं कहीं तो शिक्षक ही नहीं है। यदि शिक्षक है भी तो उसे कई-कई महीने वेतन नहीं मिलता। नौकरशाही का शिकार असहाय अध्यापक ग्रामीणों की सहानुभूति एवं सहायता से दिन काटता हुआ गाँव के दबंग

दादाओं और छुट भय्या नेताओं की धमकियों और दबाव के तहत मानसिक यंत्रणा सहता हुआ अर्थाभाव में भुखमरी का शिकार होता है। कवि ने इसका बड़ा ही हृदय ग्राही एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है -

'जात का कायथ
उमर है लगभग पचपन साल की
पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रूपए सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं दो नही नौ नौ महीने '

× × × × ×

'बड़े अच्छे मास्टर हो
आए हो मुझको भी पढ़ाने।।
मैं भी बच्चा हूँ.....
वाह भाई वाह!
तो तुम भूख से नहीं मरे?'

(प्रेत का बयान, सन् 1950)

शिक्षा के अभाव में मनुष्य को उसके नागरिक अधिकारों की जरूरी जानकारी नहीं मिल पाती और न ही उसे पता लग पाता है कि वह अनजाने में समाज के सक्षम वर्ग के शोषण का शिकार बन रहा है। यथास्थिति को नियति मानकर वह घोर निराशा का जीवन जीने को बाध्य हो जाता है।

4.8 **अर्थ व्यवस्था**

जनतांत्रिक अर्थव्यवस्था में देश की समग्र जनता के सर्वांगीण विकास की आशा की जाती है। विदेशी शासन से मुक्ति की साँस लेने के बाद सामान्य जन को ऐसी आशा ही

नहीं अपितु दृढ़ विश्वास था कि अपनी सरकार उसे कम से कम दो जून की रोटी तो अवश्य ही उपलब्ध कराएगी। घोर आश्चर्य का विषय है कि पूंजीपतियों के कुचक्र के कारण यह सपना आज तक साकार नहीं हो सका। समता और समाजवाद की दुहाई देने वाली सरकार पूंजीवाद के शिकंजे में जकड़ी बेबस नजर आती है। जमाखोर व्यापारियों तथा आढ़तियों द्वारा कृत्रिम अभाव की स्थिति उत्पन्न की जाती है और जीने के लिए नितान्त आवश्यक वस्तुओं के मनमाने दाम वसूल किए जाते हैं। स्थिति को उजागर करती इन पक्तियों पर गौर करें -

गोदामों में अन्न कैद है, पेट-पेट है खाली
भूख पिशाचिन बजा रही द्वार द्वार पर थाली

× × × × ×

कहाँ गए चावल गेंहू, दलहन-तिलहन के दाने
कागज का रूपया रोया सुनना पड़ता है ताने
हर सीढ़ी छोटी पड़ती है भाव चढ़े मनमाने
सबकी कलई उतर गई है सभी गए पहचाने
छीन सकें तो छीन ले, लूट सके तो लूट।
मिल सकती कैसे भला अन्न चोर को छूट।।
आज गहन है भूख का, धुंधला है आकाश।
कल अपनी सरकार का, होगा पर्दाफाश।।

(अन्न पच्चीसी , सन् 1973)

इस कृत्रिम अभावजन्य मंहगाई को देशी नेताओं का खुला समर्थन और आशीर्वाद प्राप्त है। नेताओं की छत्र-छाया में राशन की दुकानों पर काला बाजारी और चोर बाजारी होती है -

दो हजार मन गेंहू आया दस गॉवों के नाम
राधे चक्कर लगा काटने , सुबह हो गई शाम

सौदा पटा बड़ी मुश्किल से पिघले नेताराम
पूजा पाकर साध गए चुप्पी हाकिम हुक्काम
भारत-सेवक जी को था अपनी सेवा से काम
खुला चोर बाजार, बढा चोकर चूनी का दाम
भीतर झुरा गई ठठरी, बाहर झुलसी चाम
भूखी जनता की खातिर आजादी हुई हराम।।

(नया तरीका, सन् 1953)

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था एवं समाजोत्थान से संबंधित कोई विषय नागार्जुन से अछूता नहीं बचा है। जाति पाति धार्मिक कट्टरता, छूआछूत, वर्ग वैषम्य, आर्थिक तंगी, मंहगाई, घर-गृहस्थी, ग्रामीण और शहरी जीवन, भ्रष्टाचार, सूदखोरी, भाई, भतीजावाद आदि की एक लम्बी सूची बनेगी, जिस पर नागार्जुन ने छोटी बड़ी कोई न कोई कविता अवश्य ही लिखी है। उनके बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनकी कविता भी है। समाज के हर कोने को झाँकने और झाँकने की अद्भुत क्षमता है नागार्जुन में।

पांचवा अध्याय

नागार्जुन की कविता में सांस्कृतिक पक्ष

5.। संस्कृति- व्युत्पत्ति- परिचय, घटक

संस्कृति शब्द का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसकी कोई निश्चित वस्तुनिष्ठ एवं सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। वस्तुतः धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज तथा परम्पराएँ, भाषा, कला, साहित्य, इतिहास और दर्शन का समग्र आकलन या प्रतिफलन ही संस्कृति है। यह कोई दस-बीस वर्ष की छोटी अवधि का विषय नहीं है, अपितु शताब्दियों से सतत प्रवहमान निर्झरिणी के समान है जिसमें से उस (पुराने) या इस (नए) का विश्लेषण करना संभव नहीं है। विरासत में मिली यह सॉस्कृतिक धरोहर निरन्तर परिवर्तनशील रहने के कारण 'क्षणे-क्षणे यन्नव तामुपैति' की कसौटी पर सदा खरी उतरी है। उत्तराधिकार में मिली इसी संस्कृति में हम कुछ न कुछ अपनी ओर से जोड़कर समृद्ध करके उसे आने वाली पीढ़ी को सौंप दें तभी मानव जीवन सफलता और समृद्धि का परिचय दे सकेगा। इस प्रकार अपनी संस्कृति को समृद्ध करते हुए उसे गतिशीलता प्रदान करना प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक का कर्तव्य है। सामान्यजन से अलग प्रत्येक साहित्यकार के लिए तो यह परमावश्यक है कि उसकी रचना उसके राष्ट्र की संस्कृति का तो प्रतिनिधित्व करे ही साथ ही यह भी अवलोकनीय होगा कि संस्कृति के उन्नयन की दिशा में साहित्यकार का प्रयत्न कैसा रहा।

बीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज में सॉस्कृतिक आन्दोलनों की एक बाढ़ सी आ गई। राजा राममोहन राय, स्वामीदयानन्द सरस्वती, सर सैयद अहमद खान, अरविन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि ने हमारी सुषुप्त सॉस्कृतिक चेतना को जगाने का श्लाघनीय कार्य किया। इस युग में यातायात एवं संचार के द्रुतगामी साधनों ने मनुष्य को एक नई अन्तर्राष्ट्रीय पहचान, समझ और दृष्टि प्रदान की। साहित्यकार जो अब तक कल्पना लोक में ही विचरण करते थे उन्हें यथार्थ भावभूमि का भी बोध हुआ। सॉस्कृतिक क्रांति की इस लहर ने साहित्य को नई प्रेरणा दी जिससे अनुप्राणित होकर उसे अपनी भूली हुई सामर्थ्य 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' का स्मरण हो आया। अब साहित्यकार को इस बदलते हुए परिवेश में अपना दायित्व निभाने का

का पूरा पूरा एहसास हो गया। परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्य में भी विशेषतः चालीस के दशक में साहित्य में एक नई सॉंस्कृतिक क्रांति का उदय हुआ। देश प्रेम, राष्ट्रीय गौरव, आत्म सम्मान स्वाभिमान और श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ी। धार्मिक रूढ़ियाँ, शोषण, विदेशी सत्ता और शिक्षा आदि की कटु आलोचना के प्रखर स्वर भी मुखरित होने लगे।

कवि प्रवर नागार्जुन ने जन-साधारण को सॉंस्कृतिक आन्दोलन का एक अविभाज्य अंग मानते हुए साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी रूचि-परिष्कार का बीड़ा उठाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के चिन्तकों और मनीषियों ने मृतप्राय भारतीय संस्कृति के पुनरोत्थान पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने महसूस किया कि 'पुरानी संस्कृति में सड़न आ गई है। घुन लगा हुआ है।'[1] समयानुसार हमें संस्कृति को नई ताजगी देनी होगी। सॉंस्कृतिक आन्दोलन पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते हैं - "हमारा उद्देश्य होगा - संस्कृति और जीवन के सॉंस्कृतिक पहलू का इस प्रकार विकास करना कि हमारा सामाजिक जीवन स्वतंत्रता, समता और मानवता के आधार पर पुनः संगठित हो और वह सौंदर्य एवं आनन्द को पूर्ण रूप से विकसित कर सके। हॉं, स्वतंत्रता, समता, मानवता! नई संस्कृति का आधार तो यही हो सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ हम सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक अर्थों में नही लगाते। तीसरा शब्द मानवता हमारे उद्देश्य को स्पष्ट और पुष्ट कर देता है। हम सारी दासताओं से, सारी विषमताओं से मानवों को मुक्त कर उनके परस्पर के सम्बन्ध को विशुद्ध मानवता पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। क्योंकि हम मानते हैं कि तभी आदमी अपने जीवन में सौंदर्य और आनन्द की उपलब्धि कर पाएगा।"[2] संसार को मानव जाति के रहने योग्य सुखद ओर सुन्दर बनाना तथा मनुष्य के सौंदर्य बोध का विकास करते हुए उसे इहलोक में ही आनन्दानुभूति कराना ही प्रगतिशील आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य है। इस दृष्टि से बेनीपुरी जी के

1- बेनीपुरी ग्रंथावली - 'गेंहू और गुलाब' खण्ड के निबन्ध 'नई संस्कृति की ओर' पृष्ठ 2
2- उपर्युक्त - पृष्ठं 3

संस्कृति सम्बन्धी पूर्वोक्त विचार महत्वपूर्ण हैं। कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी के अनुसार, 'संस्कृति जीवन की उन अवस्थाओं का नाम हैं जो मनुष्य के भीतर व्यवहार, ज्ञान तथा विवेक पैदा करती हैं। वह उसके सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती हैं, उस की संस्थाओं को चलाती है। उसके साहित्य और उसकी भाषा को बनाती हैं, उसके जीवन के आदर्श और उसके जीवन के सिद्धान्तों को प्रकाश देती है।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृति मानव मूल्यों की स्थापना अथवा निर्धारण करके मनुष्यको संपूर्ण रूप से सामाजिकता प्रदान करने वाला अन्यतम प्रेरणा स्रोत हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू संस्कृति को नैतिक और सामाजिक मूल्यों के निर्धारण में योग देने के साथ ही उसे एक ऐसा सूत्र मानते हैं जो मनुष्य को मनुष्य से स्नेह बंधन में बाँधने की क्षमता रखता है। नेहरू जी के शब्दों में - 'संस्कृति का अर्थ मनुष्य के भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति हैं, एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार और दूसरों को समझने की शक्ति हैं।'[2] वास्तव में संस्कृति की यह भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है क्योंकि आज मानव समाज विघटन के जिस कगार पर पहुच गया है, उसे ध्यान में रखते हुए पारस्परिक सहयोग और सद्व्यवहार द्धारा ही विनाश की ओर बढ़ते हुए उसके कदमों को रोका जा सकता है। भारतीय सस्कृति और इतिहास के मूर्धन्य विद्धान डा0 भगवतशरण उपाध्याय संस्कृति की व्यापक भूमिका को रेखांकित करते हुए कहते हैं,' जिस संस्कार शब्द से संस्कृति शब्द बना है, उसका अर्थ है कच्ची धातु को शुद्ध करना, उसमें लगी मैल को हटाकर धो पोंछकर काट छांट कर रगड़ कर पालिश करके चमका देना है। मनुष्य भी अपनी आदिम अवस्था में वैयक्तिक और सामूहिक दोनों में संस्कारहीन था। धीरे धीरे स्वनिर्धारित प्रतिबंध लगाकर अनुचित को दबाकर, उचित को बढ़ावा देकर ही सुन्दर बना है। तात्पर्य यह है कि जो प्रकृति सिद्ध नहीं मानव निर्मित हैं और जिसे मनुष्य अपनी आर्थिक तथा मानसिक आवश्यकताओं के लिए बनाता

1- कन्हैयालाल मणिक लाल मुंशी: परिभाषा, भारतीय संस्कृति का इतिहास अध्याय 2 से उद्धृत

2- पंडित जवाहरलाल नेहरू: भारत की खोज

या विकसित करता है, वही संस्कृति है।'[1] कहना न होगा कि संस्कृति और मनुष्य का ऐसा अटूट रिश्ता है जो अनादिकाल से चलता आया है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। प्रगतिशील विचारधारा से अनुप्राणित नागार्जुन के काव्य में ऐसे विपुल प्रसंग भरे पड़े हैं जिनमें बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का स्वर स्पष्ट परिलक्षित होता है समाज के विघटनकारी तत्वों पर आक्रामक रोष व्यक्त करते हुए नागार्जुन ने साहित्य को भारतीय संस्कृति के जनवादी - प्रगतिशील पक्ष से बखूबी सुसंबद्ध करने का सफल प्रयास किया है। सांस्कृतिक संदर्भों में उनकी कविता का मूल्यांकन निस्सन्देह खरा और निष्कलंक प्रमाणित होता है। संस्कृति और साहित्य का यह अनूठा सामंजस्य उनकी कविताओं में विभिन्न संदर्भों में दृष्टव्य है।

5.2 पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण पर व्यंग्य

वर्तमान युवा पीढ़ी में पाश्चात्य सभ्यता के प्रति एक प्रकार की अवॉछनीय ललक दिखाई पड़ती हैं। आजकल के युवक-युवतियाँ पाश्चात्य वेशभूषा के फैशन के चक्कर में पड़कर अपने नागरिक कर्तव्यों तक को तिलांजलि दे देते हैं। चुनाव के दिनों में उंगली पर स्याही के दाग लगने के कारण उनकी सौंदर्य सज्जा खराब हो जाएगी, इस भय से आज की आधुनिकाएँ मतदान में भी भाग नहीं लेतीं। इससे बड़ी विडम्बना एक प्रजातंत्र प्रणाली में और क्या हो सकती है? इस घटना पर विक्षुब्ध होकर नागार्जुन के बोल फूट उठते हैं -

सामने आकर रूक गई चमचमाची कार
बाहर निकलीं वासक सज्जा युवतियाँ
चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चम्पई कांति
तिकोने नाखूनों वाली उंगलियाँ
सुर्ख नेल पालिश
कीमती रिस्टवाच

---

1 - डा0भगवतशरण उपाध्याय : परिभाषा भारतीय संस्कृति का इतिहास से उद्घृत अध्याय 2

अंगूठियों के नग
किंचित कपचे हुए सघन नील कुन्तल
सब कुछ नमक उठा, महक उठा वायुमण्डल

× × × × ×

आ रहा था डालकर वोट एक अधेड़
उंगली की जड़ में चमक रहा भी ताजा काला निशान
ठमक गए सहसा बेचारियों के पैर

× × × × ×

क्षण भर ठिठक कर
नई दिल्ली की तीनों परियाँ
मुड गईं सहसा वापस
स्टार्ट हुई कार, लोग लगे हंसने
बात थी जरा सी बस काले निशान की
तीन वोट रह गए फैशन के नाम पर!

(जयति नख रंजनी, 1957)

विगत पीढ़ी की नारी की तुलना म आधुनिक नारी शिक्षित और जागरूक भले ही हो पैसा कमाने के कुचक्र की शिकार बनकर वह अपनी चरित्र रूपी अमूल्य पूंजी के विनिमय पर भी तत्पर रहती हैं। भारतीय समाज में मॉडल का काम करने वाली, सेल्सगर्ल, काउण्टर गर्ल, ओठों पर कृत्रिम मुस्कान चिपकाए रिसेप्शन पर बैठी युवती आदि अनेक रूप हैं उसके । इनमें से प्रत्येक स्थान पर उसकी देहयष्टि और चरित्र का सौदा होता है। विज्ञापन एकत्र करने वाली ऐसी ही एक रूपसी का नागार्जुन ने इस प्रकार शब्द चित्र खींचा हैं -

रमा लो मॉग में सिन्दूरी छलना
फिर बेटी विज्ञापन लेने निकलना
तुम्हारी चाची को यह गुर कहाँ था मालूम!

हाथ न हुए पीले
विधि विहित पत्नी किसी की हो न सकीं
चौरंगी के पीछे वो जो होटल है
और उस होटल का
वो जो मुच्छड़ रौबीला बैरा है
ले गया है सपने में बार बार यादवपुर
कि आखिर शादी तो होगी ही
ओ हे युग नन्दिनी विज्ञापन सुन्दरी
गलाती है तुम्हारी मृदु मुस्कान की मृदु मद्धिम आँच
धन कुलिश हिप-हिम कुबेर के छौनों का
क्या खूब, क्या खूब
कर लाईं सिक्योर विज्ञापन के आर्डर।

(विज्ञापन सुन्दरी 1961)

शारीरिक फैशन परस्ती के अतिरक्त पाश्चात्य सभ्यता की घुसपैठ घरेलू जीवन में भी देखी जा सकती है। महापुरूषों के चित्र या मूर्तियाँ श्रद्धा पूर्वक नमन के योग्य समझी जाती थीं। आजकल घर के ड्राइंगरूप में रखे शोकेस में इन महापुरूषों की मूर्तियाँ घर की सजावट का काम करती दिखाई देती हैं। पाश्चात्य साहित्य पर बढ चढ़ कर सोत्साह भाग लेना भी इस आधुनिकता का एक दिखावा है। बात, बात पर सॉरी,एक्सक्यूज मी,बाईद वे जैसे शब्दों को उछालना सभ्यता की अदा मानी जाती है। ऐसी ही एक, आधुनिक सभ्यता के पश्चिमी रंगढंग में रची पची, सभ्रांत महिला के अतिथि होने पर बाबा के साथ कैसी गुजरी, इसकी एक झलक निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है -

चाँदी के बापू
गजदन्त के तथागत

चन्दन के बिनोवा

ताम्बे के लेनिन

उमग आई आस्था

झुका नहीं फिर भी मस्तक !

चम्पई आभा की मध्यवयस्क महिला

डबल एम0 ए0 मिसेज़ गुप्ता

शेल्फ की ओर उंगुली उठाकर बोलीं

बस ले देकर यही एक शौक बचा है उनका।

वो रहा हक्सले

वो जुंग

और वो पावलोव

जी हाँ मार्क्स का पूरा सेट है अपने पास-------

× × × × ×

मैंने कहा: जरूर किया होगा

हंस, विशाल भारत, माधुरी,सरस्वती, चाँद

कहाँ नहीं छपते रहें हैं भाई जी ?

आप भी तो चौकस पाठिका रही होंगी ?

जी हाँ, जी हाँ------

नचाकर कमलपत्री नेत्र

बोलीं मिसेज गुप्ता गद्गद् स्वर में

ट्रंक मे कतरन पड़ी है ढेर सी

मुहलत नहीं देते दुनियादारी के झमेले।

(प्लीज एक्सक्यूज मी, 1961)

ऐसी मानसिकता पर जिसे अपने देश और अपनी भाषा के साहित्य को पढ़ने की तो मुहलत नहीं मिलती परन्तु पाश्चात्य साहित्य के पीछे अजीब दीवानगी हो, किसे क्रोध या विषाद न होगा। अपने देश की संस्कृति से इस प्रकार कटना अपने इतिहास से कटना होगा। इस मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए नागार्जुन के अतिरिक्त गिने चुने साहित्यिकों ने ही चिन्ता व्यक्त की है।

5.3 धर्म की विकृति पर व्यंग्य

मानव जीवन में सामाजिकता की नींव धर्म की जिस सुदृढ शिला पर रखी गई थी, आज वह इतनी विद्रूप अवस्था में हैं कि धर्म के नाम से लोग कुढ़ते हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार 'धर्म जनता को बेहोश और करने वाली अफीम है।'[1] समाज के पिछड़े और कमजोर वर्ग को यथास्थिति में संतुष्ट बनाए रखने के लिए शोषकवर्ग द्वारा इसका अमोद्य अस्त्र के रूप में खुलकर प्रयोग किया जाता है। धर्म के इस विकृत स्वरूप के विरोध में नागार्जुन भड़कते हुए कह डालते हैं -

घोर अपराधी - सदृश हो नत बदन निर्वाक
बाप दादों की तरह नरगडूं मैं निज नाक
मन्दिरों की देहली पर पकड़ दोनों कान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान,
युगों से आराधना की, आगए अब तंग
झाल और मृदंग!
अंधेरे में रहे लोग टटोल -
गोल हो या पोल?

× × × × ×

क्ल्पना के पुत्र हे भगवान

1- कार्ल मार्क्स : इन्ट्रोडक्शन टू क्रिटीक आफ ..... हीगल (पाकेट बुक आफ क्वोटेशंस पृष्ठ 312 से उद्घृत)

हर देश और समाज में ईश्वर और उसके प्रति अंध आस्था की दुहाई देकर लोगों को पीढ़ी दर पीढ़ी भ्रम के अंधकार में धकेला जाता रहा है। मंदिरों के पुजारी अपने ठाठ बनाए रखने के लिए श्रद्धालु भक्तों से नाक रगड़वा कर प्रायश्चित में उनसे दक्षिणा ऐंठते हैं। वह भगवान, नागार्जुन के अनुसार मनुष्य की कल्पना और भावुकता की मात्र एक उपज है। मनुष्य के लिए सबसे बड़ा धर्म है 'मुक्ति'। सभी प्रकार के बन्धनों से स्वतंत्र होकर विवेकपूर्ण जीवन जीना ही सार्थक है। वेद, पुराण, पुरातन आचार-विचार और यम-नियम की फाँस, इन सब की साँ सत झेलकर भयभीत जीवन जीने की अपेक्षा यात्री नागार्जुन का उद्घोष है -

खोलकर बंधन मिटाकर नियति के आलेख
लिया मैंने मुक्ति पथ को देख
नदी कर ली पार उसके बाद
नाव को लेता चलूं कयों पीठ पर मैं लाद
सामने फैला पड़ा है शतरंज सा संसार
स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार
इसी में भव इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन, इसी में प्राण
यहीं जड़ जंगम सचेतन औ' अचेतन जन्तु
यहीं 'हाँ', 'ना', 'किन्तु' और 'परन्तु'
यहीं है सुख दुख का अव बोध
यहीं है हर्ष-विषाद, चिन्ता-क्रोध
यहीं है सभावना अनुमान
कल्पना के पुत्र हे भगवान (कल्पना के पुत्र हे भगवान' 46)

सभी धर्मो में इस संसार को असार एवं मिथ्या बताया है किन्तु जो मनुष्य की आँखों के सामने है उस ठोस सत्य को नकार कर कल्पना की परछाई के पीछे दौड़ना कवि को

रूचिकर नहीं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'न जाने कब यक्षों के वज्रपाणि नामक देवता इस वैराग्य प्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गए। फिर वज्रयान का अपूर्व धर्म मार्ग प्रचलित हुआ। त्रिरत्नों में मदन-देवता ने आसन पाया। इसमें बौद्ध बह गए, शैव बह गए, शाक्त बह गए । एक अजीब आँधी थी।[1] सन्यासियों ने अपनी वासनापूर्ति के लिए युगों से शोषित नारी जाति को निशाना बनाया। आवागमन से मुक्ति का लालच देकर अबोध, असहाय अशिक्षित बालिकाओं तक को धर्मगुरूओं ने दीक्षा देनी शुरू कर दी। धर्म के नाम पर नारी के इस शोषण के विरोध में भिक्षुणी धर्मोन्माद टूटने पर क्या कहती है, इन पंक्तियों में -

मेरे मूर्ख माँ-बाप
आवेश में आकर
सौंप गए मुझको शरण में त्रिरत्न की।

× × × × ×

हुई कुछ स यानी फिर
तुम्हारा वह मध्यमार्ग समझने का यत्न किया
महामान हीन यान सभी में जान गई
किन्तु नहीं जान सकीं
मानव का मानवी सहजयान क्या है।

(भिक्षुणी : 1946)

डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार धर्म मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली कड़ी है।' मनुष्य को अपने संगीसाथियों और संसार में रहकर सफल जीवन जीने की कला से पराङमुख करने वाला मार्ग धर्म कैसे हो सकता है। 'नागार्जुन उन दैवी शक्तियों के प्रति भी विरोध व्यक्त करते हैं जो मनुष्य को दबाती हैं।'[2] विन्धयाचल पर्वत की पौराणिक घटना के

1- अशोक के फूल : ह0प्र0द्विवेदी (निबन्धनिकष, पृष्ठ 96)
2- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता पृष्ठ 60-61

संदर्भ में उनका व्यंग्य कितना पैना है देखिए -

विनयावनत हुए तुम जिनको देख
और, जो तुमको गए चटपट टाप
वह अगस्त्य थे कितने धूर्त

धर्म के नाम पर अथवा वर्ण व्यवस्था के कारण जहाँ भी कवि को जनसाधारण के शोषण अथवा दमन का एहसास होता है, उसका मन विद्रोह करने के लिए आतुर हो उठता है। द्वितीय विश्वयुद्ध और उसकी समाप्ति के तत्काल बाद के कुछ वर्षों की अवधि में जमाखोर, कालाबाजारी पूंजीपतियों ने जीवन के लिए नितान्त आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के कृत्रिम अभाव की स्थिति उत्पन्न करके मनमाना मुनाफा लूटा। आम जनता को पेट भरने के लिए अनाज, तन ढंकने के लिए कपड़ा और दिया जलाने के लिए मिट्टी का तेल अलभ्य हो गए। इस विषम स्थिति में दैवी आपदा कहकर धनिक वर्ग दोनों हाथों से गरीबों को लूट रहा था। साधनहीन, विपन्न तथा असहाय जन की विवशता को देखकर कवि विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है -

ओ काल कूट तू कहाँ गया?
ओ हाला हलाहल तू कहाँ गया?
अमृत की बात नहीं पूछो
विष तक का बूंद नहीं मिलता
देवता हुए निर्लज्ज सभी को छिपा दिया।
कहते जाओ उनसे माँगो
जो क्षीर उदधि में शेषनाग की शैया पर कर रहे शयन
भण्डार हमारा खाली है
भगवान सभी के मालिक हैं
लाचारी है, कुछ भी हम तुमको दे न सके।

× × × × ×

मन करता है :

मैं उस अगस्त्य सा पी डालूं सारे समुद्र को अंजलि से

उस अतल वितल में तब मुझको

मुर्दा भगवान दिखाई दे

(मनकरता है। 1945)

भगवान के नाम पर लूटने वाले समाज के उच्चवर्ग के निर्लज्ज और पीड़ादायी व्यवहार से क्षुब्ध कवि भगवान के पीताम्बर तक को छीन कर गरीबों को दे देना चाहता है। इतना ही नहीं 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' अर्थात दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार ही उचित है, इस नीति का समर्थन करते हुए नागार्जुन मानो एलान करते हैं एक बार नहीं बार बार 'मन करता है नंगा होकर ..... ।' निर्लज्ज से ही निर्लज्ज डरता है। लोकप्रचलित कहावत भी है - 'नंग बड़ा परमेश्वर से' समाज के सुविधा भोगी वर्ग की ढीठता और निर्ममता का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए शोषित, पीड़ित तथा कमजोर वर्ग को भी निर्मम और लज्जाहीन बनना पड़ेगा। पद, प्रतिष्ठा, वर्ण और अवस्था का लिहाज आखिर शोषक वर्ग को कब तक शोषित वर्ग के क्रोधानल से बचा पाएगा।

'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'[1] के उदात्त विचार को भूलकर धर्म के नाम पर सन् 1947 में सत्तालोलुप राजनेताओं ने देश का विभाजन कर डाला। विभाजन लेकर डाला पर विभाजन की इस आँधी ने कितने घरों और गाँवों को वीरान किया, इतिहास इसका साक्षी है। इतने से भी यह धर्मांधता और साम्प्रदायिक नफरत की आग शान्त न हो पायी। निहित स्वार्थों से प्रेरित राजनीतिज्ञों के इशारे पर अब भी अबोध जनता गाहे बगाहे साँप्रदायिक दंगों की शिकार होती रहती है। जमशेदपुर, बनारस, अलीगढ़, मेरठ, मुरादाबाद, बेलगाम आदि केवल स्थान बदलते रहे हैं, दृश्य और अभिनय वही 1947 के साँप्रदायिक दंगों का होता है। सन् 1983 में मेरठ में हुए साम्प्रदायिक दंगों में सैकड़ों बेगुनाह लोग मारे गए। अगणित मजदूर बेकसूर भुखमरी के शिकार हुए। नागार्जुन ने मौके पर पहुंचकर आम आदमी की पीड़ा को भोगा

1- मुहम्मद इकबाल : काव्य संकलन

और स्वयं अनुभव किया। दिहाड़ी पर जीने वाले गरीब के लिए तो रोटी ही धर्म है। माथे पर तिलक लगाकर गले में रूद्राक्ष की माला डाले, सिर पर बालों की चोटी रखकर कलीमुद्दीन से बना प्रेम प्रकाश रिक्शा चालक इस बात का जीता जागता सबूत है।

बो कहने लगा -

'बाबा जी अब हम चुटैया भी रखेंगे
आठ दस रोज की भुखमरी के बाद
हमारे अन्दर
य' अक्किल फूटी है!
बाबा जी,
रूदराछ के मनके
अच्छी मजूरी दिला रहे हैं
बाबा जी, अब हम
चुटन्ना भी रखेंगे माथे पर
अब हम चन्दन का टीका भी
रोज लगाते रहेंगे .....
बाबा जी अब हम
अपना नाम भी तो
'परेम पर¯कास बतलाते हैं .... '

(तेरी खोपड़ी के अन्दर ।983)

धर्म के घिनौने रूप तथा उसके नाम पर मानवता का शोषण और दानवता के नग्न नृत्य का पर्दाफाश करके नागार्जुन ने जनता और सच्चे जन नायकों का ध्यान आकर्षित करने में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान।' के कीर्तन का दिखावा करने वालों को धर्म के नाम पर चुनाव जीतने का प्रपंच अब रोकना

होगा। नागार्जुन ने कोशिश की है जन-जन को यह बात समझाने की। उन्होंने साधारण जन को बताया है कि किस प्रकार धर्म के नाम पर उन्हें भूखों मरने और हिंसा, दंगे और आगजनी का शिकार बनने की ओर उनके अज्ञान के कारण उनके तथाकथित नेता धकेलते हैं। सावधान किया है,कवि ने उन स्वार्थी नेताओं को जो साम्प्रदायिक दंगों और धार्मिक विद्वेष की आँच पर ही अपनी राजनीति की रोटी अब तक सेंकते रहे हैं।

5.4 सत्य का अवमूल्यन

जीवन के लिए शाश्वत मूल्यों में सत्य का स्थान सदैव ही महत्वपूर्ण रहा है। प्रत्येक देश की संस्कृति में सत्य के अनुशीलन का महत्व प्रतिपादित किया गया है। सत्य का पालन करते हुए लोगों ने हँसते हँसते आपदाओं को गले लगाया किन्तु आज के युग में स्थिति बिल्कुल उल्टी है। भले ही भारतीय मुद्रा पर आदर्श वाक्या 'सत्यमेव जयते' लिखा हो किन्तु दैनिक आचरण इसके विपरीत ही दिखाई देता है। 'संस्कृति का राजनीतिकरण और व्यावसायीकरण निश्चित रूप से विसंस्कृतिकरण और विमानवीकरण की प्रवृत्तियों को प्रश्रय दे रहा है।[1] सन् 1975 में आपातकाल (इमरजैन्सी) लागू होने पर तो मानों 'सत्य' के अस्तित्व और अस्मिता पर ही वज्रपात हो गया। समाज के बड़े अग्रगण्य व्यक्तियों की हिम्मत काफूर हो गई। सत्य बोलने और सत्याग्रह के लिए समर्पित लोगों को बन्दीगृह की यातनाएँ भोगनी पड़ी। विडम्बना की बात तो यह थी कि देश के मूर्धन्य सन्त और समाजसुधारकों की जबान पर भी ताला लग गया। ऐसे लोग जिनकी तरफ आम जनता आशा भरी नजरों से देखती थी उनकी जिह्वा को भी जैसा लकवा मार गया हो। सांस्कृतिक मूल्यों की ऐसी दुर्दशा और शोचनीय स्थिति थी, परन्तु सरकारी दमन और अमानवीय नीति के पक्ष में साहित्य के अलंबरदार लफ्फाजी कर रहे थे। इस दम घोंटू वातावरण में भी नागार्जुन जैसा प्रगतिशील कवि ही चुनौती स्वीकारता दिखाई पड़ता है -

---

1- श्यामाचरण दुबे - संस्कृति का उत्सवीकरण..... जनसत्ता दैनिक पृष्ठ 4 दिनांक 27-8-92

सत्य को लकवा मार गया है
वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन सारी रात
वह फटी फटी ऑखों से
टुकुर टुकुर ताकता रहता है सारा दिन सारी रात
कोई भी सामने से आए-जाए
सत्य की सूनी निगाहों में जरा भी फर्क नहीं पड़ता
पथराई नजरों से वह यों ही देखता रहेगा
सारा-सारा दिन सारी-सारी रात
सत्य को लगवा मार गया है
गले से उपर वाली मशीनरी बिल्कुल बेकार हो गई है
सोचना बन्द
समझना बन्द
याद करना बन्द
याद रखना बन्द
दिमाग की रगों में जरा भी हरकत नहीं होती
सत्य को लकवा मार गया।

(सत्य 1975)

आचार्य विनोबा भावे जैसे महापुरूष भी आपातकाल में महाभारत के भीष्म की तरह चुप्पी साध गए और मौन व्रत धारण कर लिया। इतना ही नहीं आपात काल के पक्ष में स्लेट पर लिख दिया 'अनुशासनपर्व'। एकाध ने सत्य बोलने और लिखने की हिमाकत की तो उसका जो हश्र हुआ वह भी दृष्टव्य है -

'क' आकृति वाला बोला :

जाने कब से तू

हमारी ऐसी तैसी करता आया!

तेरी करतूत अब बरदाश्त नहीं होती

बोल क्या करूं तेरा S S S .....'

'स' आकृति वाला दूसरा गर्जा .....

(वो और भी तैश में था)

'करना क्या है!

गला घोंट दे साले का S S .... '

वो हमे चेतावनी देने आए थे (1982)

सत्य बोलने और लिखने वालों को राजनीतिक गुण्डों द्वारा आए दिन जिस प्रकार की धमकियॉ दी जाती है, इस से परिचित तो सब हैं परन्तु कितने लोग हैं जो इसका पर्दाफाश करते हों ?

5.5. अहिंसा की उपहासास्पद स्थिति

भारतीय संस्कृति ही नहीं अपितु सारे देशवासी अहिंसा का ढोल पीटते हैं। अपने दैनिक व्यक्तिगत जीवन में दूसरों के साथ व्यवहार में दिखावे के लिए अहिंसा के पक्ष में बढ़चढ़ कर दलीलें दी जाती हैं। वस्तुस्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। किसी को शारीरिक यंत्रणा हो अथवा मानसिक यंत्रणा अपना कार्य सिद्ध करने और स्वार्थपूर्ति के लिए गर्हित से गर्हित कर्म करने के लिए मनुष्य तत्पर रहता है। स्थिति ठीक ढोंग साधना की है। छल कपट, मधुर भाषण, जय जयकार यह सब स्वार्थ पूर्ति के विभिन्न सोपान हैं। मन, वचन, कर्म से अहिंसा के पालन की हामी भरने वाले अधिकांश लोग दंभी हैं। ऐसे लोगों की काली करतूतों की पोल खोली है 'बाबा' ने निम्नलिखित पंक्तियों में :

हाँ हम ढोंगी हैं प्रथम श्रेणी के
आत्मवंचक, पर प्रतारक ..... बगुला धर्मी
यानी धोखेबाज
जी हाँ हम ढोंगी हैं ..... झुट्ठे हैं
न हिंसा में हमारा विश्वास है
मन वचन कर्म ..... हमारा कुछ भी स्वच्छ नहीं है
हम किसी की भी जय बोल सकते हैं
हम किसी को भी धोखे में डाल सकते हैं

आज देश का जनजीवन ऐसे ही संक्रमण काल से गुजर रहा है, नैतिक और सॉस्कृतिक धरोहर को हम पूरी तरह भुलाकर किसी भी साधन से साध्य को झपट लेना चाहते हैं। साध्य भी ऐसा जो केवल हमारे निजी स्वार्थ की पूर्ति करता है। सामाजिक उत्थान और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दुहाई देना मानों एक आधुनिक फैशन है वरना जनहित की किसे चिन्ता पड़ी है। प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन के सूत्रधार और जनवादी चिन्तक ही ऐसे समय में प्रगतिशील साहित्य के परचम को उठाने का साहस करते हैं। अहिसा के नाम पर दौलत बटोरने वालों का भंडाफोड़ करने वाली नागार्जुन की अधोलिखित पंक्तियाँ कितनी समीचीन है-

यह अहिंसा है
इमर्जेन्सी में भी
मौसम्बी के तीन गिलास जूस मिलते हैं
नित्य नियमित ठीक वक्त पर
दुपहर की धूप में वह छाँह तले पहुँचा दी जाएगी
बारिश में तम्बू तान जाएंगे मिलिटरी वाले
हिंसा की छत्र छाया में
सुरक्षित है अहिंसा

× × × × ×

'आपातकालीन संकट' को

इस बुढ़िया की आशीष प्राप्त है

अहिंसा दुर्बल का नहीं सबल का अलंकार है। दिनकर का कथ 'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।' इस संदर्भ में एक कटु सत्य और नीति निर्देशक वाक्य है। परन्तु चारों ओर जब उत्पीड़न, अनाचार और हिंसा का ही माहौल हो तो उससे मुक्ति का मार्ग सुझाने की जिम्मेदारी तो किसी न किसी साहसी जनकवि को झेलनी ही पड़ेगी। इस जिम्मेदारी को संभालनेके लिए नागार्जुन ने अपना कंधा आगे बढ़ाया है। आततायी की ईंटकाजवाब पत्थर से देकर ही समाज को प्रगतिवादी दिशा में उन्मुख किया जा सकता है। क्रांति का आगमन कायरों द्वारा अहिंसा प्रशस्ति और स्तुति निवेदन से नहीं हो सकता। समाज को प्रगतिशील बनाना है तो क्रांति अनिवार्य है और सर्वमान्य तथ्य हैं कि क्रांति रक्त माँगती है। हिंसा का मुंहतोड़ जवाब जनशक्ति की प्रतिहिंसा द्वारा ही देना होगा। अहिंसा का मन्त्रजाप करने से पाश्विकता और भी क्रूर रूप धारण कर सकती है। किसान मजदूरों का बर्बरतापूर्वक शोषण करने वालों के कुचक्र को तोड़ना केवल प्रतिहिंसा द्वारा ही संभव है। शायद इसी को कूटनीति में 'शक्ति संतुलन' अथवा नियन्त्रण और संतुलन' की नीति कहा जाता है। साहित्यकार के लिए आवश्यक है कि वह ऐसा साहित्यिक रसायन जनता को पिलाए जिससे उसमें अन्याय का प्रतिकार करने और प्रतिशोध लेने की उमंग पैदा हो। साहित्य की रसायनशाला में यह काम करते हुए, देखिए नागार्जुन की इन पंक्तियों में -

नफरत की अपनी भट्टी में
तुम्हें गलाने की कोशिश ही
मेरे अन्दर बार बार ताकत भारती है

× × × ×

सभी रसों को गला गला कर
अभिनव द्रव तैयार करूंगा
महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन

अष्ट धातुओं के चूरे की छाई में मैं फूंक भरूंगा
देखोगे, सौ बार मरूंगा
देखोगे, सौ बार जियूंगा
हिंसा मुझसे थर्राएगी
मैं तो उसका खून पियूंगा
प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का
जन जन में जो ऊर्जा भर दें, उद्‌गाता हूँ उस रवि का।
(प्रति हिंसा ही स्थायी भाव है, (1979)

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर किसी भी मनुष्य की मुर्दा नसों में भी जोश का ज्वार हिलोरे लेने लगेगा। साहित्य में जो भाव गिनाए गए हैं उनमें 'प्रतिहिंसा' की ओर किसी भी साहित्यशास्त्र के व्याख्याता का ध्यान नहीं गया सामाजिक-सॉस्कृतिक आन्दोलन में जान फूँकने वाले प्रगतिशील साहित्य को 'प्रतिहिंसा' को स्थायी भाव की मान्यता देनी ही पड़ेगी क्योंकि यह मानव स्वभाव का शाश्वत गुण है।

5.6 सौन्दर्य - शाश्वत मूल्य - साहित्य के लिए प्रेरणा का उद्‌गम

संस्कृति के विधायी तत्वों में सौंदर्य का स्थान बहुत ही महत्व का है। सौंदर्योन्मुख होना मानव स्वभाव है। एक प्रगतिशील साहित्यकार के लिए सौंदर्य वर्जना नहीं है अपितु वह मानव मात्र के लिए सुन्दर-सुखद संसार के निर्माण का समर्थक है। सामाजिक रूचि तथा चेतना के परिष्कार से ही सामाजिक प्रगतिशीलता का जन्म होता है। प्रगतिशील साहित्यकार के सामने यह लक्ष्य हमेशा बना रहता है कि जन चेतना जाग्रत करके, जनरूचि में वाँछनीय मोड़ उत्पन्न करके सर्वहारा के जीवन को सुन्दर और सुखद अवश्य बनाया जाए प्रगतिशील साहित्य में परकीया सौंदर्य, नायिका भेद आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। उसे तो समाज के उपेक्षित वर्ग के पसीने और धूल से सने श्रमवीर का सौंदर्य अपनी ओर खीचता है। अब

तक पैरो की जूतीवत व्यवहार पानेवाली कर्मठ नारी उसे धर्मपत्नी नहीं जीवन संगिनी अथवा सहभागी साथी के रूप में आकर्षित करती है न कि माशूका का हुस्न। कविवर नागार्जुन ने अपने घुमक्कड़ जीवन में हिमगिरि के धवल शिखरों पर प्रकृति के मनोरम दिव्य रूप से साक्षात परिचय किया है तो खेतों में फैली हरियाली और प्रातः कालीन ग्राम - श्री का भी नजदीक से अवलोकन किया है। मूक-बधिर बालकों से लेकर गंगा की धारा में गोता मारते केवट-पुत्र , कलकत्ता की ट्राम में खुरदरे पाँवों की सुन्दरता के साथ साथ नव यौवन सम्पन्ना खिड़की से झांकती नारी की झलक भी देखी है और अनुभव किया है, हाड़तोड़ परिश्रम करती एक भारतीय गृहिणी के अप्रतिम सौंदर्य का भी।

5.6.1 प्रकृति सौंदर्य

हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर प्रकृति के जिस अपरूप सौंदर्य का दर्शन कवि ने किया, उसका उतना ही हृदयग्राही वर्णन भी उन्होंने किया है। आकाश में घिरते मेघ, चकवा-चकवी का क्रंदन, विसतन्तु खोजते हंस, कस्तूरी हिरण तथा वहाँ के आदिवासियों के मस्ती भरे जीवन का चित्रण, अनुपम ही बन पड़ा है जो कि निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है -

मैने तो भीषण जाड़ों में
नभ चुम्बी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है

× × × × ×

शत-शत निर्झर-निर्झरिणी-कल
मुखरित देवदारू कानन में,
शोणित धवल भोजपत्रों से

छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुन्तल को साजे
इन्द्रनील की माला डाले
शंख सरीखे सुघड़ गलों में
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लालकमल वेणी में
रज रचित मणि खचित कलामय
पानपात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चन्दन की त्रिपटी पर
नरम निदाघ बाल कस्तूरी
मृगछालों पर पल्थी मारें
मदिरारूण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अंगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है।

(बादल को घिरते देखा है , 1968)

मानव मन प्रकृति के रमणीय रूप का आस्वादन करने के उपरान्त अन्ततः यथार्थ के धरातल पर उतरे बिना तो रह ही नहीं सकता। इसके पीछे मूल कारण है उसकी सामाजिकता। जिस परिवेश में वह रहता है उसी का सूक्ष्म पर्यवेक्षण वह सुगमता तथा कुशलता से कर भी सकेगा। कविवर नागार्जुन के तो जीवन की एक-एक साँस तक समाज में प्रगतिशील

चेतना जागृत करने के लिए ही समर्पित है। अतएव आश्चर्य नहीं कि उन्होंने नारी सौंदर्य, शिशु सौंदर्य के साथ साथ श्रम-सीकर सिक्त मजदूर के धूल से अटे और धूप से काले सुन्न पड़े हुए किन्तु सुगठित शरीर में , उसकी अप्रतिम देह-यष्टि में, यूनानी पौरूष का सौंदर्य देखा है। जी भर कर उन्हेांने उसे सराहा है, इस अपेक्षा के साथ कि भारतीय समाज श्रम का महत्व समझे। वास्तविक सौन्दर्य क्रीम पाउडर से पुते चेहरो में नहीं अपितु स्वस्थ सुगठित शरीर मे है। भारतीय नारी घर गृहस्थ का कार्य भार संभालते हुए, श्रमसाध्य जिन्दगी बिताती हुई भोली भाली ग्रामीण युवतियों का सिन्दूर तिलकित भाल किसका मन बरबर्से अपनी ओर नही खींच लेगा। उसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा तक से वंचित किशोर केवट -पुत्र हों अथवा साइकिल रिक्शा के ठूंठ पैडल मारते पावों वाले मजदूर,सभी के पौरूषेय सौन्दर्य का सफल निदर्शन नागार्जुन के काव्य में देखते ही बनता है। अबोध एंव निष्कलुष हृदय के धनी शिशु-समुदाय ने प्रत्येक देश और समुदाय में प्रत्येक देश और भाषा के साहित्यकार को हमेशा से अपनी ओर खींचा है। मानव देहयष्टि की इस सुघड़ता से प्रेरित नागार्जुन की कविता सरस और लोकरंजक बन गई है। शारीरिक सौन्दर्य से संबधित उनके विविधता समपन्न काव्य पर क्रमवार दृष्टि निक्षेप करना रूचि परिष्कार की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

5 6 2 शिशु सौन्दर्य

नदी के कछार में खेलते किशोर हों अथवा पहाड़ी वन प्रांतर और घाटियों में धमा चौकड़ी मचाती शिशु-मंडली हो - उनके निष्कपट भोले व्यवहार और सुकुमार सौंदर्य पर बाबा मुग्ध हो जाते हैं। बाल-स्वभाव के चतुरचितेरे की भूमिका अदा करते हुए ऐसे में नागार्जुन की लेखनी से बड़ी सशक्त ओर मर्मस्पर्शी कविता निस्सृत होती है। अबोध बच्चों के बीच बैठकर गम्भीर स्वभाव वाला व्यक्ति भी अपनी समस्त मानसिक चिन्ताओं, सन्ताप और तनाव से कुछ देर के ही लिए सही,पर मुक्त अवश्य हो जाता है। शिशु मंडली से घिरे हुए नागार्जुन कैसा महसूस करते हैं, दृष्टव्य है निम्नलिखित पंक्तियों में -

जब अबोध शिशुओं से घिरकर
मुदित चित्त बैठा होता हूँ
बिना हेतु ही वह हँस पड़ते
मैं कुछ मुस्का देता हूँ
जब सहस्रदल कमलों का-सा
खिला हुआ उनका मुख मंडल
तनिक ध्यान में भी लाता हूँ
तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ।

(तब मैं तुम्हें भूल जाता हूं-1941)

बच्चों का सरल एंव निश्छल हास्य क्रूर से क्रूर व्यक्ति के हृदय की कठोरता को पिघलाने की क्षमता रखता है। हारे - थके, निराश तथा उदास मनुष्य के लिए तो किसी बालक की मन्द मुस्कान संजीवनी का काम करती है। निसन्देह सरल हृदय बच्चे अपरिचित की ओर भी मुस्कराकर देखते ही उसके हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीराम की बाल छवि का वर्णन करते हुए कविवर तुलसीदास की पंक्तियाँ- 'बरदन्त की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।' तथा 'दमकै दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करें।' मानव-मन के कलुष को धोकर धवल करने में आज उतनी ही सफल है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी की मुस्कराती दन्त पंक्ति निर्मल-मना नागार्जुन को इस प्रकार सब कुछ भुलाकर अपनी ओर खींचती है -

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक मे भी डाल देगी जान
धूलि धूसर तुम्हारे ये गात .....
छोड़कर तालाब मेरी झोंपड़ी में खिल रहे जलजात

परस पाकर तुम्हारा ही प्राण
पिघलकर जल बन गया होगा कठिन पाषाण
छूगया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल
बाँस था कि बबूल?
तुम मुझे पाए नहीं पहचान
देखते ही रहोगे अनिमेष!
थक गए हो?
आँख लूं मैं फेर?
क्या हुआ यदि हो सके परिचित न पहली बार?

(यह दंतुरित मुस्कान, सन् 1943)

प्रगतिशील विचारों के धनी नागार्जुन बाल - सौंदर्य के अवलोकन और उसे अपनी कविता में निरूपित करते समय भी अपने सामाजिक दायित्व को आँखों से ओझल नहीं होने देते। सुविधा भोगी वर्ग की शहरी उद्यानों में क्रीड़ारत बालमंडली, उन्हें अधिक आकर्षित नहीं करती। आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग के, जिन्दा रहने के लिए जूझते काले कलूटे, अधनंगे, उपेक्षित बच्चों पर उनकी दृष्टि सम्मोहित होकर अटक जाती है। काम-काजी माँ-बाप के झोंपड़ पट्टियों में खेलते बालकों का अदम्य हर्षोल्लास कवि को अनायास ही अपनी किलकारियों से विमुग्ध कर देता है। गंगानदी के पुल के पास-उसके तट पर रेत में खेलते मल्लाहों के बच्चे तथा भूमिहीन मजदूरों तथा हरिजन बस्ती के नंग - धडंग धूम मचाते बच्चों के शारीरिक सौष्ठव को देखकर वह तन्मय से हो उठते हैं। इसके पीछे एक सशक्त कारण है। सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति के स्वप्नदृष्टा कवि की मान्यता है कि भावी श्रमिक पीढ़ी ही किसी दिन क्राति का बिगुल बजाएगी -

दंग रह गया मैं तो सुनकर वियतनाम का कीर्तन
दंग रह गए नयन, दिखे शिशु कर-चरणों के नर्तन

नयी लगी मुझको श्रमिकों की बस्ती वही पुरानी
दमक रहा था शिशु मुखड़ों पर तरूणाई का पानी
भूल गया जाने क्यों मुझको अपना दुसह बुढ़ापा
उनकी तुतलाहट से यह बासी स्वर अपना नापा
उन बच्चों की ग्रीवाओं में रग रग फूल रही थी
बाल दृगों में जाने कैसी आशा झूल रही थी
छोटी छोटी झण्डी थामें मुन्ने प्यारे प्यारे
अग्रज पीढ़ी की अनुकृति में लगा रहे थे नारे।।

(रहे गूँजते बड़ी देर तक, सन् 1971)

निश्चय ही आज का शिशु समाज ही किसी चिन्तनशील युगदृष्टा की आशाओं का केन्द्र है। सामाजिक परिवर्तन श्रमिक तथा अभावग्रस्त वर्तमान पीढ़ी के माध्यम से यदि नहीं आ पाया तो यह दायित्व इसी उपेक्षित वर्ग की आने वाली पीढ़ी को उठाना होगा। यही कारण है कि एक प्रगतिशील कवि की नजर जितनी अभावों में पलने वाली शिशु मंडली पर जमती है, उतनी चाँदी के चम्मच मुँह में लेकर पैदा होने वालों पर नहीं।

विकलांग बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और उनके सामाजिक सामंजस्य की बातें तो सरकार, शिक्षाविद् और बड़े बड़े समाज-सुधारक प्रायः करते हैं। इस प्रचार का ढ़ोल भी खूब पीटा जाता है किन्तु व्यावहारिक रूप में कुछ सार्थक होता हुआ ठोस प्रयास नही दिखाई पड़ता। यदि हममें से हर एक पढ़ा लिखा व्यक्ति किसी विकलांग बच्चे को अपना कुछ समय नियमित रूप से देकर कुछ सिखाने की कोशिश करे तो इन बच्चों के जीवन में किसी सीमा तक वाँछनीय परिवर्तन लाया जा सकता है। आज यहाँ तो कल वहाँ की जीवनचर्या बिताते हुए भी नागार्जुन ने इस उपेक्षित शिशु समाज के जीवन की कठिनाइयों का काफी निकटता से अवलोकन और अध्ययन किया है। स्वयं व्यक्तिगत स्तर पर कवि ने 'जया' नामक विकलांग बालिका के साथ

जीवन के अविस्मरणीय दिन बिताये। शारीरिक विवशता के बावजूद उसकी कुशाग्र बुद्धि तथा कुछ सीखने और करने की अदम्य ललक देख्कर कवि को आश्चर्यमिश्रित हर्ष की अनुभूति होती है। जया के शारीरिक सौंदर्य में उसकी अपनी विकलांगता और मॉ-बाप की मजबूरियॉ देखकर कवि को लगता है जैसे उस बालिका के जीवन को बचपन से ही घुन लग गया हो।

छोटे छोटे मोती जैसे दाँतों की किरणें विखेरकर
नीलकमल की कलियों-जैसी ऑखों में भर
अनुनय सादर
पहले; पीछे शासक-सी तर्जनी उठाकर
इंगित करती : नहीं तुम्हें मैं जाने दूंगी
चार साल की चपल चतुर वह बहरी-गूंगी
कितनी सुन्दर, नयना भिराम
उस लड़की का है जया नाम

× × × × ×

वह बोल नहीं सकती
लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है
काफी है सूझ समझ उसमें सुख है, दुख है, अभिलाषा है
मॉ-बाप गरीब न कर सकते कछ प्रतीकार बहरापन का
सोचा होगा, पकड़ा देंगे कोई पथ जीवनयापन का
बन सकती है वह चित्रकार
ले सकती है वह नाच सीख
जिससे न किसी पर पड़े भार
जिससे न मॉगनी पड़े भीख
लेकिन यह तो बस सपना है
चलता भी कुछ बस अपना है। (जया सन् 1941)

वास्तव में यही एक साहित्यकार की प्रगतिशीलता है। नागार्जुन केवल मात्र कुरेद कर समाज की सड़न और गंदगी को उजागर नहीं करते अपितु समाज, सरकार और अभिभावक के समक्ष उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। सड़क के किनारे भीख माँगते बच्चों को देखकर या तो लोग अनदेखा कर देते हैं या फिर दया का भाव दिखाकर अपना रास्ता पकड़ते हैं। बहुत हुए तो दार्शनिक अंदाज में कविता या लेख लिख मारेंगे। समस्या से जूझने में अपना व्यक्तिगत योगदान और उसका समाधान इंगित करना जबकि कहीं अधिक सार्थक है।

5.6.3 **नारी सौंदर्य**

भारतीय संस्कृति में नारी को सहधर्मिणी एवम् जीवनसंगिनी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। वह घर से लेकर यज्ञ की वेदी और खेत-खलिहान रूपी कर्म क्षेत्र तक पुरूष के कंधे से कधा मिलाकर गृहस्थी की गाड़ी को सुचारू रूप से चलाने में अपनी भूमिका अदा करती है। रीतिकाल में संकीर्ण मनोवृति के कारण अवश्य उसकी इस महत्वपूर्ण भूमिका और गरिमा को ग्रहण लग गया था। नवजागरण काल से ही स्त्री को उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अनवरत प्रयत्न होते रहे हैं। सामाजिक क्रान्ति के पुरोधा प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविता में महिला को महीयसी के रूप में चित्रित किया है।

सौंदर्य प्रसाधनों से पुते कृत्रिम सौंदर्य को अनदेखा करते हुए, श्रम-सीकर युक्त नारी के सौंदर्य को नागार्जुन ने अपनी कविता में नारी सौंदर्य की पहचान के रूप में निर्धारित किया है। अभावों से जूझती ग्रामीण मजदूर स्त्री की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त होंगी -

सभी दुखी है
दो प्रतिशत भी नहीं सुखी हैं
कैसे लिखूं शान्ति पर कविता?
पूस मास की धूप सुहावन

स्तनपायी नीरोग गौर छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भभार से अलस शिथिल हैं अंग अंग
मुंह पर उसके मट मैली आभा
(जयति जयति जय सर्व मंगला)

पुरूष के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में स्त्री की भूमिका सदा ही महत्वपूर्ण रही है। तत्कालीन सामाजिक एवम् राजनीतिक विवशताओं के कारण, कवि को घर छोड़कर श्रीलंका जाना पड़ा। फिर भी कवि को अपनी जीवनसंगिनी की याद बराबर बनी रही। समय समय पर उससे मिलने के लिए एक हूक सी उनके हृदय में उठती थी। सिन्दूर के तिलक से सुशोभित अपनी अर्द्धांगी का शारीरिक सौष्ठव कवि के लिए कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा ही देता है। वह अपनी नव यौवना पत्नी की देहयष्टि की ओर रीतिकालीन कवि की तरह वासनामय दृष्टि से नहीं अपितु पुनीत प्रीति से प्रेरित होकर ही उन्मुख होते हैं। दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति का सफल प्रयास निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल !
कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए न समाज?
कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज
चाहिए किसको नहीं सहयोग ?
चाहिए किसको नहीं सहवास ?
कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराय यह उच्छवास ?

हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण

× × × × ×

सुनोगी तुम तो उठेगी हूक
मैं रहूंगा सामने (तसवीर में) पर मूक
सान्ध्य नभ में पश्चिममांत - समान
लालिमा का जब करूण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल

(सिन्दूर तिलकित भाल, सन् 1943)

दाम्पत्य प्रेम से गुंफित नारी सौंदर्य को नागार्जुन ने प्रशंसा की दृष्टि प्रदान करके पुरूष मनोविज्ञान को बदलने का सफल प्रयत्न किया है। यह पुरूष की कमजोरी ही तो है कि वह परकीया सौदर्य वर्णन बढा चढाकर करता है परन्तु जिस प्रेमिका के सौंदर्य का बखान करते वह कभी नहीं थकता उसीसे विवाह सूत्र में बंधने के बाद उस नारी के सौंदर्य में फिर उसे कोई आकर्षण नहीं लगता । नारी सौंदर्य के चित्रण के संदर्भ में यही वह मील का पत्थर है जो नागार्जुन को रीतिकालीन और छायावादी कवियों की तुलना में एक उच्चस्तरीय प्रगतिशील संस्कृति की समृद्धि ही नहीं बल्कि प्रगतिशील सांस्कृतिक आन्दोलन के पुरोधा कीगरिमा प्रदान करता है। बात बात पर पति से डॉट फटकार और झिड़कियाँ खाते खाते भारतीय गृहिणी शीघ्र ही मनोवैज्ञानिक रूप से कुंठा और हीनभाव ग्रस्त हो जाती है। अपने शारीरिक सौष्ठव और उसके रख रखाव के प्रति भी वह लापरवाही बरतने लगती है। परिणाम स्वरूप विवाह के चार-पाँच वर्ष बाद ही वह असमय में ही अनाकर्षक और थकी हुई महसूस करने लगती है। पति के मुंह से अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर युवा स्त्री तो क्या प्रौढ़ा तथा वृद्धा भी स्वयंको गौरवान्वित और महत्वपूर्ण समझने लगती है। इस तरह कुंठा और मिथ्या हीनभाव से मुक्त होकर नारी जीवन में ही नहीं गृहस्थ में भी आनन्द की अनुभूति होने लगती है। नागार्जुन ने

आजकल के टूटते घरों को जोड़े रखने की एक जीवन्त कुंजी, इस रूप में समाज को प्रदान की है। दावे के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य तो क्या, विश्व साहित्य में भी बहुत कम कवियों ने ही इस दिशा में इतनी सफल और समर्थ चेष्टा की है।

सुविधा भोगी वर्ग की भद्र महिलाएँ कृत्रिम सौंदर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल करके अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने में सचेष्ट रहती हैं। इस वर्ग की महिलाओं का शारीरिक सौंदर्य और उसे सुरक्षित रखने के उनके प्रयत्न उपहासास्पद लगते हैं। उनका मन कड़ुवाहट और वितृष्णा से क्षुब्ध हो उठता है और उन पर व्यंग्य कसने को तैयार हो जाते हैं। तीन युवतियाँ मतदान केन्द्र पर स्याही लगने से अंगुली खराब होने के भय से वोट डाले बिना ही घर वापस लौट पड़ती है। व्यंग्य भरी निम्नलिखित पंक्तियों में, उन आधुनिकाओं के प्रति नागार्जुन का घुमड़ता हुआ आक्रोश स्पष्ट परिलक्षित होता है।

बाहर निकली वासक सज्जा युवतियाँ
चमक उठी गुलाबी धूप में तन की चम्पई कान्ति
तिकोने नाखूनों वाली उंगलियाँ
सुर्ख नेल पालिश
कीमती रिस्टवाच
अंगूठियों के नग
किंचित कपचे हुए सघन नील-कुन्तल

× × × × ×

आ रहा था डाल कर वोट एक अधेड़
उँगली की जड़ में चमक रहा था काला ताजा निशान

× × × × ×

क्षणभर ठिठक कर
नई दिल्ली की तीनों परियाँ

मुड़ गई सहसा वापस
जयति नखरंजनी!
जयति हृग अंजनी!
भक्त भ्रम भंजनी!
नवयुग निरंजनी!

(जयति नख रंजनी, सन् 1957)

सामाजिक एवम् नैतिक मूल्यों की मर्यादा के साथ साथ लोक कल्याण को बाबा ने कहीं भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। उनकी प्रसिद्ध कविताएँ 'यह तुम थीं' मैथिली रचनाएँ लखिमा, एक फांक आँखि, एक फाँक नाक जूनि अबउ' भरि राति मेल ट्रेन आदि जन-मन-रंजन के साथ समाज के सामने सौंदर्य वर्णन का मानदंड प्रस्तुत करने में सक्षम है। नारी-सौंदर्य और सान्निध्य पुरूष के लिए अभिशाप नहीं, वरन् उसके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का समर्थ साधन है। निराशा और उदासी से घिरे निष्क्रिय, अकर्मण्य के रूधिर संचार में वह किस प्रकार ताजगी और स्फूर्ति घोलता है, यह जानने के लिए देखिए यह पंक्तियाँ -

झुकी पीठ को मिला, किसी हथेली का स्पर्श
तन गई रीढ़
कौंधी कहीं चितवन
रंग गए कहीं किसी के होंठ
निगाहों के जरिए जादू घुसा अन्दर
तन गई रीढ़
गूंजी कहीं खिलखिलाहट
टूक टूक होकर छितराया सन्नाटा
भर गए कर्ण कुहर, तन गई रीढ़

आगे से आया
अलकों के तैलाक्त परिमल का झोंका
रग रग में दौड गई बिजली
तन गई रीढ़

(तन गई रीढ़ सन् 1957)

5.7 कर्म का महत्व

समाजिक प्रगति के रथ का निरंतर आगे ही आगे बढ़ते रहना 'कर्म' रूपी पहियों के गतिशील बने रहने पर ही निर्भर है। वैसे 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' और 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' आदि को न केवल भारतीय समाज में बार बार दुहराया ही जाता है अपितु उपदेश के रूप में इनका उद्धरण देते हुए भी बहुधा देखा जाता है। फिर भी व्यावहारिक जीवन में 'कर्म' का आचरण करने वाले श्रम जीवी का निरादर ही होता देखा है। बाबा ने इस सामाजिक कमजोरी को पकड़ा और अपनी कविताओं में कर्मठ जीवन यापन करने वाले मजदूर के साहस औरकर्म साधना के महत्व का बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया है। कर्मठ व्यक्ति ही पृथ्वी को सुन्दर बनाकर, स्वप्निल संसार को साकार कर सकता है। साथ ही इस पृथ्वी को यदि वास्तव में रमणीय तथा कल्पनातीत बनाना है तो इसके लिए सभी को एक जुट होकर श्रमसाधना करनी होगी। ऐसा नहीं हो सकता कि मुठ्ठी भर लोग तो रात-दिन खून पसीना एक करते रहें और बाकी लोग उसका आनन्द लेने की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। नई सृष्टि की रचना करनी हैं तो प्रत्येक नागरिक को अपना दाय देना ही होगा।

नई नई सृष्टि रचने को तत्पर
कोटि-कोटि कर-चरण
देते रहे अहरह स्निग्ध इंगित
और मैं अलस अकर्मा
पड़ा रहूं चुपचाप
यह कैसे होगा?
यह क्यों कर होगा? (यह कैसे होगा, सन् 1956)

कठोर परिश्रम करते हुए जीवन-साधना में रत मजदूर वर्ग नागार्जुन के लिए दया और सहानुभूति का नहीं बल्कि प्रशंसा का पात्र हैं। मौसम की मार झेलते हुए, नंगे पॉव हैं कठोर कर्म साधना में जीते मजदूर बरबस उनका ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। साइकिल रिक्शा खींचता मजदूर नागार्जुन की दृष्टि में साक्षात वामन भगवान का अवतार है। वामन ने तीन पग में पृथ्वी नाप ली थी। रिक्शा चालक अपने पाँवों से रिक्शा के तीन पहिए नहीं बल्कि मानों तीनों लोकों को गतिमान बनाए हुए हैं। उनका मानना है कि निरपेक्ष कर्मरत इन मजदूरों के बल पर ही यह संसार चक्र घूम रहा है। उसके फटी बिवाइयों वाले कठोर पैर संसार को चुनौती दे रहे हैं -

धंस गए
कुसुम - कोमल मन में
गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश कठोर पैर
दे रहे थे गति
रबड़ विहीन ठूंठ पैडलों को
चला रहे थे
एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन चक्र
कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
नाप रहे थे धरती का अनहद फासला
घण्टों के हिसाब से ढोये जा रहे थे।

(खुरदरे पैर, सन् 1957)

सार्वजनिक परिवहन - बस, ट्रेन या ट्राम में शाम के समय मजदूरी कर के लौटते श्रमिकों की भीड़ अक्सर देखी जा सकती है। दूसरी ओर बाबू वर्ग के सफेद पोश लोग भी अपने आफिस से इन्हीं बसों आदि में यात्रा करते हैं। यह बाबू वर्ग पसीने से लथपथ मजदूरों से दूरी बनाए रखना पसन्द करता है क्योंकि इन मजदूरों के शरीर पसीने से बुरी तरह लथपथ हैं।

भीड़ होने के कारण कई बार एक दूसरे से सटकर यात्रा करने को बाध्य होना पड़ता है। सफेदपोश वर्ग के लोग इन मजदूरों के कहकहे, ठहाके, पसीने की बदबू और उनकी सुरती फाँकने की हरकतों को देखकर मन ही मन कुढ़ते हैं। ऐसे में नागार्जुन उनके मनोगत भावों को उनके चेहरे पर से पढ़कर पूछ बैठते हैं -

कुली मजदूर हैं
बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला
धूल-धुँआ-भाप से पड़ता है साबका
थके माँदे जहाँ-तहाँ हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते है धरती की धड़कन
आकर ट्राम के अन्दर पिछले डब्बे में
बैठ गए हैं इधर-उधर तुमसे सटकर
आपस की उनकी बत कही
सच-सच बतलाओं,
नागवार तो नहीं लगती है?
जी तो नहीं कुढ़ता है?
घिन तो नहीं आती है?

(घिन तो नहीं आती है? , सन् 1960)

इसी प्रकार बुद्धि जीवी एवं सुविधा सम्पन्न वर्ग की खिल्ली उड़ाकर शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर के अस्तित्व को भी कवि ने लोक जीवन में श्रेष्ठता और सम्मान का आसन प्रदान किया है। लोहा पीटने वाले भट्टी के सामने तपते, सूरज की तपती धूप में अपनी धरती गोड़ते किसान का चित्रण भी बड़ा ही आकर्षक बन पड़ा है। कवि दृष्टि में कर्म साधना ही सच्ची तपस्या है -

वे लोहा पीट रहे हैं
तु मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन?
उनींदी घड़ियों में चुरती है।

(वे और तुम, सन् 1961)

अकर्मण्य व्यक्ति समाज के लिए जोंक होता है। दूसरों की कर्मरूपी तपस्या का मजाक उड़ाने वाले, कर्मरत मजदूर और किसानों से घृणा करने वाले कवि की दृष्टि में अक्षम्य हे। कर्म करने से जो पसीने की बूंदे धरती पर गिरती हैं उसी स्वेद-स्नेह से सिक्त होने के कारण धरती अन्न के दाने रूपी मोती प्रदान करती है। पसीने की कमाई का नीतिशास्त्र की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इसी पसीने की तारीफ में नागार्जुन अपनी मातृभाषा मैथिली में इस प्रकार मुखरित होते हैं -

क्षार-अम्ल
विगलन कारी, दाहक
रेचक उर्वरक
रिक्शा वालक पीठ दिशु का फाटल तार-तार बनियाइन
पसेनाक अधिकांश गुणधर्म के
कए रहल अछि प्रमाणित
मोन होए हमरा ।

(पसेनाक गुण धर्म, सन् 1966)

प्रगतिशील सामाजिक व्यक्ति के लिए तो कर्म ही सर्वश्रेष्ठ तपस्या है। "स्वे

स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नराः' (अपने जीवन के कर्म करते हुए ही मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है) कथन की नागार्जुन ने अपनी एकाधिक कविताओं द्वारा पुष्टि की है।

5.8 साहित्य उचितानुचित - साहित्यकार का कर्तव्य

जीवन की वास्तविकता के स्थान पर कल्पनालोक की उड़ान भरने वाले साहित्यकार अपनी रचनाओं से समाज का भला कभी भी नहीं कर सकते। समाज को प्रगतिशील बनाने में अपना सक्रिय योगदान देने के लिए समाज की कुरूपता, शोषण और अन्याय का पर्दाफाश करना बहुत जरूरी है। देश के नवनिर्माण में अहोरात्र लगे खून-पसीना एक करते हुए मजदूर और किसान तथा साधारण जन से साहित्य को जोड़कर ही उसे सार्थक, जीवंत और लोक मंगलकारी बनाया जा सकता है। कवि की दृष्टि में ऐसा साहित्य, जो यथार्थ और जनसामान्य की समस्याओं को शब्दांकित नहीं करता, निरर्थक है। लोक जीवन से विमुख कविताओं के संकलन प्रकाशित होते देखकर कवि का मन विक्षोभ से भर उठता है। कविता की दुर्दशा होते देख वह सहसा फूट पड़ते है -

एक एक शब्द है दुधारू गाय
उसको दुरूपयोग करना न हाय
हाय रे दैव! हाय भगवान!
ध्वनि ही ध्वनि देते, देते मात्र लय-तान
भावों की दलदल में आकंठ मग्न काव्य कला
त्राहि त्राहि कर रही उद्धार करो उसका!

(माँजो और माँजो, सन् 1949)

दिग्भ्रान्त साहित्यकारों की समाज के प्रति उदासीनता कवि से बर्दाश्त नहीं होती। साहित्य के क्षेत्र में खेमे बाजी तो वह और भी खिन्न हो उठते है। साहित्य के क्षेत्र में फैली इस गुटबाजी और चाटुकारिता के कारण संस्कृति और कला की फजीहत हो रही है। इन हालात में कवि व्यंग्यात्मक शैली में फटकार लगाता है -

मात हुए सभी पन्थ
खुल गए गाथा ग्रंथ
तैयार हो कुछ और पुत्र दत्तक
पूरा हो तीसरा-चौथा सप्तक
खुदा करे पा जाओं चाकरी हजारों की
स्वप्नस्थ भस्मासुरें करते परिक्रमा अपने मजार की
कर लूं क्या मैं भी विधिवत आरती?
बाँझे गाय शायद सींग नहीं मारती!
खाती है कुलपति का दिया हुआ भूसा
उधर है न्यूयार्क इधर फारमूसा
बीच में लटक रहा फ्रीडम आफ कल्चर

(नीली झील और जलचर, सन् 1956)

नागार्जुन ने साहित्य में बढ़ती हुई उच्छृंखलता पर लगाम लगाने के उद्देश्य से केवल खंडन और फटकारने का ही काम नहीं किया है। उन्होंने एक सच्चे साहित्यकार के कर्तव्य को भी अपनी कविता में रेखांकित करने का सफल प्रयत्न किया है। एक नए साहित्यकार का मार्ग दर्शन करते हुए वह कहते है -

इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत,
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो
शीर्ण संस्कृति को अगर स प्राण करना चाहते हो।

(पक्षधर, जून 1950)

5.9 विश्व बंधुत्व की भावना

भारतीय संस्कृति का सबसे सबल पक्ष उसकी विश्व बंधुत्व की भावना है। क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ से उठकर मानव मात्र के कल्याण की कामना और उसके लिए समर्पित होकर प्रयत्नकरना हममें से प्रत्येक का कर्तव्य है। विश्व के किसी भी कोने में पूंजीपतियों के स्वार्थ की आग में जलेंते साधारण जन की उन्हें हमेशा याद बनी रहती है। कवि ऐसे सभी महापुरूषों का अभिनंदन करता है जिन्होंने मानव-मात्र के दुख संताप पर व्यथा व्यक्त की है और दुर्दशा से त्राण पाने हेतु दिशानिर्देश किया है। रूसी कवि गोर्की के प्रति वह इसी कारण श्रद्धावनत होते हैं।

समझौता नहीं करेगा नए युग का नया मानव
होगा वह निखिल विश्व का अधिस्वामी
और वह समग्रदर्शी पूर्ण पुरूष होगा... "

(भारतीय जन कवि का प्रणाम)

रंगभेद की नीति के कारण नीग्रो नागरिकों पर होने वाले अत्याचार देखकर कवि का मन क्षुब्ध हो उठता है। दलित और पीड़ित किसी भी देश या जाति का हो, नागार्जुन को उपेक्षित और संतप्त मानव मात्र की पीड़ा भीतर तक हिला देती है। उन्हें सामाजिक क्रांति से संस्कृति में क्रांति कारी परिवर्तन आने की पूरी पूरी आशा है।

पिछली रात सपने में देखा तुमने :
लिंकन का दिव्य प्रेत लिपटा पड़ा है
देवी लिबर्टी की प्रतिमा से
रेवरेण्ड मार्टिनलूथर किंग लेकिन
भारी भर कम पक्ष सा
जम गया जॉन्सन के कन्धों पर
आह वह कभी नहीं उतरेगा।

रहेगा सवार प्रेसीडेंट की गर्दन पर
दस हजार साल!
एक एक नीग्रो नौजवान होगा छापेमार!

(शिकागो होगा हनोई)

भारत ही नहीं किसी भी भू-भाग पर, वहाँ के नागरिकों पर पूंजीपतियों के दमन और अत्याचार को देखकर कवि क्रोध से बौखला उठता है। इराक और ईरान युद्ध पूंजीपतियों के दंभ का घिनौना खेल था। उसके बारे में कवि के विचार है -

रह जाएँगे सुर्ख महाप्रभुओं के रक्त विकराल नेत्र
दिखाई नहीं पड़ेगी हकीम लुकमान की पीढ़ियाँ
कागज पे रह जाएँगे धरे के धरे
यू0एन0ओ0 के फर्मानी सूत्र वाक्य!
उमरखैयाम कभी इतना नहीं रोया .....।

(बार बार हुए हैं लहूलुहान, सन् 1981)

सर्वविदित है कि संयुक्त राष्ट्र संघ किस प्रकार महाशक्तियों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गया है। विकासशील और अविकसित राष्ट्र इन महाशक्तियों की लिप्सा के शिकार हो रहे हैं पर संयुक्त राष्ट्रसंघ निरूपाय और असहाय मूकदर्शक बना रहता है। संसार से पूंजीवाद का सफाया होने पर ही पिछड़े हुए राष्ट्रों के जन सामान्य के जीवन में प्रगति होना संभव है। इसलिए वियतनाम हो या हनोई, दक्षिण अफ्रीका अथवा एशिया का कोई देश हो जहाँ भी सर्वहारा क्रांति होती है कवि का मन प्रसन्नता से भर उठता है। संसार के सभी साधनहीन सर्वहारा लोग भाई भाई है। उनकी व्यथा पर दुख और समृद्धि -सफलता पर सारे उपेक्षित वर्ग को प्रसन्नता होनी स्वाभाविक है।

उपनिवेशी दासता के पंक की तह छेद कर तुम

कमल जैसे खिल रहे हो!
मुक्ति कामी विश्व की जनशक्तियों से मिल रहे हो!
कर दिया है ब्रिटिश दानव को नगन
छेदी जगन! छेदी जगन
अफ्रिका में, मलाया में, अरब में, ईरान में
मिस्र बर्मा, हिन्द, पाकिस्तान में
श्राद्ध होने जा रहा है अब ब्रिटिश साम्राज्य का!

× × × × ×

अन्त तक देगे तुम्हारा साथ हम
नहीं यों ही न वाते है माथ हम।

(छेदी जगन, सन् 1954)

5.10 शिवम् संपूर्ण मानव जाति के उज्जवल भविष्य की चिंता एवं कामना

मानव मन मे प्रत्येक क्षण भिन्न भिन्न प्रकार के भावों का जवार उठता रहता है। व्यक्ति जितना भाव प्रवण होता है उतना ही संवेदनशील होगा। कवि हृदय तो अत्यधिक संवेदनशील होना स्वाभाविक है। समाजवादी - प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते नागार्जुन की कवितओं में भावुकता का आलोड़न बहुत ही अधिक दिखाई देता है। समाज के परम उपेक्षित वर्ग के देश-विदेश में रह रहे जन जन की पीड़ा को उन्होंने कविता में रूपायित किया है। साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दो पाटों के बीच निरीह जनता को पिसते देखकर बाबा का मन व्याकुल हो उठता है। उपेक्षा, अत्याचार, प्रताड़ना और निर्मम शोषण के शिकार प्रत्येक जाति-धर्म और देश के नर-नारी के लिए उनका मन ममता से व्यथित हो उठता है। वह समस्त मानव जाति की सामाजिक और आर्थिक प्रगति और कल्याण की कामना करते हैं। मेरठ के दंगों के कारण भुखमरी के कगार पर पहुंचे हुए रिक्शा चालक कलीमुद्दीन उर्फ प्रेम प्रकाश

हो या बरगद की फलियाँ चुनकर पेट भरता गरीब मजदूर का बेटा, ट्रिनीडाड दक्षिण अफ्रीका , वियतनाम और हनोई में साम्राज्यवादी शक्ति से जूझती निहत्थी जनता, सभी के लिए बाबा के मन में अथाह प्यार है। सब के दुख-दर्द की खोज खबर लेना अपना नैतिक फर्ज समझते है। सबके कल्याण की उन्हें चिन्ता बनी रहती है।

कल्लू रिक्शा वाला
यानी कलीमुद्दीन
मगर अब वो
परेम पर कास
कहलाना पसन्द करेगा
कलीमुद्दीन तो
भूख की भट्टी में
खाक हो गया था

× × × × ×

उस नाले के करीब
जहाँ कल्लू का कुनबा रहता है
में उसकी बूढ़ी दादी के पास
बीमार अब्बा जोन के पास
बैठकर चाय पी आऊगा कभी !

देहात में नदी जन जीवन में प्राणों का संचार करती है। उसमे जल न रहने पर पेड-पौधे-फसल तो सूख ही जाती है, उसके कछार की वनश्री भी लुप्त हो जाती है। पशुओं और मनुष्यों के लिए पीने का पानी तक दुर्लभ हो जाता है। बच्चों और पशुओं के क्रीड़ा-कल्लोल, प्रेमी युगल की मिलन स्थली सभी तो संकट में हैं। नागार्जुन नदी की मनुहार सी करते दिखाई पड़ते हैं। नदी फिर बहने लगती है। सबके जीवन में खुशी की बहारें लौटती देख

कवि हृदय प्रफुल्लित हो कर गा उठता है -

कभी नहीं सूखेगी अब यह नदी
बहती रहेगी सदैव यह चंचल सरिता
चंचल होगी तो होगी, जानमारू नहीं होगी!
बॉटती रहेगी छोटी-छोटी खुशियाँ
छोटी-छोटी लहरों के जरिये!

विशाल हृदय एवम् उदार विचारों के धनी नागार्जुन को समूची मानव जाति से प्यार है, हाँ प्रगतिशील परम्परा के उन्नायक के नाते दीन, साधनहीन, विपन्न जनसाधारण से विशेष लगाव होना स्वाभाविक है। उनहें फूल बाबू के नन्हें बच्चों की चिन्ता है। मंहगाई की मार से प्रताड़ित फटे वस्त्रों वाली उस लजवन्ती की भी चिनता है जो शर्म के मारे घर से बाहर निकलने में असमर्थ है। बुढापे से थके क्रांति कारियों को देखकर उनके उत्तराधिकारियों से भी त्रस्त हैं। नई पीढ़ी के तरूण और शिशु के उज्जवल भविष्य के प्रति तो वह विशेष रूप से शुभेच्छा रखते हैं। 'हरिजन गाथा' कविता में, नए शिशु के जन्म पर सन्त गरीबे दास के मुख से नागार्जुन ही हरिजन शिशु के उज्जवल भविष्य के प्रति प्रफुल्लता के साथ साथ उसके उचित लालन पालन की चिन्ता से त्रस्त होकर योजना समझाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

खान खोदने वाले सौ सौ, मजदूरों के बीच पलेगा।
युग की आँचों में फौलादी, साँचे-सा यह वहीं ढलेगा।।
इसे भेज दो झरिया फरिया, माँ भी शिशु के साथ रहेगी।
बतला देना अपना असली नाम पता कुछ भी न कहगी।।
जन बल, धन-बल सभी जुटेगा, हथियारों की कमी न होगी।
लेकिन अपने लेखे इसको हर्ष न होगा गमी न होगी।।
सब के दुख में दुखी रहेगा, सबके सुख में सुख मानेगा।
समझ बूझकर ही समता का असली मुद्दा पहचानेगा।।

इस प्रकार किसान, मजदूर, स्त्री-पुरूष, ग्रामीण-शहरी, भारतीय-विदेशी क्रातिकारी सभी की मंगल कामना करते हुए नागार्जुन 'शिवमस्तु सर्वजगतः' अर्थात पूरे संसार एवं मानव जाति के उज्जवल भविष्य के प्रति आशावान है।

नागार्जुन की कविता का कैनवस इतना विशाल होते हुए भी, उन्होंने भारतीय संस्कृति के रंग को प्रत्येक दृश्य-पटल में बखूबी वरीयता प्रदान की है। पुरातन संस्कृति को भी युगानुरूप साँचे में ढ़ालकर पेश करना नागार्जुन की कविता की बिशेष खूबी है। श्री कृष्ण के वर्गहीन समाजवाद की स्थापना, जैन धर्म का अपरिग्रह और अनेकान्तवाद तथा बौद्ध धर्म की करूणा की पुण्य सलिला का संगम नागार्जुन की प्रगतिशील कविता की बिशेषता है। उनके काव्य प्रणयन से भारतीय संस्कृति का प्रगतिशील पक्ष सबल और पुष्ट हुआ है, जो उसे विश्वजनीन रूप प्रदान करने मे सहायक सिद्ध होगा।

छठा अध्याय

नागार्जुन की कविता में राजनीतिक संदर्भ

नागार्जुन की कविता में सबसे अधिक उभर कर आने वाला संदर्भ समकालीन राजनीति है। प्राचीन धारणा के अनुसार शुद्ध साहित्य राजनीति से निरपेक्ष या उदासीन रहना चाहिए। साहित्य समकालीन समाज का यथा तथ्य निरूपण करता हैं, तो यथार्थवादी साहित्य कहलायेगा। प्राचीन से आधुनिक युग तक के साहित्य का विहंगावलोकन करने पर यह तथ्य भी उजागर होता है कि प्रत्येक प्रतिनिधि साहित्यिक रचना मे तत्कालीन राज्य व्यवस्था की कमोबेश छवि कहीं न कही अवश्य दिखाई पड़ती है। कारण ढूँढने के लिए किसी गहन शोध या चिन्तन की अवश्यकता नहीं है। साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। अपने रचना संसार के लिए उसे समाज में रोजमर्रा घट रही घटनाओं से रूबरू होना पड़ता है।

आजकल तो राजनीति समाज का एक अविभाज्य अंग बन गई है। 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात जैसा शासक वर्ग होगा वैसी ही जनता होगी। समाज और संस्कृति के उत्थान-पतन का इस प्रकार राजनीति से सीधा सानुपतिक संबंध स्थापित होता है। प्रत्येक राजनीतिक उथल पुथल सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने का माध्यम बनती है। अब तो यातायात और संचार के द्रुतगामी वैज्ञानिक माध्यमों के कारण संसार के किसी भी भाग में होने वाले राजनीतिक परिवर्तन से विश्व भर के विचारशील जनमानस पर मनोवैज्ञानिक दबाव पड़ता है। कह सकते हैं कि सामाजिक - सॉस्कृतिक आन्दोलन के सन्दर्भ में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रूस, चीन और जर्मनी की राजनीतिक गतिविधियों का वहाँ की जनता के दैनिक जीवन पर पड़ा हुआ प्रभाव अब इतिहास का विषय बन चुका है।

आजादी से पहले ही युगद्रष्टा महात्मा गांधी ने स्वतंत्र भारत में रामराज्य की स्थापना का स्वप्न देखा था। पौराणिक मिथकों, किंवदंतियों के आधार पर अशिक्षित अथवा

अर्द्धशिक्षित बहुसंख्य पिछड़ा भारतीय वर्ग गाँधी जी से इसीकारण इतना अभिभूत हो गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी कुछ वर्षो तक जनसामान्य देश के राजनीतिज्ञों से रामराज्य के स्वप्न को साकार करने की आशा लगाए रहा। नए संविधान में भी बिना जाति,धर्म, जन्म के भेदभाव के भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने की बात दुहराई गई थी। वर्षो तक इन्तजार करने के बादभी अभीप्सित की प्राप्तिन होने पर जनता में निराशा और तज्जन्य विक्षोभ का उभरना स्वाभाविक था। कहाँ तो लोगों ने सोचा था कि -

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहिं काहुहिं व्यापा।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुन्दर सब विरूज सरीरा।

जिस प्रकार के स्वराज की आम जनता को आशा थी वह तो उसे मिला ही नहीं अपितु अफसरशाही अंग्रेजी शासन से भी अधिक ताकतवर और बदतर हो गई। स्वाधीनता आन्दोलन के जननेताओं में त्याग, बलिदान और जनसेवा की भावना विलुप्त नहीं तो ठंडी जरूर पड़ गई। कुछ नेताओं ने तो स्वाधीनता आंदोलन में भोगी जेल यातना को स्वार्थ हेतु भुनाने की सफल कोशिश भी की। सत्ता के प्रति लोगों में मोह बढ़ा। कुर्सी पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने की कोशिश ने विभिन्न प्रकार से भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद और लालफीताशाही को बढ़ावा दिया। जनता का इन तथाकथित नेताओं के प्रति मोहभंग तो अवश्य हुआ, उसमें राजनेताओं के प्रति आक्रोश और असंतोष भी उभरा। सुनियोजित भ्रष्ट राजनीति के विरोध में ललकारने, उसे चुनौती देने की भावना जनमानस में घुमड़ने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षो में जनसामान्य अपने नेताओं के छिपे हुए चेहरे और उनकी स्वार्थलिप्सा देखकर विभ्रम विमूढ, किंकर्तव्य परन्तु दिग्भ्रान्त स्थिति में था।

असंतोष से विरोध और उससे खुल्लम खुल्ला जनविद्रोह या जनआंन्दोलन भी फूटा। अपने प्रिय नेताओं के पूर्वआचरण का अनुसरण करते हुए आरंभ में यह आन्दोलन सत्याग्रह, नारेबाजी और जनसभाओं की शक्लों में दिखाई दिए। स्वदेशी सरकार ने आंन्दोलनकर्ताओं को समझाने-बुझाने की कोशिशें भी कीं। झूठे आश्वासन भी दिए गए जो बाद

में हर राजनीतिज्ञ की पहचान बन गए। अब जनता के सब्र का बांध टूटने लगा। जन-आन्दोलनों ने जोर पकड़ा तो उन्हें दबाने के लिए स्वदेशी सरकार ने साम्राज्यवादी विदेशी (ब्रिटिश सत्ता) के हथकंडे आजमाने शुरू किए। अफसरशाही और पुलिस तो इसी के इन्तजार में थी। अब एक भारतीय अपने ही देशवासी द्वारा ठगा जा रहा था। उसे उल्लू बनाकर उसका शोषण किया जा रहा था। सरकारी खर्चा बेकाबू हो गया था। टैक्स की मार पुलिस के डण्डे से भी ज्यादा दुखदायी और पीड़ाकारक सिद्ध हुई। इन्हीं हालातों के चलते प्रगतिशील साहित्यकारों की एक जमात जनता के दर्द को आवाज प्रदान करने की कोशिश में आगे आई। जनता की दुर्दशा का चित्रण ही उनकी लेखनी का विषय बना। अंग्रेजी शासन में प्रगतिवाद का नारा बुलंद करने वाले अधिकांश कवियों का जोश वैसे सन् 1950-52 तक काफी ठंडा पड़ चुका था। मुक्ति बोध, सुदामा पंडेय धूमिल, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन ने प्रगतिशील आन्दोलन की धीमी आंच को फिर से तेजी प्रदान की।

नागार्जुन मसिजीवी होते हुए भी अपनी घुमन्तू प्रवृति के कारण देश के प्रत्येक कोने में जनसाधारण में उत्पन्न निराशा और असंतोष के निकट सम्पर्क में आए। उन्होंने जनता की दुर्दशा के कारणों का विश्लेषण किया। जनजीवन में फैले असंतोष की जड़े शासकीय अव्यवस्था और जनता के प्रति सरकारी तंत्र की उदासीनता में मिलीं। उन्होंने बखूबी, साहस के साथ सरकारी भ्रष्टाचार, दुराचार और भ्रष्ट राजनीति को निशाना बनाकर अपनी कविताओं के व्यंग्यबाण छोड़े। उनकी कविताओं में निहित व्यंग्य भी ऐसा नहीं है कि उसे नजर अंदाज किया जा सके। नागार्जुन राजनीतिक व्यंग्य लिखने में ऐसे सिद्धहस्त हैं कि उसे पढ़कर पाठक तिलमिला जाता है। देश को दुरअवस्था में पहुंचाने के लिए जिम्मेदार राजनेता इन कविताओं को पढ़कर बौखलाते हैं और राजनीति के शिकार बने जनसाधारण में उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विरोध का स्वर मुखर हो उठता है। अपने शोषण से बेखबर सोती हुई जनता में यह कविताएँ क्रांति का बीज वपन करने की क्षमता से संपन्न है। प्रगतिशील कविता का ध्येय भी यही है कि रचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया में वह समाज के सामान्य नागरिक को सक्रिय भागीदार बनाने

में सहायता करे।

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि साहित्यकार के रूप में नागार्जुन का इस सबसे क्या लेना-देना है। पहली बात तो यह है कि साहित्य समकालीन समाज का चित्रण तो करता ही है, वह अभीप्सित सामाजिक परिवर्तन लाने का एक सशक्त साधन भी है। युद्ध के समय देश पर मंडराते संकट काल में वीर रस की कविताओं की रचनाएँ न केवल प्रासंगिक ही होती हैं अपितु वे देशवासियों में देश के लिए मर मिटने की भावना भी उद्‌भूत करने में सहायक सिद्ध होती हैं। उसी प्रकार नव स्वतंत्र देश के साधारण जन को उसके अधिकार और कर्तव्य का बोध कराकर नागार्जुन की कविता उसे सीधे जनतांत्रिक ढांचे से जोड़ने , जवाबदेह और प्रबुद्ध एवं परिपक्व नागरिक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान करती है। दूसरी बात यह है कि नागार्जुन स्वभाव से घुमक्कड़ और संवेदनशील व्यक्ति हैं। ऐसा आदमी जो देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दूर देहात में आजादी के बाद भी जब आम नागरिक को राजनीति के कुचक्र में पिसता हुआ देखता है तो कुछ कर गुजरने को उसका मन मचल उठता है। अमल धवल गिरि के शिखर वासियों से लेकर सागर के सीने पर लहरों को चीरते वरूण के बेटों तक फैले अपने निकट परिचित परिवारीजनों के अभाव और व्यथा से भावुक हृदय नागार्जुन कैसे अछूते रह सकते हैं। तीसरा कारण जो उन्हें इस प्रकार की कविताएँ लिखने के लिए बाध्य करता हैं, वह है, आजकल के परिप्रेक्ष्य में राजनीति का सामान्यीकरण। यह किसी से छिपा नहीं है कि वर्तमान काल में राजनीति समाज के साथ इस प्रकार संपृक्त हो गई है कि समाज की हर घटना राजनीति से प्रभावित होती है अथवा कभी कभी राजनीति भी सामाजिक घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती;विशेषतः भारत जैसे देश में जहाँ चुनावों तक तक में जाति पांति के आधार पर प्रत्याशी चुनाव मैंदान में उतारे जाते हैं। मंत्रिमंडल में जाति, धर्म, लिंग और क्षेत्रीय संतुलन बनाए रखने के लिए मंत्रियों की संख्या का निर्धारण किया जाता हैं। इस संतुलन के नाम पर खुल्लम खुल्ला जनतंत्र और संविधान की तरफ से आँखें मींच ली जाती हैं। प्रगतिवाद की दृष्टि से समष्टिगत विकास के लिए जाति, धर्म , सम्प्रदाय लिंग-भेद आदि सब

महत्वहीन मुद्दे हैं। नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य परक कविता का चौथा और सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि वह एक जनकवि के रूप में साहित्य जगत और जन-समाज में प्रतिष्ठित हैं।

जनकवि होने के नाते नागार्जुन की जो नैतिक जिम्मेदारी है वह उससे बेखबर कैसे रह सकते हैं। राजनीति के कारण समाज के पिछड़े और निम्नमध्यवर्गीय आम नागरिक की जो दुर्दशा हो रही है वह किसी से छिपी नहीं है। उसे सुधारने के नारे भी बहुत लगाए जाते हैं। इसके लिए योजनाएँ भी बहुत बनती है, जो कभी कागजों की फाइल से मुश्किल से ही निकल पाती हैं। ऐसी दशा में कई बार योजना कार्यान्वित होते होते सरकार या सत्ताधारी पार्टी ही बदल जाती है। सरकार के कान तक जन सामान्य की आहें और कराहें पहुंचाने का काम तो नागार्जुन इन कविताओं द्वारा करते ही है। एक सजग पत्रकार की तरह मानों वह सरकार के सामने देश और समाज की दशा का कच्चा चिठ्ठा पेश करते समय सरकारी नीतियों, उनके कार्यान्वयन और उनकी सफलता-असफलता का लेखा जोखा भी रखते जाते है। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन की साहित्यिक टिप्पणियाँ, उनका मर्मबेधी व्यंग्य; समकालीन प्रगतिशील साहित्य में उनकी पहचान है। राष्ट्रीय राजनीतिक पटल पर घटने वाली विविध घटनाओं का बारीकी और ईमानदारी से किया गया शब्दांकन उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है। राजनीति के क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार, भाई-भतीजाबाद, भारतीय विदेशनीति एवं अर्थतंत्र की खामियाँ, नेताओं द्वारा अपनाए जाने वाले चुनावी हथंकडे और वंशवाद को बढ़ावा देने की प्रवृति जैसे सभी पहलुओं पर नागार्जुन ने व्यंग्य कविताएँ लिखकर शासक और शासित वर्ग का ध्यानाकर्षण किया है।

6.1 भ्रष्टाचार

देश स्वतंत्रहोने के बाद जनता को आशा थी कि उसके सुख के दिन फिर से लौटेंगे। पीड़ित और शोषित वर्ग के लोगों के जीवन में बहार आएगी। विदेशी सत्ता से छुटकारा

मिलते ही देश से पक्षपात और भ्रष्टाचार का सफाया हो जाएगा। आम जनता की सुविधा के लिए राशन व्यवस्था लागू की गई। उद्देश्य तो अच्छा था कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से मंहगाई और कालाबाजार पर रोक लग जाएगी। जनता राहत की साँस लेगी। लेकिन जनता के लिए उससे साँसत और अधिक बढ़ गई। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों के लाइसेंस और परमिट ने भ्रष्टचार के एक युग का सूत्रपात किया। नेताओं ने रिश्वत ले लेकर अपने अपने क्षेत्र के दुकानदारों के नामों की विफारिश की। नौकरशाही ने नेताओं को चारा डालकर उनके चहेते लोगों को राशन की दुकान खोलने के परमिट दिये। फिर राशन का कोटा निश्चित करने में भी रिश्वत का आदान प्रदान हुआ। इतनी भाग दौड़ तथा न जाने कितनों की मुट्ठियाँ गरम करने के बाद जब राशनदुकान पर आया तो दुकानदार ने अपनी खर्च पूंजी से दुगुना मुनाफा कमाने की योजना बनाई। सस्ते भाव पर सरकारी गोदाम से लिया हुआ अनाज उसने काले बाजार में ऊंचे दाम पर बेचा। दुकान पर बाहर गल्ले के स्टॉक के सामने 'खाली' लिख दिया। इस राशन घोटाले पर नागार्जुन चुप न रह सके। दुकानदार द्वारा मुनाफा कमाने के इस नए भ्रष्ट तरीके पर उन्होंने व्यंग्य करते हुए कहा :

दो हजार मन गल्ला आया दस गाँवों के नाम
राधे चक्कर लगा काटने, सुबह हो गई शाम
सौदा पटा बड़ी मुश्किल से पिघले नेताराम
पूजा पाकर साध गए चुप्पी हाकिम-हुक्काम
भारत सेवक जी को था अपनी सेवा से काम
खुला चोर बाजार, बढ़ा चोकर चूनी का दाम
भीतर झुरा गई ठठरी, बाहरी झुलसी चाम
भूखी जनता की खातिर आजादी हुई हराम
नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल
बैलों वाले पोस्टर साटे, चमक उठी दीवाल

नीचे से लेकर उपर तक समझ गया सब हाल
सर कारी गल्ला चुपके से भेज रहा नेपाल।।

(नया तरीका, सन् 1953)

चोर बाजारी को जब राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हुआ तो जीने के लिए नितान्त आवश्यक वस्तुएँ बाजार से नदारद होना स्वाभाविक है। ऐसा नहीं है कि गेंहू, चावल, तेल, चीनी की पैदावार या आपूर्ति कम हो गई हो। भ्रष्टाचारी पूंजीपतियों ने शासक दल से साठ गांठ करके खुले बाजार से माल गायब कर दिया। इन पूंजीपतियों ने राजनीतिज्ञों को रिश्वत देकर और राजनीतिक दलों के चुनाव कोषों के लिए पैसा देकर अपने लिए सुरक्षा कवच खरीद लिया है। भ्रष्टाचारी शासन तंत्र जानते हुए अनजान बने रहने का ढोंग करता है। जनता में भुखमरी से त्राहि त्राहि मची है। पर तथाकथित जनसेवक नेताओं के कान पर जूं भी नहीं रेंगती। कृत्रिम अभाव की स्थिति उत्पन्न करके पूंजीपति वर्ग दोनों हाथों से धन बटोर रहा है। वस्तुओं के भाव आकाश छू रहेहैं। रूपए की क्रय शक्ति घटती जा रही है परन्तु राजनेताओं और पूंजीपतियों का पेट नही भरता। गरीब आदमी के घर में चून्हा जलने की शुभ घड़ी आने का नाम नहीं लेती। फिर भी अब जनता को दुर्दशा का कारण समझ आने लगा है।

कहाँ गए चावल-गेंहू, दलहन-तिलहन के दाने।
कागज का रूपया रोया सुनने पड़ते हैं ताने।
हर सीढ़ी छोटी पड़ती है, भाव चढ़े मन माने।
सब की कलई उतर गई है, सभी गए पहचाने।।

× × × × ×

कौन हटाए चूल्हे पर से अब मकड़ी का जाला।
भुक्कड़ देखें मकई के दानों की मोहन माला।
पके बाल की खाल निकालें करते हैं मुंह काला।
शासन करना क्या जाने ये कपटी क्रूर कुचाली।

गल्ला चोरों की पौ बारह जनता की पामाली।
किसे रिझाए नेताओं की सूरत रोगन वाली।
राजनीति बदनाम हुई है, बाकी है खाम खयाली।
शासन करना क्या जाने ये कपटी कूर कुचाली।।

चोरबाजारी तो भ्रष्टाचार के विकराल स्वरूप के विविध रूपों में से केवल एक हैं। भ्रष्टाचार का राजनीतिकरण होने के बाद समाज और शासन व्यवस्था को अनेक बीमारियों से जूझना पड़ता है। ऐसा ही एक अन्य रोग है भाई-भतीजावाद। शासन तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए सुयोग्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। योग्यता के अभाव में निकम्मे और बदनीयत कर्मचारी अच्छी से अच्छी योजना को चौपट कर देते हैं। देश की प्रगति की गति धीमी पड़ जाती है। भाई भतीजाबाद के कारण सिफारिश और रिश्वत के जोर पर अयोग्य तथा निष्ठाहीन लोगों को नौकरियाँ मिलती हैं किन्तु योग्य एवं कर्मठ युवक बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि करने को विवश रह जाते हैं। इससे देश पर दोहरी मार पड़ती है। सरकारी योजनाएँ ठीक ढंग से न तो सही समय पर लागू हो पाती हैं और न सही अवधि में पूरी हो पाती है। इसका दूरगामी परिणाम यह होता है कि जनता को उसके लिए सरकार द्वारा उठाए गए कल्याणकारी कदम से जो राहत मिलनी चाहिए थी या तो वह मिलती ही नहीं अगर मिली भी तो अत्यधिक विलम्ब से। हाल वही होता है - "का वर्षा जब कृषि सुखाने , समय चूकि पुनिका पछितौने" दूसरी ओर योजनाएँ पूरी होने में लगी अधिक अवधि के कारण उस पर होने वाले व्ययभार में भी वृद्धि हो जाती है। इसका दबाव राजकोष पर तो पड़ता ही है परन्तु अंततः कर वृद्धि के उपाय से सरकार इस घाटे को जब पूरा करने की कोशिश करेगी तो करभार से कमर तो आम जनता की टूटेगी। खुशहाली के स्थान पर इससे पामाली की वृद्धि होगी।

भारतीय अर्थ व्यवस्था कृषि पर मुख्यतः निर्भर करती है। यहाँ की बहुसंख्य जनता अपनी जीविका के लिए कृषि पर आश्रित हे। दुख की बात यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी कृषकों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कोई ठोस और कारगर कदम नहीं उठाए

गए। ग्रामीण जीवन आज भी अभाव और अशिक्षा से जूझता कुरीतियों एवं अज्ञान के कुचक्र में ही उलझा है। शहरों पर जनसंख्या का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। गावों में न तो अभी तक ज्ञान-विज्ञान का भली भांति प्रवेश हो पाया है और नही ग्रामीण जीवन में आधुनिक सुख-सुविधा एवं चिकित्सा के साधन ही सुलभ हो पाए हैं। रोजगार और उच्च शिक्षा के तो गाँवों में अवसर उपलब्ध ही नहीं है। सभी बडे बड़े उद्योग एवं उच्च कोटि के शिक्षण संस्थान शहरों में ही स्थित हैं। मानसून कब दगा दे जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि और तूफान तथा बाढ़ के प्रकोप से आए दिन देहाती जनता त्रस्त रहती है। प्राकृतिक प्रकोप से जब गांवों में त्राहि-त्राहि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो सूखा और बाढ़ राहत कोषों की घोषणाएँ की जाती है। भारतीय जनता से दिल खोल कर इन कोषों में धन देने की पुरजोर अपील होती हैं। प्रधान मंत्री, मुख्य मंत्री कोष तथा विदेशी अनुदान घोषित होते हैं। ऐसे में सरकारी अफसरों, छुटभैये स्थानीय नेताओं और राहत कार्य में जुटे सरकारी कर्मचारियों की फौज की मौज हो जाती है। ऐसी दयनीय स्थिति में भी यह लोग भ्रष्टाचार से बाज नहीं आते।

अन्दर बाहर धींगा मुश्ती
परमारथ में भारी सुस्ती
स्वारथ में तो बेहद चुस्ती
एक दूसरे की जड़ काटें
मन में खोट बदन भर चाटें
सेठों से ही दिल्ली मेल है
सूखा राहत सुपरफास्ट है
अब कुर्सी का लास्ट चांस है
फौरन फौरन जल्दी जल्दी
जमा करो तुम धनिया हल्दी

जीरा मेथी मिर्च मसाला
सारा कुछ लॉकर में डाला।।

(नर्सरी राइम, सन् 1988)

सूखा-बाढ़ राहत कोष में घोटाला होने के बाद, बाँध बनाने, नहरें और नाले खुदवाने की योजनाएँ बनती हैं। जिन किसानों की जमीन से नहर, नाला, सड़क निकलते हैं उन्हें मुआवजा देने की दर तय होती है। पेमेण्ट के बिल बनते और पास होते हैं परन्तु पूरी रकम प्रभावित आदमी तक नहीं पहुंच पाती क्योंकि एक निश्चित प्रतिशत रिश्वत लेकर बिल बनवाने वाले भुगतान करने वालों का कानूनी हक चला आ रहा है। नियमतः बेदखल होने वाले किसानों के परिवार के लोगों के नाम पर स्थानीय जनता को रोजगार देने की घोषणा भी सरकार की तरफ से होती है परन्तु जो होता है वह इस प्रकार है -

मुन्सिफ बना दमाद, भतीजे ने पाया प्रमोशन
बेटे ने पकड़ा दामोदर वैली-कार्पोरेशन
डेरे पर भी फोन लगी है, घण्टी बजती टन-टन
स्टेट्समैन गीता है, रामायण इंडियन नेशन।।

(बड़ा साहब, सन् 1954)

उद्योगों के आधुनिकीकरण के साथ भ्रष्टचार का भी आधुनिकीकरण हुआ। अपना घर भरने, जनता को चूसने की नई नई तरकीबे सामने आनी शुरू हुईं। किसी देश की शिक्षा ओर रक्षा बड़े ही महत्वपूर्ण एवं पवित्र विभाग हैं। इस देश की सरकार ने शिक्षा का तो कोई महत्व कभी समझा ही नही।आज भी नागार्जुन की कविता के दुखरन मास्टर जैसे कई पात्र खस्ताहाल छत के नीचे छात्रों का जीवन गढ़ते हुए मिल जाएँगे। रही बात रक्ष विभाग की। आजादी के आरंभिक वर्षो में तो अहिंसा के पुजारी होने के नाते रक्षा विभाग को लगभग अनदेखा ही रखा गया। सन् 1962 के चीनी हमले के बाद शायद अकल आई कि अफीम तो चीनी खाते थे पर ऊंघते शायद हम रहे और खुमारी में हिन्दी-चीनी भाई भाई के नारे लगाकर

सुरक्षित भी महसूस करते रहे। खैर पाकिस्तान से भी दो बार कामयाब जंग लड़ी गई और देश की फौजों को न केवल मजबूत, बल्कि आधुनिक हथियारों से सुसज्जित करने की योजना बनी। गद्दार लोगों ने यहाँ भी मौका नहीं चूका। भारतीय नौसेना एवं स्थल सेना के लिए क्रमशः पनडुब्बियाँ और बोफोर्स तोपों की आपूर्ति का सौदा हुआ। इन्हीं दिनों देश, विदेशी मुद्रा के भारी संकट से गुजर रहा था। विदेशी हथियारों के सौदागरों और भारतीय नेतओं के दलालों ने मिल कर जो गुल खिलाए वह किसी से छिपे नहीं रह सके। जांच हुई, जांच की जांच के लिए कमीशन बैठे तो और भी पैसा बना। अब भी आए दिन संसद में बोफोर्स कांड की गूंज कभी कभी सुन पड़ती है। फिर गहरी चुप्पी छा जाती है। नागार्जुन ने यहाँ भी जो करारा व्यंग्य किया है, देखते ही बनता है।

कहीं दलाली, कहीं घुटाला
मन के बिखरे टूटी माला
जपते थे जनतंत्री माला
नाना जी ने संकट पाला
शरम नहीं है लाज नहीं है
काम नहीं है काज नहीं है
रायल्टी है राज नहीं है
पुरखों की आवाज नहीं है।

(लोकतंत्र के मुंह पर ताला, 1988)

कच्ची हजम करोगे, पक्की हजम करोगे
चूल्हा हजम करोगे, चक्की हजम करोगे
बोफोर्स का दलाली, गुप चुप हजम करोगे
नित राजघाट जाकर, बापू भजन करोगे
वरदान भी मिलेगा, जयगान भी मिलेंगे

चाटोगे फैक्स फेयर, दिल के कमल खिलेंगे
फिर संसदें जुडेंगी, फिर से करोगे वादे
दीखोगे नए तुम उजली हंसी में सादे।।
(गुपचुप हजम करोगे, 1987)

नागार्जुन की कविताओं में भ्रष्टाचार और राजनीति के गठजोड़ का पर्दाफाश करने वाले अनेक स्थल हैं। चना जोर गरम, मुबारक हो नया साल, रामराज, मन्त्र कविता, और गुठलियों के दाम आएँगे, जैसी रचनाओं में राजनीतिक भ्रष्टाचार पर कवि ने व्यंग्यात्मक शैली में अपने मन की भड़ास खूब निकाली है।

6.2 चुनाव एक प्रहसन (टिकट वितरण)

जनतंत्र में शासन का सूत्र सच्चे अर्थो में जनता के हाथ में रहता है। चुनाव के समय जनता अपनी समझबूझ का परिचय देते हुए अपने लिए शासक दल का चुनाव करती है। इस दृष्टि से प्रजातंत्र या जनतंत्र आधुनिकतम एवं सर्वकल्याणकारी शासन व्यवस्था मानी जाती है। चुनाव यदि निष्पक्षता और ईमानदारी के साथ संपन्न हो तो जनता के चहेते सच्चे जनसेवक अवश्य जीतेंगे। जनतंत्र में मताधिकार और मतदान दोनों का ही बहुत महत्व है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि मतदाता सुशिक्षित एवं जागृत हो। वह अपने मताधिकार का प्रयोग निडरता पूर्वक बिना किसी प्रलोभन के करे। चुनाव के दिनों में सभी पार्टियाँ अपने अपने घोषणा पत्र बड़े ही आकर्षक आश्वासनों के साथ प्रकाशित करती है। चुनावी प्रक्रिया में किसी बड़े दल से नामांकन का टिकट प्राप्त करने वालों की स्पर्द्धा, ऐसे में देखते ही बनती है। दल के हाईकमान के सामने टिकट चाहने वालों की लम्बी लम्बी सूचियाँ रहती हैं। पार्टी का टिकट प्राप्त करने के लिए प्रत्याशी तरह तरह के हथकंडे अपनाते हैं। पार्टी से चुनाव के प्रत्याक्षी का टिकट प्राप्त करके लौटने वालों पर नागार्जुन 'टिकट मार कर लौटेहैं' के स्वर में व्यंग्य करते हैं।

उधर चुनाव के लिए प्रत्याशियों की सूचियाँ बनाने में आजकल सभी दल प्रत्याशी की आर्थिक स्थिति तथा चुनाव क्षेत्र की अधिकांश जनता के धार्मिक और जाति पांति के अनुपात पर विशेष ध्यान देते हैं। जिस क्षेत्र में मुस्लिम मतदाता अधिक हैं वहां से मुसलमान

प्रत्याशी अथवा जिस क्षेत्र में जिस जाति के मतदाताओं की बहुलता है उसी जाति के व्यक्ति को चुनाव लड़ने के लिए टिकट मिलता है। इसके परिणाम स्वरूप योग्य और ईमानदार प्रत्याशियों को किसी अच्छे राष्ट्रीय स्तर के दल का चुनाव टिकट नहीं मिल पाता। इस टिकट वितरण घोटाले के कारण साधारण अथवा निम्न मध्यवर्गीय प्रत्याशी या तो चुनाव के मैदान में उतरने का साहस ही नहीं करते अथवा वे चुनाव हार जाते हैं। पूंजीपति दिल खोलकर पार्टियों के चुनाव फंड में धन, जन तथा जीपें आदि देकर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रत्याशियों को चुनाव जिताने में सहयोग करते हैं। परिणाम स्वरूप जीतने के बाद जनता के यह प्रतिनिधि कृतज्ञता ज्ञापन हेतु पूंजीपतियों के हित में ही कार्य भी करते हैं। कवि ने देश के विभिन्न भागों में चुनाव के दृश्यों का आँखों देखे हाल जैसा वर्णन किया है।

सेठ है शोषक है नामी गला काटू है
गालियाँ भी सुनता है भारी थूक चाटू है
चोर है डाकू है झूठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लबार है
जैसे भी टिकट मिला जहाँ भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वो ही सवार है।।

(26 जनवरी, 15 अगस्त, सन् 1978)

इस प्रकार के चरित्र भ्रष्ट लोग जब चुनाव लड़ते हैं तो वह हर प्रकार के भ्रष्ट से भ्रष्ट तरीके अपनाते हैं। जीतने के बाद तो निर्भय होकर दोनों हाथ से जनता को लूटने की छूट का ही उन्हें मानों लाइसेंस मिल जाता है। शोषित का पहले से भी अधिक शोषण होने लगता है। इन चरित्रहीन तथा लठैतों की फौज वाले प्रत्याशियों से कैसे देश में समाजवाद आ पाएगा। डरा-धमका कर, पैसे -कपड़े बांटकर किसी भी यत्न से ऐसे लोग जब चुनाव जीत जाते हैं तो स्वाभाविक है कि वह अपने खर्च किए हुए धन से कुछ अधिक ही राजनीति के माध्यम से कमाने का जुगाड़ भी करेंगे।

आकर्षक नारे, लुभावने आश्वासन तथा जन सामान्य के लिए कल्याणकारी योजनाओं वाले घोषणा पत्र जारी करके वोट बटोरने की भरसक कोशिशें की जाती हैं। इन चुनावी वादों के फेर में पड़कर अनपढ़ भोली-भाली जनता इन प्रत्याशियों को अपना अमूल्य वोट देती है। चुनाव जीतने के बाद राजनीतिक दल फिर कुछ दिनों में अपने घोषणा पत्र में दिए गए आश्वासनों को पूरा करने का वादा करते हैं, कुछ मुहलत भी मांगते हैं परन्तु वादे कभी पूरे नहीं होते। अब तो राजनीतिक दलों के नेता वोटरों के नाम भी भूल जाते हैं। कोई सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन नहीं होता। सरकारी कर्मचारी पहले की ही तरह निर्धन, साधनहीन लोगें का शिकार करते हैं-

लेकिन तीस दिनों में ही तो,
दम घुटता लगता है अपना
बीसों सूत्र दहक उठे हैं,
सुनलो रोना और कलपना
व्यर्थ हो रहा विपक्षियों का,
गुप चुप वोटर वोटर जपना
फीके पकवानों का आया,
फागुन में चीनी का सपना
स्थिर सरकार बनी है अवकी
ढाँचाहै इसका फौलादी
फिर से सधे बीस सूत्रों की
दुनिया भर में फिरी मुनादी
सुनो, सुनों जी थिरक उठे हैं
फिर से वही राग दरबारी
वही सिपाही वही मुला-जिम
वे अफसर, वे ही अधिकारी

देखो देखो वापस आए

सारे ही मुंशी पटवारी।।

(नदियाँ बदला ले ही लेंगी, सन् 1980)

भारतीय राजनीति में देश की प्रगति के लिए युवकों की सक्रिय भूमिका की प्रशंसा सार्वजनिक सभाओं में बार बार की जाती है। देश के युवा वर्ग को रोजगार ही नहीं, शासन नीति तय करने, देश की प्रगति में भागीदार बनाने की बाते की जाती हैं। मताधिकार के लिए आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई। कहा गया इससे नई पीढ़ी अपना दायित्व और महत्व भली प्रकार समझ सकेगी। चुनाव का मौका अपने पर जब प्रत्याशियों को चुनाव लड़ने के लिए टिकट बंट ने शुरू हुए तो इन्हीं बूढ़े खुर्राट नेताओं ने आपस में बंदर बाँट की सरकारी कर्मचारी के लिए सेवा निवृत होने की एक निश्चित और अनिवार्य आयु निर्धारित की गई है परन्तु विधायिका और मंत्रिमंडल जैसे महत्वपूर्ण कार्यों से सेवा निवृति के लिए कोई आयु सीमा निर्धारित करने की जरूरत नहीं समझी गई। युवा पीढ़ी मजबूर है इन बूढ़ों को अपनी पीठ और कंधों पर ढोने के लिए। युवक असमय में बूढा होने के लिए विवश हो गया।

दरअसल

अपन वहीं हैं

वही रहेंगे हाँ, वही

न बदले हैं न बदलेंगे

बदलते हुए दीखेंगे

फिर भी कुछ नहीं सीखेंगे

80-85-90 के बूढ़ों को ढोएँगे।

(दलबदलू बुजुर्ग, 1981)

पार्टी और प्रशासन तथा राजनीति में बूढ़े और अक्षम लोग कुंडली मार कर बैठे रहने की साजिश करते रहते हैं। मरने से पहले स्वेच्छा से सक्रिय राजनीति से इने गिने भारतीय

बूढ़े ही सन्यास लेते हैं।

प्रजातंत्र की सबसे जीवंत नस ही चुनाव होती है। पूर्वोक्त परिस्थितियों में चुनाव एक ढकोसला अथवा प्रहसन बनकर रह गए हैं। रही सही कमी पूरी कर दी है चुनावों मे डकैत और लठैतों के सहयोग से कराए गए बूथ कैपचर (मतदान केन्द्र पर कब्जा) के षडयंत्रों से। आतंक के वातवरण में होने वाले मतदान से देशवासियों का क्या भविष्य सुधारने वाला है। अपने क्षेत्र के दादा लोगों के आदेश और संकेत पर मतदान करने के लिए विवश मतदाताओ के चेहरे देखकर ही उनकी निरीहता समझी जा सकती है। प्रगतिशील चिन्तक और कवि वैद्यनाथ मिश्र ने यह सब अपनी आँखों से देखा है जिसका वर्णन वह इस प्रकार करते है -

बकरियों की लाइन लगी थी
वे मतपेटी के अन्दर
अपना अपना मतपत्र
डाल रही थीं
मत-पत्र क्या थे
छोटे छोटे पीले पत्ते थे!
वह मत पेटी के अन्दर
डाल रही थीं बकरियाँ
सहमा सहमा निर्वाचन अधिकारी
एक ओर बैठा था
हल्के नीले ठप्पे भी
मत पत्रों पर पड़

(तीन सिरों वाला बेताल सन् 1983)

चुनाव के इस प्रहसन का पटाक्षेप होना जरूरी है। प्रगतिशील समाजवादी, विचार एवं राजनीति के पोषण की दृष्टि से मतदाताओं को संगठित करना, उन्हें मताधिकार का महत्व

समझाना तथा निडरता पूर्वक वोट डालने के लिए प्रेरित करना बुद्धि जीवी वर्ग का कर्तव्य है। इसी दृष्टि से नागार्जुन ने चुनाव की प्रक्रिया का मजाक तो उड़ाया है परन्तु यह भी बताने की कोशिश की है कि जब जब संगठित होकर निर्भयतापूर्वक मतदान हुआ है, भ्रष्ट प्रत्याशी चारो खाने चित्त गिरे हैं। उनकी चुनाव सम्बन्धी ऐसी अनेक कविताएँ हैं जो चुनाव की प्रक्रिया में होने वाली गलत बातों का पर्दाफाश करने के साथ वोटरों के मनोबल को भी बढ़ाने वाली हैं। 'नशा चढ़ा था बेअन्दाज, चना जोर गरम, भारत पुत्री नगर वासिनी तथा इस गुब्बारे की छाया में' आदि रचनाएँ इसी स्वरधारा में रची गई अन्य रचनाएँ हैं।

6.3 नेताओं का व्यवहार

स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में नेताओं के त्याग और बलिदान से प्रभावित भारतीय जनता उनके एक इशारे पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर रहती थी। जलियाँ वाला बाग, साइमन कमीशन का बहिष्कार तथा उत्तर प्रदेश और बिहार के किसानों के आन्दोलन इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। यही नेता स्वाधीनता प्राप्ति के बाद गिरगिट की तरह रंग बदलने लगे। जन सेवा और जन कल्याणकी चर्चा करने वाले इन्हीं नेताओं का बदला हुआ स्वरूप देखकर भारतीय जनमानस अवाक् रह गया। हाथजोड़ कर मुस्कराते हुए अभिवादन करके फूल मालाएँ बटोर कर वोट बटोरने की राजनीति अब उनके जीवन का अंग बन गई।

अभी अभी उस दिन मिनिस्टर आए थे
बत्तीसी दिखलाई थी, वादे दुहराए थे
भाखा लटपटाई थी नैन शरमाए थे
छपा हुआ भाषण भी पढ़ नहीं पाए थे
जाते वक्त हाथ जोड़ कैसे मुस्कराए थे।

(अभी अभी उस दिन, 1953)

अपने साथी कार्यकर्ताओं तथा ग्रामीण कार्यकर्ताओं की कृतज्ञता को वे भूल गए।

जनता की आँखों के तारे,उसके प्रिय नेता स्वाधीनता के बाद संगीनों और बंदूकों की छाया में चलने लगे। जन संपर्क नाम की कोई चीज अब उन्हें याद नहीं रही। इन नेताओं को अब मानों उसी जनता से भय सताने लगा,जिसने उन्हें कुर्सी तक पहुंचाया था। गॉव के स्कूल में मास्टर दुखरन अभी भी नेता जी को जनता के सुख दुख का साथी समझने की गलती कर रहे थे। जर्जर भवन में बच्चों को अक्षरज्ञान कराते मास्टर जी को न जाने कैसे सूझा कि नेता जी से मिलकर स्कूल की जर्जर इमारत की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया जाए। उन्हें विश्वास था कि मंत्री जी उनसे भली भांति परिचित हैं अतएव इस कार्य मे उनकी पूरी सहानुभूति के साथ राजकीय सहायता मिल जाएगी। मंत्री जी के पडाव पर पहुंचने पर दुखरन मास्टर का यह भ्रम टूट गया। पहरे पर तैनात नेपाली संतरियों ने उन्हें बुरी तरह अपमानित करके धकियाते हुए बाहर भगा दिया।

अरे, अभी उस रोज वहां पर सरे आम जंक्शन बाजार मे
शिक्षा मंत्री स्वयं पधारे चमचम करती सजी कार में
ताने थे बंदूक सिपाही, खड़ी रहीं जीपें कतार में
चटा गए धीरज का इमरित सुना गए बातें उधार में
खिचड़ी बाल सांवली सूरत दुखरन प्राइमरी मास्टर
लपके लपके बढ़े आ रहे मैदानी हाते के भीतर
फाटक पर पहुंचे तो देखा डटे हुए थे दो नेपाली
हाथों में संगीन संभाले, लटक रही थी निजी भुजाली
'कहाँ जाएगा?' वे गुरयि, आँखों में उतराई लाली
दुखरन का दिल दुखी हुआ, सुन सूखा तू तू सूखी गाली।।

(मास्टर, सन् 1953)

नेताओं के व्यवहार में ऐसा आश्चर्यजनक परिवर्तन तो आजादी के लगभग 4,5 वर्ष बाद ही आ गया था। उनके साथ आन्दोलन में बराबर की भागीदारी करने वाले साधारण जन

को इस दुखद परिवर्तन की शायद कल्पना भी न रही होगी। जैसे जैसे समय गुजरता गया, देश के तथाकथित कर्णधार जो कभी जनता के लाड़ले हुआ करते थे, सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने के संघर्ष में लग गए। जनता की ओर से तो उनका ध्यान ही बिल्कुल हट गया। हाँ चुनाव के दिनों में अवश्य जनता की याद आती थी। सो चुनाव होने से एक वर्ष या छः महीने पहले फिर से किसान मजदूरों से सम्पर्क साधने की कोशिश काफी रहती। फिर उन्होंने इसके लिए भी रीढ़हीन चमचों की जमात जोड़नी शुरू कर दी। ग्राम-पंचायतों और मजदूर संघों में अपने पिछलग्गू लोगों को भरकर। दोनों स्वार्थवश एक दूसरे से जुड़े रह कर अपना अपना अस्तित्व स्थायी बनाए रखने में ही भलाई समझने लगे। फिर कोई छोटी मोटी बैठक हो या गोष्ठी उसकी अध्यक्षता अथवा उद्घाटन कुछ भी कराने के बहाने नेताओं के चमचे उन्हें आमंत्रित करते हैं। इन अवसरों पर नेता जी के भाषण होते हैं जो भले ही प्रासंगिक न हों तो भी प्रशंसा में तालियाँ बजेगी। उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आयोजकों में होड़ लगेगी। खींसे निपोर कर मालाओं से लादकर विदा किया जाएगा। बहुत से नेताओं को तो सरोपा, शाल, पगड़ी और नकदी की थैलियाँ भी उनके सम्मान में भेंट की जाती हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ऐसे नेताओं के बारे में आम धारणा बन गई है, "नेता, वह जो लेता ही लेता, सिवाय आश्वासन कुछ नहीं देता।" भागलपुर की साहित्यिक गोष्ठी का उद्घाटन एवं उसकी अध्यक्षता करने आए, अमलेन्दु जी एम0एल0ए0 के भाषण का अंश नागार्जुन की जबानी -

बन्धुओं, दीजिए न आने
राजनीतिक का लुष्य साहित्य के भीतर
स्वयं भले गरलपान कीजिए
न वितेन तर्पणीयों मनुष्य :
और भारत की अपनी परम्परा में सभी कुछ तो है ही
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - क्या भला नहीं है यहाँ?
फिर केवल अर्थ या काम पर देते हैं जो लोग जोर
ध्यान मत दीजिए आप उनकी ओर। (अमलेन्दु एम0एल0ए0, 1954)

साहित्यकार और जनता, दोनों को ही क्या उपदेश पिलाया है नेता जी ने। आर्थिक दशा में सुधार एवं अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इन राजनीतिक आकाओं के अनुसार कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नही है। यथा स्थिति बनाए रखने में ही उनका और उनके राजनीतिक दलों का स्वार्थ निहित है। संतोष की अफीम लेकर कैसे समाज और देश इस वैज्ञानिक युग में आगे बढ़ सकेंगे, कोई पूछे इनसे। उन्हें तो केवल अपने ऐश आराम और मंत्री पद की चिन्ता है। यदि गलती से भी कहीं थोड़ी बहुत प्रगतिवादी चेतना जनता में उत्पन्न हो गई तो नेता जी को अपना भविष्य अंधकार ग्रस्त लगने लगता है। उस दशा में आश्वासनों की घुट्टी पिलाकर भोली जनता को मोहित करना तो उनके लिए बाएँ हाथ का खेल है। सन् 1952 के चुनाव में मतदान के समय जनता में राजनीतिक चेतना और विद्रोह का स्वर उभरता देखकर नेता जी क्या कहते है -

किन्हीं इलाकों के कुछ वोटर
सनक गए थे उस दिन तड़के
बैलों की जोड़ी से भड़के
बदहोशी में मतपत्रों का दुरूपयोग कर लिया उन्होंने
अब क्या होगा?
तख्त तो न उलटेगा अपना?
अरे कुछ नहीं, सब दुरूस्त हैं, सभी ठीक हैं, शान्तिः शान्तिः !!!
अन्न चाहिए? वस्त्र चाहिए? काम चाहिए?
मन माफिक आराम चाहिए?
वेतन में कुछ वृद्धि चाहिए?
अगले पाँच साल के अन्दर भाई मेरे सब कुछ होगा!

(निस्वार्थ हमारी सेवा करने को उद्यत हैं, सन् 1952)

इन्हीं आश्वासनों के बल पर उनकी नेतागीरी सुरक्षित और स्थिर बनी रहती

है। कभी कभी राजनीतिज्ञ भी एक दूसरे को ताल ठोंकते हैं। उच्चासन के लिए महत्वाकांक्षी लोगों के कारण दल के भीतर घात और प्रत्याघात होते हैं। एक दूसरे को पटखनी लगाने के अवसर खोजे जाते हैं। जोर आजमाइश की इस रस्साकशी में व्यस्त इन नेताओं का ध्यान कभी अभावों से जूझते जनसाधारण की दशा सुधारने की ओर कैसे जा सकता है! सत्ता की आपाधापी और मारामारी से ही उनहें अवकाश नहीं मिल पाता। आजादी के दूसरे दशक में घोर दलीय संकट की स्थिति में कामराज योजना लागू की गई। समस्त पुराने नेताओं से, सबल विरोधियों से छुटकारा पाने की इस कूटनीति के बाह्य और आंतरिक रूप में भारी अन्तर था। सबसे इस्तीफे लेने के बाद धीरे धीरे अपने समर्थक राजनीतिज्ञों को फिर से कैबिनेट मे ले लिया गया। यात्री जी ने इस राजनीतिक चाल की पोल खोलते हुए नेताओं पर इस प्रकार व्यंग्य किया है -

खडाऊं थी गद्दी पर
कर रहा था नाम राज
हवा लगी पूछने
कहाँ गए कामराज
सोना लगा हंसने
लोहा लगा रोने
खादी लगी घुलने
सेंटर में वामराज, बाकी अवाम राज
बनिया टटोलता है पाकिट
मंडियों पे छा गए खूब चढ़े दाम राज
हवा रही पूछती: कहाँ गए कामराज ।।

(खड़ाऊं थी गद्दी पर , सन् 1965)

इन राजनीतिक हस्तियों के अन्तरमन को कोई मनोवैज्ञानिक शायद ही पढ़ पाएगा। इनके व्यवहार का विश्लेषण करने पर भारी विरोधात्मक तत्व सामने आने की पूरी संभावना है। उपर से त्यागमूर्ति, सदाचारी, सादा जीवन उच्च विचार में आस्था प्रदर्शित करने वाले यही लोग अपने असली रूप में यदि जनता के सामने आएँ तो जनता के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित रह जाएँगे। अपनी लच्छेदार बातों, ओढ़ी हुई हुई विनम्रता तथा सादा वेषभूषा से जनता के बीच अपनी जीत

का झण्डा गाड़ने बाले यह सज्जन कभी आत्म विश्लेषण तो कर ही नहीं सकते। उसके लिए बहुत नैतिक बल और साहस चाहिए अन्यथा आत्मरति से उन्मादग्रस्त इन लोगों को स्वयं से ही घृणा हो जाएगी। कविवर नागार्जुन के शब्दों में एक साहसी नेता का आत्म-बिश्लेषण संबधी कथन प्रस्तुत है -

कुछ नहीं है हम
हाँ हम ढ़ोगीं हैं प्रथम श्रेणी के
आत्मवंचक -----पर प्रतारक------बगुला धर्मी
यानी धोखेबाज
जी हाँ हम धोखेबाज हैं
जी हाँ हम ठग हैं-----झुट्ठे हैं
न अहिंसा में हमारा विश्वास है
न हिंसा में हमारा विश्वास है
मन , वचन , कर्म----हमारा कुछ भी स्वच्छ नहीं हैं।

(धोखे में डाल सकते हैं। सन् 1975)

येन -केन-प्रकारेण कुर्सी हथियाने में कुशल ऐसे नेताओं के रहते स्वच्छ प्रशासन, समयोचि त कार्यवाही तथा योजनाओं का त्वरित और कारगर कार्यान्वयन केसे सम्भव हो सकता है ! हर काम राजनीतिक स्वार्थो एंव व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से होगा। जनसभा में राष्ट्रभाषा के अध्ययन एंव अध्यापन की दुहाई देने वाले यही लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम वाले बढ़िया से बढ़िया पब्लिक स्कूल में प्रवेश दिलाते हैं तथा उच्च शिक्षा के लिए योरप अमेरिका भेजते है। उनके लिए विदेशी मुद्रा का भी कोई संकट नहीं क्योंकि उनमें से बहुतों के तो स्विस बैंक में बेनामी खाते पहले से हैं ही। न भी हों तो विदेशों में भी ऐसे बहुत से धनकुबेर उनकी सेवा के लिए तत्पर रहतें हैं जिन्हें भारत में कोई उद्योग लगाना है या व्यापार करना हैं या व्यापार करना है। किसी भी राजनीतिक दल से कोई नेता जुड़ा हो, वह अपने दल को

ही सर्वश्रेष्ठ मानता है। दल के भीतर व हर सभी नताओं का आचरण लगभग एक समान होता है। बाबा ने नेताओं के आचरण और उनके व्यवहार का विश्लेषण बहुत अच्छे ढंग से अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से उनकी मन्त्र कविता कुछ स्थलो पर काव्य दोष होते हुए भी पाठनीय है -

ओं दलों में एक दल अपना दल ओं
ओं अंगीकरण, शुद्धिकरण, राष्ट्रीयकरण
ओं मुष्टीकरण, तुष्टीकरण, पुष्टीकरण
ओं एतराज, आक्षेप, अनुशासन
ओं गद्दी पर आजन्म वज्रासन
ओं ट्रिब्यूनल ओं आश्वासन
ओं गुटनिरपेक्ष, सत्तासापेक्ष जोड-तोड़
ओं छल-छन्द ओं मिथ्या ओं होडम होड़
ओं बकवास ओं उद्घाटन
ओं मारण-मोहन-उच्चाटन।

(मन्त्र कविता सन् 1969)

उपर्युक्त पक्तियों में भारतीय राजनीति मे सक्रिय राजनेताओं के गुण, स्वभाव, कार्य प्रणाली एवं व्यवहार की पूरी तरह से जैसे पोल ही खोल कर रख दी है।

6 4 प्रजातंत्र पर व्यंग्य

मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित होते हुए भी नागार्जुन जैसे बुद्धिजीवियों ने भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षों मे प्रजातंत्र के प्रति अपनी आस्था का परिचय दिया था। नागार्जुन के आलोचक उन पर 'राजनीतिक निष्ठा मे अस्थिरता' तथा 'अराजकता वादी' होने को दोष तक लगाते हैं। वस्तु स्थिति यह है कि वह एक प्रगतिशील समाजवादी चिंतक और

और साहित्यकार हैं। डा0 प्रभाकर माचवे के अनुसार , "नागार्जुन को किसी राजनैतिक पक्ष यामतवाद के लेब्ल से परिभाषित करना कठिन है। वेदलित - शोषित वर्ग के सच्चे प्रतिनिधि हैं जो समाजवाद और जनतंत्र दोनों में विश्वास करते है।"[1] ईमानदारी की बात यह है कि समाज के सर्वसाधारण वर्ग के सामाजिक आर्थिक विकास को ही वह प्रधानता देते हैं, राजनीति तो इस लक्ष्य साधन का एक माध्यम मात्र है। प्रजातंत्र से सभी भारतीय नागरिकों को बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। विदेशी शासन के जुए को उतार फेकने के बाद जनता ने सोचा था कि सामान्य जन की हालत से अच्छी तरह परिचित हमारे अपने लोग जब शासन की बागडोर संभालेंगे तो आर्थिक और सामाजिक ढॉचे में आमूल चूल परिवर्तन आ जाएगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। शासक वर्ग स्वाधीनता आन्दोलनों में सहन की गई पीडा को भूला नही था। अब सत्ता का सुख प्राप्त करने के बाद उसने सत्ता में बने रहने को अपने जीवन का ध्येय बना लिया। फिर प्रजातंत्र कैसे सफल होता। प्रजातंत्र के नाम से जनता ने सुनहरे सपनों के जिस संसार की कल्पना की थी वह चकनाचूर हो गया। प्रजातंत्र में वैचारिक स्वतंत्रता की खुली छूट होती हैं परन्तु देखा गया कि जो भी सत्तासीन व्यक्ति के विरोध में बोलने की हिम्मत करता उसे सताया, धमकाया, डराया जाता। जब इतने से भी काम न चलता तो विरोधी व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व को समाप्त कर देने के षडयंत्र भी होते। नागार्जुन ने देखा कि आजादी के बाद केवल शासनतंत्र का नाम और झंडे का स्वरूप बदला है। राजनीति की चाले पहले जैसी ही रहीं। शासन नीति जन कल्याणकारी न हो पाई इसलिए कवि ने भारतेन्दु को याद करते हुए निम्नलिखित उद्‌गार प्रकट किए -

वही रंग है वही ढंग है वही चाल है।
वही सूझ है वही समझ है वही हाल है।
बुद्धिवाद पर दण्डनीति शासन करती है।
मूर्च्छित हैं हल बैल और भूखी धरती है।

× × × × ×

1- डा0 प्रभाकर माचवे : नागार्जुन : जीवन औसंकलन, पष्ठ 7

प्रजातंत्र में बुरा हाल है काम काज का।
निकल रहा है रोज जनाजा रामराज का ।।
(भारतेन्दु , सन् 1950)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कवि को आशा थी कि आम आदमी को हालत मे सुधार आएगा। इसके विपरीत पूंजीपतियों और साम्राज्यवादी देशों से जननेताओं ने सम्बन्ध जोडने शुरू किए। चारो तरफ अनर्थ का बोलबाला ही कवि को दृष्टि गोचर होने लगा । प्रजातंत्र देश होते हुए भी अन्य देशों में जनक्राति और प्रजातंत्र के लिए आन्दोलन करने वालों को भारत सरकार से समर्थन नहीं मिला। विश्व शान्ति का भाषण देने वाले जननायक अपने देश में ही भड़कते असंतोष को नहीं भॉप सके। जनता की सहन शक्ति जबाब देने लगी। फिर से असहयोग आन्दोलन, जलसे और जुलूस निकलने लगे। जनतंत्र के रक्षकों ने अपने ही देशवासियों की भूखी नंगी बेहाल जनता से मुंह मोड लिया। अहिंसा की दुहाई देने वाले निहत्थी जनता के जुलूस पर लाठियॉ बरसाने और गोली चलाने का हुक्म देने लगे। जनतंत्र की पोल ही खुल गई -

महज विधान सभा तक सीमित है जनतंत्री खाका।
यह भी भारी चमत्कार है, कॉंग्रेसी महिमा का।
(चमत्कार, 1953)

प्रजातंत्र और रामराज की इति श्री तो वैसे आजादी मिलने के तुरन्त बाद ही हो गई थी। कल तक अहिंसा के पुजारी कहलाने वाले स्वयं हिंसा की करतूतों में शामिल हैं। मंत्री बनने के बाद हर नेता बहाने बनाकर विदेश की हवाई यात्रा पर निकल पडता । मंहगाई भूख और अभाव से जूझती निर्धन जनता को धैर्य धारण रखने की सलाह दी जाती है। अगर कोई व्यक्ति शासन नीति की कमजोरियों अथवा सत्तासीन दल से जुडे राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार एवं दमन के खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश भी करता है तो उसकी आवाज दबा दी जाती है। यह कैसा प्रजातंत्र है? क्या इसी रामराज की खातिर देश के हजारों लाखों अनाम नागरिक

ब्रिटिश सत्ता की गोलियों के शिकार हुए थे? स्वाधीनता से पूर्व त्यागमूर्ति बने नेताओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बड़े बड़े धनकुबेरो से मेलजोल बढ़ाना शुरू किया। पूंजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए नई उद्योग नीति बनी। शोषण के शिकार मजदूर और किसानों पर लाठियाँ बरसाई जाने लगीं। उन्हें जेलों में सड़ने पर मजबूर किया गया। प्रजातंत्र के इस घिनौने स्वरूप को ही यदि रामराज कहा जाता है, तो कवि को इससे सख्त नफरत है।

लाज शरम रह गई न बाकी गाँधी जी के चेलों में
फूल नहीं लाठियाँ बरसतीं राम राज की जेलों में
खादी ने मल मल से साँठ गाँठ कर डाली है
बिड़ला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है
जोर जुलुम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो
समझ न पाता हूँ कि हुकूमत गोरी है या काली है।

जनता जनार्दन से मुंह मोड़ कर, गाँधी जी की समाधि पर झूठी कसमें खाई जाती है। देश में बेरोजगारी बढ़ती जा रही थी जन कल्याण की योजनाएँ फाइलों में बन्द पड़ी थीं। गाँवों में अछूत वर्ग के उपर अत्याचार और शोषण का शासन ज्यों का त्यों अपना शिकंजा कसे हुए था। समाजवादी अर्थव्यवस्था की घोषणा करने वाले भारत देश के तथाकथित कर्णधार अमेरिका और इंग्लैंड जैसे पूंजीपति देशों से संबंध स्थापित करने में प्रयत्नशील थे।

रामराज से कुंभ करन का रावण का क्या नाता है।
हिन्द आजकल अमरीका से बंदूकें मंगवाता है।
रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।
सूरत शकल वही ही भैया बदला केवल ढाँचा है।
नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने हैं हाथों -
भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है।

(रामराज 1949)

यह तो रही आजादी मिलने के तत्काल बाद की कहानी। धीरे धीरे वर्ष पर वर्ष बीतने लगे। जनता ने धीरज का परिचय दिया, इंतज़ार किया। फिर भी सामान्यजन के

हालात में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। पहले वे विदेशी शासक और साहूकार - सामंतों के गठजोड़ का शिकार थे। अब देशीशासक और सेठों की मिली भगत से साधारण और निम्नमध्यवर्गीय नागरिक छला जा रहा था। आदिवासी, हरिजन, गिरिजन जैसे अशिक्षित और उपेक्षित वर्ग के लोगों की तो दुर्दशा में और भी वृद्धि हुई। इसी कारण आजादी के बीस वर्ष बीतते बीतते लोगों की आँखों से भ्रम का परदा दूर होने लगा। जनता संगठित होने लगी। कुशासन औरअव्यवस्था के विरोध में जनता मुखर होने लगी। अहिंसक प्रदर्शनों तथा सभाओं पर पाबंदियाँ लगाई जाने लगीं अथवा कुछ गुण्डा तत्वों की मिली भगत से इस प्रकार के आन्दोलनों को बदनाम करके ठप भी किया गया। अंततः तेलंगाना, मध्य प्रदेश , बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों के आदिवासियों में नक्सलवाद के प्रति आकर्षण उत्पन्न होने लगा। दूसरी तरफ अन्य प्रान्तों में भी हरिजन एवम् पिछड़े वर्ग के प्रति घृणा की भावना अभी तक खत्म नहीं हुई। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ गाँवों में तो काम के बदले भरपेट मजदूरी न मिलने पर जब इस वर्ग की जनता ने काम करने से इंकार किया तो निर्ममता पूर्वक उनकी पिटाई की गई। उच्चवर्ग के लोगों ने अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए पिछड़ी जातियों की स्त्रियों का शील हरण तक किया। कई स्थानों पर हरिजन बस्तियों में आग लगा दी गई। बहुत से लोगों को जिन्दे ही जला दिया गया।यह पाशविकता का खुला नृत्य था। नागार्जुन ने अपनी 'हरिजन गाथा, 15 अगस्त, 26 जनवरी, शासन की बन्दूक, लाली बढ़ी सौ गुनी, और बस अन्धकार' आदि अनेक कविताओं में शासन के बेरूखेपन पर करारा व्यंग्य करते हुए ,दलित वर्ग पर जारी दमन और शोषण के यथातथ्य शब्द चित्र प्रस्तुत किए हैं। स्वतंत्रता की रजतजयन्ती का अवसर आने तक स्वार्थी तत्वों ने किस प्रकार प्रजातंत्र का होम ही कर डाला, प्रस्तुत हैं कुछ पक्तियाँ -

सामन्तों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम
लाश बेचने लग गए खादी पहने डोम
खादी पहने डोम लग गए लाश बेचने
इन्द्रजाल की छतरी ओढ़े श्री मन्तों ने
प्रजातंत्र का होम कर दिया सामन्तों ने।

(प्रजातंत्र का होम सन् 1973)

राजधानियों और महानगरों तक सीमित प्रजातंत्र के लाभों की चकाचौंध से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में उसकी निष्क्रियता को कविताओं में प्रस्तुत किया है। शायद इसे पढ़कर ही सरकार की आँखें खुल जाएँ।

6.5 राजनीति में पुलिस का अनुचित प्रयोग

स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में विदेशी सरकार ने आन्दोलनकारियों को दबाने के लिए पुलिस का खुल कर उपयोग किया था। पुलिस बेरहमी से अपने ही देशवासियों पर खुलकर बल प्रयोग करती थी। जलियाँ वाला बाग और साइमन कमीशन के बहिष्कार जैसे अवसरों पर पुलिस की बर्बरता के कारण उसका घिनौना स्वरूप जनता के सामने आया। इतना सब होने के बावजूद स्वाधीनता आन्दोलन पूरी तरह सफल हुआ। स्वतंन्त्रता प्राप्ति के बाद लोगों का विचार था कि भारतीय पुलिस के व्यवहार ओर दृष्टि कोण में भारी परिवर्तन आएगा। इस धारणा के बलवती होने के कारण भी थे। आजादी के बाद अनेक पुलिस अफसरों को ब्रिटिश शासन के दौरान, उसके इशारे पर उनके द्वारा भारतीय जनता के प्रति किए गए दुर्व्यवहार पर ग्लानि एवं दुख महसूस हुआ। यह भी कहा गया कि अधिसंख्य पुलिस कर्मचारियों में शिक्षा और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता का अभाव था। पुलिस को सरकार के प्रति स्वामीभक्त होना ही चाहिए। इसलिए परतंत्रता के दिनों में पुलिस द्वारा किए कुकृत्यों को जनमानस ने इन सब कारणों से भुला दिया। आजादी के बाद यह आशा की जाने लगी कि भारतीय पुलिस में अब साधारण जनता के प्रति सहयोग, सेवा और सौहार्द्र की भावना जन्म लेगी। शायद ऐसा होता भी परन्तु हुआ नहीं। स्वतंत्रता के बाद पुलिस सत्ताधारी राजनीतिक दल के हाथों में कठपुतली बनकर रह गई। जो नया शासक वर्ग उभर कर उपर आया उसने अपने हितों की सुरक्षा के लिए पुलिस बल का प्रयोग शुरू कर दिया। नैतिकता का नारा लगाने वाले स्वयं ही अनैतिक कार्य करने लगे। सत्ता के प्रति उनमें मोह की भावना दिन पर दिन बलवती होती गई। जब उनकी जन विरोधी नीतियों के विरोध में कहीं कोई स्वर उभरता, उसे दबाने के लिए सत्तासीन वर्ग पुलिस का सहारा लेने लगा। पुलिस में नैतिक मूल्यों का तो पहले ही काफी ह्रास हो चुका था, रही सही कमी राजनीतिज्ञों ने पूरी कर दी। अब पुलिस भी यह जान गई थी कि शासन पर पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए हर राजनीतिक दल उसका इस्तेमाल करेगा। वह एक प्रकार से इस गर्हित और अनैतिक कार्य को करने लिए विवशता की स्थिति में पहुंच गई।

उधर सर्वहारा वर्ग को सत्ता के नए ढाँचे से बड़ी निराशा हुई। जनकल्याण-योजनाओं के नाम पर उल्टे उनके गले पर छुरी चलने लगी। जनता ने सत्तारूढ़ दल की जन विरोधी नीतियों के विरोध में गाँधी जी के मार्ग का अनुसरण किया। सभाएँ आयोजित की गईं परन्तु सफलता नहीं मिली। जुलूस निकालने, नारे लगाने पर भी शासन की नींद नहीं टूटी। हार कर दलित-शोषित लागों ने गाँधी जी के बताए अन्तिम अस्त्र अनशन का आश्रय लिया। सरकार को आशंका हुई कि इससे सरकार के खिलाफ जनभावना प्रबल हो जाएगी। अब उसे पुलिस के डंडे की जरूरत महसूस हुई। अनशनकर्ताओं को पुलिस ने सार्वजनिक स्थानों से बलपूर्वक खदेडने की कोशिशें की। जो फिर भी डटे रहे, उनको बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया। जेल में इन राजनैतिक बंदियों के साथ दुर्व्यवहार तो हुआ ही, उन्हें अमानवीय यातनाएँ भी दी जाने लगी। अपनी रिहाई के लिए सरकार और पुलिस अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए जेल के भीतर भी इन राजनैतिक कैदियों ने भूख हड़ताल की। बन्दी जीवन में सुविधाएँ मिलेंगी, ऐसी आशा थी परन्तु सरकारी इशारे पर पुलिस ने उनकी जमकर जो पिटाई की तो उनमें से कई ने दम तोड़ दिया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप विभिन्न स्थानों पर पुलिस और सरकारी तंत्र को छकाने के लिए आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग में संगठित होकर 'आजाद छापामार दलों' का गठन होने लगा। नागार्जुन ने अपनी कविता के माध्यम से इस अत्याचार का पर्दाफाश किया और छापेमार टुकड़ियों के गठन पर हर्ष भी प्रकट किया -

क्षीण अनशन क्लिष्ट आहत .....
राजनैतिक बंदियों का बध हुआ है
हो गई निःशेष लाशें .....
एंबुलेंसी कार आई, गई वापस
शान्तिपूर्वक हो गया सम्पन्न यह नरमेध .....
चुप रहो, चुप, चलो जल्दी

× × × × ×

सर्वहारा ने निकाला है स्वयं ही मुक्ति का यह मार्ग
महाश्वेता दानवी कवल से अब मुक्त होगा राष्ट्र

× × × × ×

पिट पिटा कर लुट लुटा कर
पुलिस इंसपेक्टर बहादुर
लिख रहे दो रोज बाद रिपोर्ट।

(वह कौन था, 1948)

स्वतंत्रता मिलने तक कम से कम सरस्वती के पवित्र मंदिर कहलाने वाले शिक्षण संस्थानों में पुलिस बल का प्रयोग नहीं होता था। कॉलेज और विश्व विद्यालयों में अध्ययनरत युवा पीढ़ी को स्वाधीनता की बलिवेदी पर न्योछावर होने के लिए महात्मा गाँधी और माखनलाल चतुर्वेदी ने भी ललकारा था। स्वतंत्र भारत की दुर्दशा देखकर एक बार फिर इस युवा पीढ़ी के गर्म खून में उबाल आया। किन्तु अपनी सरकार उनकी कब सुनने वाली थी। उनके जोश को देखकर बूढ़े सत्ताधारी दहल जरूर गए। युवा वर्ग की ताकत का उसे एहसास था। इसलिए विद्रोह पर उतारू इस जुझारू विद्यार्थी वर्ग को दबाने के लिए सरकार ने पुलिस को याद किया। पुलिस ने कालेज परिसर में गैर कानूनी प्रवेश करके निर्ममता पूर्वक छात्रों की पिटाई की। इसके प्रमाण स्वरूप कालेज के बरामदे में जगह जगह खून के निशान अंकित हो गए। कवि का मन इस वेदना से कितना विकल हो उठा, निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है -

अरूण निगाहें, करूण निगाहें
तरल निगाहें, सजल निगाहें
स्तब्ध निगाहें, शून्य निगाहें
देख रहीं बी0एन0 कालेज के बरामदे पर सूखा शोणित पंक
प्रभाहीन इन चेहरों पर छा रहा स्याह आतंक

× × × × ×

अगर पुलिस की नादिरशाही का शिकार हो गया
कहीं उसका भी दूल्हा, तो क्या होगा?
ज्ञानपीठ, ये दूषित होंगे बार-बार क्या?

(ऐसा क्या अब फिर फिर होगा, 1955)

इसी प्रकार सूखा और अकाल से पीड़ित जनता जब भुखमरी से मरने लगी तो अखबारों में शोर हुआ। सरकार जागी। अपने विरूद्ध उमड़ते जनमत से सरकार भयभीत थी। उसकी असफलता के किस्से उड़ते-उड़ते विदेशों में पहुंचने लगे। अपनी छवि को धूमिल होने से बचाने के लिए यहाँ भी सरकार ने पुलिस से सहायता ली। किसी भी गाँव में कोई आदमी भूख से व्याकूल होकर मरता तो सरकारी पुलिस का थानेदार जबरदस्ती उसके घरवालों से मृत व्यक्ति के किसी बीमारी से पीड़ित होकर मरने का बयान लिखवा लेता -

मरो भूख से फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से 'वह तो था बीमार'
अगर भूख की बातों से तुम कर न सकोगे इंकार
फिर तो खायेंगे घर वाले हाकिम की फटकार।।

(वह तो था बीमार !सन्।954)

सरकार की जन विरोधी नीतियों से अब तक शान्त जनता ऊब चुकी थी। अहिंसा के नारे लगाने वाले नेता जनता के अहिंसक आन्दोलनों को आसानी से अनदेखा कर जाते थे या बलपूर्वक अथवा कूटनीति से फूटडाल कर उन्हें किसी न किसी प्रकार दबा देते थे। अफसरशाही और सेठ-साहूकारों की मिलीभगत की शिकार जनता में जन आक्रोश भड़क उठा। लोग सड़कों पर विरोध प्रकट करने उतर आए। भीड़ ने ढेले चलाए। जबाब में सरकारी आदेश से पुलिस ने अश्रुगैस और गोलियाँ छोड़ीं।

ढेले चलाए
अशान्त उत्तेजित भीड़ ने

कर गई विशाक्त वातावरण को
पुलिस की अश्रु गैस .....
निरपराध-निरीह किशोर हुआ खून .....
(तो फिर क्या हुआ, 1959)

जनता की सहायता और अपराधियों तथा समाज विरोधी तत्वों से सर्वसामान्य को सुरक्षा कवच प्रदान करने के नैतिक दायित्व से धीरे धीरे भारतीय पुलिस दूर होती गई। राजनीतिक दलों ने अपनेनिहित स्वार्थों की पूर्ति के लिय मनमाने ढंग से उसका उपयोग किया। इस कारण आवश्यकता पड़ने पर भ्रष्ट पुलिस कर्मियों को राजनीतिक संरक्षण भी मिला। कालान्तर में प्रत्येक राजनीतिक दल में अपराधी, समाज विरोधी तथा भ्रष्ट तत्वों का प्रवेश होने लगा। नेता लोग वोट बटोरने के लिए माफिया गिरोहो, स्थानीय गुण्डों यहाँ तक कि डाकुओं से सहायता लेने लगे और बदले में उन्हें राजनीतिज्ञों ने पुलिस की पकड़ से अभयदान दिलाया। आपातकाल के दिनों में तो पुलिस की भूमिका में राजनीतिक हस्तक्षेप खुलकर हुआ। बाबा ने अपनी विभिन्न कविताओं में इसकी खुलकर भर्त्सना की है। मंत्र कविता, शासन की बन्दूक, राम राज, जयतिजयति जय सर्व मंगला, हरिजनगाथा, पुलिस आगे बढ़ी, पुलिस अफसर तुम नहीं गई थी आगलगाने आदि उनकी ऐसी बहुत-सी रचनाएँ हैं जिनमें अनैतिक एवं भ्रष्ट आचरण के लिए कवि ने पुलिस की आलोचना तीखी शब्दावली में की है।

6.6 आपातकाल पर व्यंग्य

सत्ता की भूख बढ़ने के साथ देश के नेताओं ने पहले तो कुछ ऐसी राजनीतिक चाले चली कि जन सामान्य उनके पक्ष में उमड़ पड़े। इसके बाद टट्टी की ओट में शिकार खेलने की योजना के अन्तर्गत एक से बढ़कर एक भ्रष्टाचार की नीतियाँ भी लागू की गईं। देर से ही सही जनता ने उसके साथ होने वाले इस क्रूर माजक को भाँप लिया। राजनीतिक दलों में सुगबुगाहट हुई। जन चेतना जागृत करने के लिए कुछ मंजे हुए अनुभवी और जय प्रकाश नारायण, लोहिया, कृपलानी जैसे ईमानदार नेताओं ने देश भर के दौरे किए। इन्हीं दिनों देश में

में आम चुनाव सम्पन्न हुए। लम्बे समय से सत्ता में विराजमान बहुत से भ्रष्ट नेता धराशायी हुए। कुछ स्थानों पर चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाए गए। इसके विरूद्ध समाजवादी नेता राजनारायण ने आवाज उठाई। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में उनके द्वारा दायर याचिका के फैसले के अनुसार देश की प्रधान मंत्री इंदिरा गाँधी पर चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने का आरोप सत्य प्रमाणित हुआ। उनका चुनाव न्यायालय ने रद्द कर दिया। इंदिरा जी ने उच्चतम न्यायालय से स्थगनादेश प्राप्त करके कुरसी पर कब्जा बनाए रखा। इसके बाद जगह जगह उनके विरोध में जनसभाओं का आयोजन होने लगा। जन विद्रोह भड़कने की आशंका से कुरसी खिसकती देखकर उन्होंने देश में आपातकाल की घोषण करा दी। अब सरकार के पास अपने विरोधियों को कुचलने तथा निर्मूल करने के लिए असीमित अधिकार थे। वह चाहे जिसको बिना कारण बताए गिरफ्तार करके जेल में सड़ने के लिए विवश कर सकती थी और इस आशंका के कारण आपात काल की घोषणा का काफी विरोध भी हुआ।

जनता के विरोध पर ध्यान देने के बजाय सरकार निरंतर निरंकुशता की दिशा में ही आगें बढ़ती रही। अपनी गद्दी को सुरक्षित बनाए रखना ही अब उसका एकमात्र उद्देश्य था। इसकी प्राप्ति के लिए कठोर से कठोर जनविरोधी अध्यादेश निकाले जाते थे। भारतीय संविधान का खुले आम उल्लंघन हो रहा था। ऐसे लोग, जो जनहित का दावा करते थे और जिनसे दमदार विरोध प्रकट करने की सर्वसाधारण को आशा थी, चुप्पी साध गए। संकट की इस घड़ी में जनता का मनोबल बढाने के लिए, जन आंदोलनों का नेतृत्व करने के स्थान पर उन्होंने सरकार की निरंकुशता का या तो खुले आम समर्थन किया अथवा उनकी जबान को लकवा मार गया। नागार्जुन को लगा कि सरकारी दमन के कारण सत्य भाषण करने का साहस ही किसी में शेष नहीं रहा। उन्होंने इसी संदर्भ में अपनी प्रसिद्ध कविता सत्य की रचना की

सोचना बन्द
समझना बन्द
याद करना बन्द

याद रखना बन्द
दिमाग की नसों में जरा भी हरकत नहीं होती
सत्य को लकवा मार गया है।

× × × × ×

वह लम्बे काठ की तरह पड़ा रहता है
सारा दिन सारी सारी रात

× × × × ×

अजी नहीं सत्य आपको बिल्कुल नहीं पहचानेगा
पहचान की उसकी क्षमता बिल्कुल लुप्त हो चुकी है
जी हॉ सत्य को लकवा मार गया है
उसे इमर्जेन्सी का शॉक लगा है
लगता है अब वह किसी का न रहा
जी हॉ, सत्य अब पड़ा रहेगा
लोथ की तरह, स्पन्दन शून्य मॉसल देह की तरह।

(सत्य, 1975)

गाँधी जी की विरासत के सीधे उत्तराधिकारी, गाँधी दर्शन के प्रचारक और व्याख्याता आचार्य बिनोवा भावे जैसे लोगों पर यह व्यंग्य सीधे सीधे चोट करने वाला था। इमर्जेन्सी के विषय में वक्तव्य देकर कौन अपनी फजीहत कराए, यही सोचकर तो कहीं विनोबा ने मौन धारण की घोषणा नहीं कर दी थी? लिखित वक्तव्य में आचार्य बिनोवा भावे ने आपातकाल को अनुशासन पर्व की संज्ञा से अभिहित करके मानों सरकार के इस निष्ठुर एवं जनविरोधी आचरण पर अपने समर्थन की मुहर ही लगा दी। सरकारी निर्देश पर भारतीय डाकतार विभाग ने अन्तर्देशीय पत्रों पर विनोबा के इस कथन को प्रकाशित एवं प्रचारित भी खूब किया।

फिर भी ऐसा नहीं कि जनमत आपातकाल के क्रूर दमन के आगे झुका हो। जयप्रकाश नारायण जेसे वृद्ध नेताओं ने जन आक्रोश के नेतृत्व की बागडोर संभाल ली। निरंकुश सरकार ने अपनी तानाशाही प्रवृति का परिचय देते हुए, विरोधी दलों के सभी प्रमुख नेताओं को रातोरात सोते हुए गिरफ्तार करके अज्ञात स्थानों पर जेलों मे रखकर क्रूर अमानवीय यातनाएँ दीं। सरकार का समर्थन करने वाले असामाजिक तत्वों की ऐसे में बन आई। सत्य और अहिंसा के सिद्धातों का मनमाने ढंग से दुरूपयोग किया गया। अपनी स्वार्थ साधना के उद्देश्य से सरकार के पक्ष में जिन लोगों ने समर्थन प्रकट किया उन्हें सत्ता का वरदहस्त भी मिला। एक ओर इस जनविरोधी कदम के कारण जनता में दबा हुआ आक्रोश, शांत ज्वालामुखी का आकार ले रहा था, दूसरी ओर सरकारी चमचे इस आक्रोश को शान्त करने के लिए अहिंसा की घुट्टी पिलाने में लगे थे। अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी के नाम का स्वार्थ सिद्धि के लिए दुरूपयोग हो रहा था। गाँधी जी की समाधि पर आए दिन इस प्रकार के ढोंग के नाटक खेले जा रहे थे।

यह अहिंसा है
इमर्जेन्सी में भी
मौसम्बी के तीन गिलास जूस मिलते हैं
नित्य-नियमित ठीक वक्त पर
दुपहर की धूप में छाँह तले पहुंचा दी जाएगी।
बारिश में लम्बू तान जाएँगे मिलिटरी वाले
हिंसा की छत्र-छाया में
सुरक्षित है अहिंसा .....
सुनती है रामधुन, सुनती है पद
आपात कालीन संकट को
इस बुढ़िया की आशीष प्राप्त है।

(अहिंसा, सन् 1975)

इस कविता में निहित व्यंग्य बड़ा ही सटीक और प्रासंगिक है। कविता के आरम्भ में ही कवि ने अहिंसा रूपी बुढ़िया की उम्र 105 वर्ष बता दी है। यदि गाँधी जी जीवित

रहते तो सन् 1975 में उनकी आयु सही 105 वर्ष की होती। 'जाने किस दुर्घटना में आधी-आधीकटी थी बाहें' पंक्ति जोड़कर व्यंग्य को धारदार बनाया है कि आपात काल में अहिंसा असहाय एवं अपंग की भांति अशक्त हो गई है। उपर से तुर्रा यह है कि इस 'अहिंसा' का अस्तित्व हिंसा की छत्र छाया में सुरक्षित है परन्तु इसलिए और तभी तक जब तक आपालकालीन संकट को इसका समर्थन मिलता रहेगा। यह काम नागार्जुन जैसे निर्भीक व्यंग्यकार ही अपनी कविता के बल पर कर सकते थे कि उन्होंने सरकार और अहिंसा के तथा कथत ढोलचियों के ढोल का भंडाफोड कर डाला। इसके कारण ही कवि को भी जेल यात्रा करनी पड़ी नागार्जुन को जो सबसे अधिक नागवार लगा वह था वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानियों का इस स्थिति में मूक दर्शक बने रहना। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'अगले पचास वर्ष और ..... ' में तरूणों की टोलियों पर होने वाले पुलिस के लाठी चार्ज से अविचलित इन भीष्म पितामह की तरह व्यवहार करने वालों के सोए हुए जमीर को जगाने के लिए कहा 'लेटे रहें युगावतार पितामह भीष्म, प्रवचनरत हृदय परिवर्तनकारी।' युवा पीढ़ी को उचित मार्ग दर्शन न करके अपने कर्तव्य से विमुख बुद्धिजीवी वर्ग से भी नागार्जुन को कम खिन्नता नहीं है। वह उन्हें भी इसी कविता में धिक्कारते हुए बोल उठते हैं -

करें निःसंकोच विदुर बुजुर्ग तरूण कन्धों की सवारी।
मस्त रहें धूतराष्ट्र, चढी रहे समग्र क्रांति की खुमारी।

आपातकाल के इस दौर में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं पर भी सेंसर का प्रतिबंध लगा दिया गया था। इने गिन सम्पादकों ने सेंसर की स्याही दिखाई अथवा संपादकीय टिप्पणी के कॉलम को रिक्त ही छोड़कर प्रकाशित करते हुए अपना क्षोभ व्यक्त किया। संविधान में वर्णित मौलिक नागरिक अधिकारों को निर्ममता पूर्वक कुचल डाला। जिसने भी चीं चपट की मीसा के अन्तर्गत बिना वारंट और जगानत जेल के भीतर कर दिया गया। जेलों में अमानवीय दिल दहलाने वाली यातनाएँ दी गई। युवकों के नितम्बों पर डंडे मार कर कूल्हे की हड्डियां तोड़ दी जाती थीं। युवतियों के भगांकुरों में बिजली के नंगे तार से झटके दिए जाते थे।

अनेक लोगों के नाखूनों में बॉस की कीलें ठोंक दी गईं। दर्दनाक यातनाओं के इस वातावरण से जनमानस हतप्रभ रह गया। देश भर में शमशान की उदासी ही नहीं एक सन्नाटा सा व्याप्त हो गया। चारों तरफ दहशत का ऐसा माहौल फैल गया कि लोग आपस में खुल कर हंसी मजाक या राजनीतिक चर्चा करने से भी डरने लगे। जनकवि नागार्जुन ने इस आतंक का वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में किया है।

लगता है
हिन्द के आसमान में
अब सूरज सहम कर उगेगा
अपनी किरणें बिखेरेगा डरता डरता, कांपता-कांपता
लगता है
हिन्द के आस मान में
ठीक दोपहर के वक्त
सूरज फ्यूज हो जाएगा
जी हाँ, वैशाख जेठ का प्रखर प्रचण्ड मध्याह्न
बिना ग्रहण के भी डूब जाएगा
धुन्ध के माहौल में
सूरज पर भी लागू होंगे
'आपातकालीनस्थिति वाले आर्डीनेन्स'

(सूरज सहम कर उगेगा 1975)

इन्हीं दिनों के जेल के भीतर रहकर कवि ने स्वयं सरकारी निर्देश पर पुलिस की बर्बरता के शिकार होते निर्दोष लोगों की दयनीय दशा देखी। जेल के भीतर और बाहर चहुं ओर निराशा का कुहासा था। नेतृत्व के अभाव में कोइ राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन होने की जनता की आशाएँ धूमिल हो रही थीं। सब लोग हतोत्साह होकर हताशा के वातावरण

में सांस ले रहे थे। जनचेतना यदि लुप्त नहीं तो सुप्त अवश्य ही हो चली थी। निराशा के इस कुहासे को चीर कर प्रकाश की किरण देखने की लालसा सबके हृदय में विद्यमान थी। हताशा से चेतनाशून्य की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। जन कवि नागार्जुन ने इस खतरे को भाँप लिया। वह जनसाधारण को आशावादी बनने की प्रेरणा देने के लिए कृत संकल्प हो उठे। जनचेतना जागृत करने के उद्देश्य से ही उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ मानो कह डालीं -

यों ही गुजरेंगे नहीं दिन
बेहोशी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में
आएँगी वापस जरूर हरि यालियाँ घिसी - पिटी झुलसी हुई दूबों में।
(होते रहेगे बहरे ये कान जाने कब तक, 1976)

यह सर्वविदित तथ्य है कि नागार्जुन की आशा के स्वर साकार हुए। इमर्जेन्सी हटी आम चुनाव हुए। इमर्जेन्सी लागू करने वालों को जनता ने करारी पटखनी दी। भले ही नई सरकार ज्यादा दिनों तक नहीं चल पाई। फिर भी आने वाले युग के लिए राजनीतिज्ञों को एक सबक मिला कि जनविरोधी नीतियाँ अपनाने का क्या परिणाम भोगना पड़ता है।

6.7 कॉमन वेल्थ और नेहरू की विदेश नीति

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि परतंत्रता की लम्बी अवधि में ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को बुरी तरह शारीरिक एवम् मानसिक यातना दी। स्वदेश प्रेम की चर्चा करना भी अंग्रेज सरकार के कोध में अग्नि का काम करता था। सभ्यता की दुहाई देने वाली अंग्रेज सरकार ने हमारे देशवासियों के साथ असभ्यता और अशिष्टता का व्यवहार किया। अंग्रेजों की नजर में यूरोपियन नस्ल को छोड़कर अन्य किसी भी देश के नागरिक मनुष्य कहलाने के अधिकारी न थे। इंग्लैंड में और कई बार तो भारत भूमि पर भी अनेक लज्जाजनक घटनाएँ घटित हुईं। रेलगाड़ी के डिब्बे में अंग्रेज यात्री के होते हुए कोई भारतीय उस डिब्बे में बैठकर यात्रा नहीं कर सकता था। गोरों की दृष्टि में भारतवासी काले कुत्ते थे। स्वाभाविक था कि इस

प्रकार के व्यवहार की घटनाओं की आजादी के बाद भी लम्बे स्मय तक भुलाय नहीं जा सकता था। जिस समाज में हमें कभी सम्मान जनक व्यवहार की आशा न हो, उससे जबरदस्ती जुडे रहने मे कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता। फिर भी भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कामन्वेल्थ की सदस्यता में न जाने क्या देशहित देखा। अंग्रेजीसत्ता काल में आम जनता ने जो कष्ट और अपमान झेता था, वह इतनी आसानी से भुला देने की चीज भी नहीं थी। ब्रिटेन एक साम्राज्यवादी देश है। उसकी आर्थिक नीति पूंजीवाद को प्रोत्साहन देने वाली है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन साम्राज्य का धीरे धीरे विखंडन हो रहा था। एक के बाद एक एशियन और अफ्रीकन देश उसकी दासता से या तो मुक्ति पा चुके थे या मुक्ति के लिए सघर्ष कर रहे थे। स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत एवं प्रयत्नशील देशों मे अंग्रेज हुकूमत दमन और अत्याचार की नीति अपनाए हुए थी। ऐसे में कामनवेल्थ से जुड़े रहना अफ्रेशियन एकता और स्वतंत्रता के समर्थन के विपरीत था क्योंकि कामनवेल्थ की अध्यक्षता के पद पर इंग्लैंड के राजा, रानी का ही अधिकार होता है। नागार्जुन को यह भारतीय जनमानस विरोधी नशीति उपयुक्त नहीं लगी। इसीलिए उन्होंने अपनी विभिन्न कविताओ में पडित नेहरू की, इस नीति के कारण जमकर खबर ली है।

बोलो पडित, क्या नीयत है?
इस डिबिया पर श्वेत-शिला का स्तूप बनेगा?
बनियों की इंग्लिशिया रानी के हाथों उद्घाटन उसका करवाओंगे?
बन्धु तुम्हारी गतिविधि से हम सशंक हैं
झूठ कहूँ क्यों विगत शोक है, निरातंक है
कथनी कुछ थी, करनी कुछ है
समझ न पाता, कामनवेल्थी छकडे पर क्यों तुम सवार हो।

(जयति जयति जय सर्वमंगला, 1952)

इस प्रकार बाबा ने पडित नेहरू के लच्छेदार चुनावी भाषण और व्यावहारिक

रूप में उनकी राजनीति का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया। उन्हें इस बात का भी दुख है कि स्वयं बिटेन का शासन जब डावॉडोल स्थिति मे जर्जर प्रायः दशा में है, उस उपनिवेशवादी संगठन का पल्ला थामे रहने में कौन सा देशहित है। कवि को लोकहित की भावना और देश की सुरक्षा का सतत ध्यान रहता है। अग्रेज व्यापरियों की शोषण की नीति के कारण न केवल भारत की आर्थिक दशा क्षीण हो गई बल्कि उनकी पूंजीवादी दृष्टि और नीति से रूस, चीन तथा पूर्व यूरोप के देश भी ब्रिटेन के विरोधी बन गए थे। पेटी में पिस्तौल लटकाए गोरी चमड़ी वाले पादरियों के भेष में देश के विभिन्न प्रान्तों में बाइबिल की प्रतियाँ बांटते फिर रहे थे। भारतवासियों को धर्मपरिवर्तन करके ईसाई बनने की प्रेरणा देते, फिर उन्हें ईसाई धर्मावलम्बी राष्ट्र इंग्लैंड के प्रति स्वामिभक्ति और मित्रता की प्रेरणा देते थे। भावावेश मेंआ करकवि यंहॉ तक कह उठताहैकियह कामनवेल्थ के रूप में दानवदल है। जितनी जल्दी हो सके इससे सम्बन्ध तोड़ देने में ही हमारी भलाई है।

समझ न पाता इन्द्र सिंह ने कौन बड़ा अपराध किया है
जिसके कारण बेचारे का पीछा करती फौज तुम्हारी
रौंद रही नेपाल समूचा।
समझ न पाता क्यों निरीह गुर्खों को निश-दिन
बूचर अंग्रेजों की खिदमत में भेज रहे हो बेखटके क्वालालंपुर
वीर मलायी जनता के वे शत्रु तुम्हारे मित्र हो गए कब से
मैं तो समझ न पाता!
संभलो, संभलो पंडित नेहरू, दानवदल से नाता तोड़ो
ऑख मिचौनी बहुत हुई बस, महःकाल का सत्यानासी दामन छोड़ो

(जयति जयति..... , 1952)

सन् 1947 से पहले तो अंग्रेजों ने भारतवासियों का जमकर शोषण किया ही था वह अब भी छद्मवेश में आकर पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के पक्ष में भारत में

जनमत पैदा करने की कोशिश में लगे है। भारती विदेशनीति के निर्धारकों का कर्तव्य तो यह था कि वह भारत की तरह ही नवस्वतंत्र देशों और ऐशिया-अफ्रीका में साम्राज्यवाद के शोषण के शिकार देशों की जनता का समर्थन करने वाली नीति अपनाते। इससे अपने पड़ोसी देशों में भारत की छवि उज्जवल होती। भारतीयों में स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना का विकास होता। अंग्रेज और अमेरिकन जासूस पर्यटकों के वेष में भारत भर में जासूसी कर रहे थे। लोहिया ने संसद में इसका सबूत पेश करते हुए इन लोगों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की मांग की थी। देश के कर्णधारों की इस परामुखपेक्षी विदेशनीति के कारण स्वर्गस्थ देशभक्तों की आत्मा को भी संताप होता होगा। इसी संदर्भ में उन्होंने हिन्दी कविता में आधुनिक युग के प्रणेता एवं प्रगतिशील चिन्तन के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भी याद किया है। भारत-दुर्दशा के लिए जिन्हें जिम्मेदार ठहराकर 'हरिश्चंन्द्र जू' घृणा से थूक देते थे उन्हीं गोरी चमड़ी वालों के प्रति हमारे जननायक अपने हृदय का प्यार उंड़ेलते फिर रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद भी शासननीति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ।

भाव उन्हीं का ढब उनका, उनकी ही बोली
दिल्ली के देवता पिरंगिन के हमजोली
सुनना ही पंद्रह साल तक अंग्रेजी बकवास है
तन पर आजाद, हरिचंद जू, मन गोरन कौ दास है
कामनवेल्थी भंवर में फंसी बेचारी
बिलख रही है रह रह भारत माता प्यारी।।

(भारतेन्दु, 1950)

कामनवेल्थ अध्यक्ष के नाते जब इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ भारत आईं तो उनके स्वागत सत्कार में भारत सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। अपने देशवासियों के भूख से बिलखते, सूखे मुर्झाए चेहरे वाले बच्चों के प्रति तो इस सरकार ने कभी ध्यान नहीं दिया। एक निर्धन देश द्वारा किसी विदेशी अतिथि के स्वागत पर इतना अपव्यय करना कहाँ तक शोभाजनक है? शायद ब्रिटिश हुकूमत द्वारा किए गए दमन अत्याचार और शोषण की यादे कवि

के मानस पर ताजा हो उठीं। उन्हें आततायी, साम्राज्यवादी देश की उस मालिका के स्वागत में सरकारी तंत्र का अनाप शनाप खर्चा और ताम झाम अच्छी नहीं लगी। यह तो सरासर देशाभिमान और राष्ट्रीय गौरव का अपमान सा लगा।

आओ रानी हम ढोएँगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की
सैनिक तुम्हे सलामी देंगे
लोग बाग बलि-बलि जाएँगे
दृग दृग में खुशियाँ छलकेंगी
ओसों में दूबें झलकेंगी
प्रणति मिलेगी नए राष्ट्र के भाल की

(आओ रानी हम ढोएँगी पालकी, सन् 1961)

पश्चिमी राष्ट्रों की पूंजीवादी नीतियों से नेहरू की समझौतावादी नीति का बाबा नागार्जुन ने विरोध किया है। उनकी अनेक कविताएँ उनके हृदय की इस पीड़ा का परिचय देती है कि प्रगतिवादी एवं सर्वहारा नीति के समर्थक देशों की अपेक्षा नेहरू का झुकाव और लगाव अधिक है। झण्डा, आइजनहावर, बताऊं, छेदी जगन, कैसा लगेगा तुम्हें तथा 'तुम रहजाते दस साल और' जैसी कविताएँ तत्कालीन सत्ताधारी पार्टी की विदेश नीति पर आक्रोश के साथ प्रश्न चिन्ह भी लगाती जाती है।

6.8 गांधी के नाम पर राजनीतिक लाभ

स्वाधीनता आंन्दोलन में त्याग और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के कारण गाँधी जी देश की समग्र जनता के हृदय हार बन गए। उनके एक संकेत पर उन दिनों देशवासी मर मिटने के लिए तैयार रहते थे। देश के विभाजन के समय हुई दर्दनाक घटनाओं से महात्मा गान्धी बड़े मर्माहत हुए। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए उन्हीं दिनों अनशन भी किया।

हिन्दू मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय के अनुयायियों को वह एक समान हृदय से प्यार करते थे। इसके अतिरिक्त हरिजनों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा सुधारने के लिए उन्होने प्रयत्न किया। इसके कारण हरिजन एवम् समाज के अन्य पिछड़े वर्ग के लागें में उनकी छवि एक मसीहा जैसी थीम उनकी मृत्यु के उपरान्त लग्भग प्रत्येक भारतीय का हृदय रो पड़ा।

गाँधी जी राजनीतिक उत्तराधिकारी बने कांग्रेसियों ने उनकी इस छवि से भरपूर लाभ उठाने की कोशिश की। जब जब भी चुनाव हुए गाँधी जी के अनुयायी होने का दावा करने वाले कांग्रेसी प्रत्याशी जनता की सहानुभूति जगाकर वोट बटोरने में सफलता प्राप्त करते रहे। इस प्रकार महात्मा गाँधी का नाम इन भ्रष्ट नेताओं के लिए वरदान सिद्ध हुआ। वोट मिलने के बाद सत्तासीन होने पर कभी भूलकर भी उनहोंने गान्धी जी के सत्य, अहिंसा, सादगी और बलिदान के सिद्धान्तों को याद नहीं किया। प्रत्येक वर्ष गाँधी जयन्ती और 30 जनवरी पर राजघाट जाकर गाँधी समाधि पर फूल चढाकर, फोटो खिंचवाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली गई। देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य को घटाने के स्थान पर बढावा ही दिया। चुनाव क्षेत्रों में जिस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अधिक होती उसी सम्प्रदाय के प्रत्याशी को चुनाव के मैदान में उतारा जाने लगा। चर्खा कातने के सिद्धान्त के अनुशीलन के लिए ग्रामीण गृहउद्योगों को बढावा देने के लिए ठोस कार्य नहीं होता था। हाँ, खादी के वस्त्र पहनना उनकी राजनीतिक पहचान जरूर बन गई। इसीलिए नागार्जुन को लगा कि खादी और गादी (गद्दी) तथा खादी और मलमल की साँठगाँठ के द्वारा आम आदमी के शोषण का षडयंत्र चल रहा है।

साधते सत्ता-अहिंसा - योग
लगाते फिर भी सब कुछ भोग
पहनते हैं खद्दर का चोग
नहीं है देस कोस का सोग
राज से न हो जाए वियोग

इसी से फैलाते हैं फोग
वोट पाने का है उद्योग
भिड़ाते हैं छल बल का जोग
बतन को बना दिया बाजार
प्रजा को छोड़ दिया मझधार

(चना जोर गरम ..... 1952)

गाँधी जी ने जिस रामराज की कल्पना की थी वह लोगों को हर प्रकार के अभाव और निर्धनता से छुटकारा दिलानेवाला था। परन्तु गाँधी जी के इन उत्तराधिकारियों ने जनता की दशा सुधारने की ओर कभी भूलकर भी ध्यान नहीं दिया बल्कि अंग्रेजी और अमेरिकी पूंजीवाद की ओर ही निरन्तर देश को बढाते रहे। देश के सेठ साहूकारों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से ही भारी उद्योग लगाए। इन उद्योगो के लिए जमीनें तो किसानों को जाती और कमाई से घर भरते सेठ साहूकारो के। पूंजीपतियों से होने वाली दलाली से नेतागण और उनके परिवार वाले वायुयानों में बैठकर देश-विदेश की यात्राएँ करते। सेठों को कारखाने के लिए सस्ते रेट पर जमीन, कोयला, कच्चा माल और बिजली की सप्लाई होती। कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का कम मजदूरी देकर शोषण किया जाता है। जो कल तक जगींदार थे वह सेठों के मिल मजदूर होकर उनकी दया पर जीवित रहने के लिए मजबूर हो गए। किसान और मजदूरों की व्यथा-कथा सुनने वाला कोई न रहा। जब गाँधी के दिखाए रास्ते का अनुसरण करते हुए श्रमिक वर्ग ने धरना अथवा अनशन किया तो उन पर सरकार के आदेशानसार पुलिस ने बेरहमी से डंडे बरसाए।

जमींदार है साहूकार हैं बनिया हैं व्योपारी है
गाँव गाँव की शहर शहर की जिले -जिले की सूबों की
कांग्रेस के अन्दर घुस आए जितने भी अत्याचारी हैं
अन्दर अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं
गांधी जी की कसमें खाखा कौन किसे ठग सकता है
ठण्डा चूल्हा फूटी हाँड़ी, नहीं कहीं कुछ पकता है

(रा॰ ा सन् 1949)

गाँधी जी के नाम पर केवल वोट बटोरने की राजनीति करने वाले इन कांग्रेसी नेताओं से जनसाधारण को भारी निराशा हुई। अपना भविष्य बनाने के अतिरिक्त इनका सार्वजनिक कल्याण के कार्यों से अब दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहा था। गांधी जी प्रतिदिन एक भजन प्रार्थना के समय गाया करते थे -

'वैष्णव जन तो तेणे कहिए जे पीर पराई जाणे रे'

परन्तु गाँधी जी के अनुयायियों के सिद्धान्त अब बिल्कुल बदल चुके थे। दूसरे के दुख से कातर होकर उसके दुख को दूर करने के लिए प्रयत्न करने की तो वह सोच भी नहीं सकते थे। खद्दर के वेश में भोली भाली जनता को ठगने वाले भूलकर भी किसी दीन-दुखी पर दया नहीं दिखाते। नागार्जुन ने गांधी के इन चेलों की काली करतूतों का इस प्रकार वर्णन किया है -

कांग्रेसजन तो तेणें कहिए जो पीर आपनी जाणे रे
पर दुख में अपना सुख साधे, दया भाव न आणे रे
तीन भुवन मां ठगे सभी को, शरम न राखे केनीरे
टोपी कुर्ता धोती खद्दर धन धन जननी तेरी रे।

(कांग्रेसजन तो तेणें कहिए ..... सन् 1951)

जब भी कभी राजनीतिज्ञों को मौका मिलता वह गांधी जी के नाम पर लोगों को भरमाने की नई नई युक्तियाँ निकाल लेते। यह मौका स्वतंत्रता की रजतजयंती हो सकता था अथवा गांधी जन्म शताब्दी। गाँधी जी ने अपने राजनीतिक जीवन में कई जनहितकारी आन्दोलन भी चलाए और उनमें उन्हें जनता का पूरा समर्थन मिला। ऐसा ही एक आन्दोलन था 'नमक कानून' तोड़ने के लिए गांधी जी की ऐतिहासिक दांडीयात्रा। अर्थव्यवस्था और भ्रष्टाचार के कारण उभरते हुए जन असंतोष के कारण सरकार की साख को खतरा उत्पन्न हो गया था। इन समस्याओं का न तो शायद सरकार के पास निदान था और न इन्हें सुलझाने के लिए अपेक्षित समय ही था। उधर

चुनाव बिल्कुल निकट आ धमके थे। ऐसे में जनता का ध्यान महत्वपूर्ण समस्याओं से हटाने के लिए सरकार को किसी आकर्षक कार्यक्रम की तलाश थी, जिससे तात्कालिक राजनीतिक लाभ मिल सके और जनता सरकारी असफलताओं के प्रति आन्दोलनकारी रूख न अपना सके। स्वाधीनता आंन्दोलन के इतिहास में गोते लगाकर कोई सरकारी चमचा सरकार की असफलता को ढकने के लिए, गाँधी जी के प्रति श्रद्धांजली अर्पित करने का सुनहरा मौका ढूंढ ही लाया। अब जोर शोर से गांधी जी की 'नमक कानून तोड़ो' के सिलसिले में की गई दांडी यात्रा की रजत जयन्ती मनाने का सरकारी उत्सव शुरू हुआ। कांग्रेसी सरकार को जनहित के लिए समर्पित सिद्ध करने का इससे अच्छा नुस्खा इस समय शायद ही मिलता। बस गांधी जी के चैक को भुनाने की कोशिश शुरू हो गई।

दांडी तक पहुंचोगे
क्या और आगे नहीं जाओंगे?
लाख लाख गांव
इस नाटक से
क्या भला पाएँगे।
रोटी नहीं, मंहगाई खाएँगे
दाम नहीं दाना कैसे लाएँगे
दांडी-मार्च में तुम्हारा यश गायेगे
किसको ओढेंगे
किसको विछाएँगे
ढेर सारे गांधी हैं
नाटक में टूटेगा नमक-कानून

× × × × ×

दांडी मारच का फल चक्खेगा।
राजू भैया की इज्जत रक्खेगा!!

(नाटक में टूटेगा नमक कानून, सन् 1988)

नागार्जुन ने अपनी कविता के माध्यम से विभिन्न अवसरों पर यह भली भांति सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है कि गांधीवादी होने का ढोंग तो प्रत्येक दल की सरकार ने किया परन्तु अपने अपने दलीय तथा निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए। वस्तुतः गांधी दर्शन अथवा गांधी जी के जीवन से किसी मंत्री ने कभी कोई शिक्षा नहीं ली। कभी लोकहित की भावना से व्यावहारिक रूप में गांधी जी के सिद्धान्तों का कार्यान्वयन करने की कोई ईमानदार कोशिश भी नहीं की गई। जनता दल की सरकार ने भी गांधी जी के नाम पर जनता से सहानुभूति अर्जित करने के लिए शायद महात्मा गाँधी के पौत्र राजमोहन गाँधी को अपने प्रत्याशी के रूप में ही सन्।989केआमचुनाव में मैदान में उतारा था। चुनाव जीतने के बाद वही ढाक के तीन पात।

6.9 पूँजीवाद की आलोचना

सरकार की अर्थनीति से जब पूंजीवाद मनमाना मुनाफा कमाने लगता हैं तो जनसाधारण पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जनजीवन से जुड़े प्रगतिशील कवि को सरकार द्वारा पूंजीपतियों के प्रति नरम रूख अपनाते देखकर हार्दिक पीड़ा होनी स्वाभाविक है। किसान और मजदूर ही नहीं निम्नमध्यवर्गीय भारतीय नागरिकों को अपने परिवार का भरण पोषण करना भी दुस्साध्य लगने लगा। दूसरी ओर पुराने पूंजीपतियों को तो सरकार का सहयोग मिल ही रहा था क्योंकि उन्होंने अपनी पूंजी का शिकंजा सरकार के चारों तरफ कस दिया था। सरकार की गलत व्यापार एवं उद्योगनीति से लाभ उठाकर एक नवधनाढ्य वर्ग भी समाज में उभरने लगा। सीमेंट, कोयला, अनाज, चीनी और कपड़ा तक पर राशन व्यवस्था तो लागू की गई परन्तु उसकी वितरण व्यवस्था में ऐसी पोल थी कि जनता को खुले हाथों लूटा जाने लगा। खुले बाजार में यह सभी वस्तुएँ नदारद और अप्राप्य थीं परन्तु चोर बाजार में ऊंचे दामों पर कोई वस्तु कितनी भी मात्रा में सुलभ थी। परमिट, कोटा, लाइसेंस राज के कारण जनता की दरिद्रता इस कदर बढ़ गई कि अनपढ़ जनता को यह कहते भी सुना गया कि ऐसी आजादी से तो अंग्रेजों का शासन ही अच्छा था। राजनीतिज्ञों के सगे सम्बन्धियों अथवा उनसे सांठ गांठ रखने वालों को ही गल्ले की

सरकारी दूकान का लाइसेंस मिलता था। 'सइयाँ भए कोतवाल तो डर काहे का' की कहावत चरितार्थ होने लगी जनता यदि संगठित होकर ऐसे भ्रष्ट दुकानदारों के खिलाफ कुछ शिकायत या शोर शराब करती तो उस पर कोई सुनवाई ही नहीं होती थी। यदि जनआन्दोलन भडकने का अंदेशा महसूस होता तो समाज के इन उभरते नवकुबेरों की सुरक्षा के लिए सरकारी पुलिस तैयार रहती थी। डंडे बरसा कर झूठे मुकदमें में फंसा कर जन साधारण के प्रतिनिधियों को सताया जा रहा । फलस्वरूप इसी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे बड़े पूंजीपति टाटा, बिरला डालमिया के अतिरिक्त अब समाज के शोषक नए पूंजीपतियो की भी संख्या बढ़ने लगी है। आजादी के तुरन्त बाद ही कवि ने इस खतरे को भांप लिया था -

खादी ने मलमल से अपनी साँठ- गाँठ कर डाली है
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दीवाली है
जोर जुलुम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो
समझ न पाता हूं कि हुकूमत गोरी है या काली है।

(रामराज सन् 1949)

भूल- चूक से कंट्रोल की दुकान पर माल बिकने के लिए रख भी दिया गया तो अनाज में कंकड़- पत्थर और चीनी में चोकर-भूसी की मिलावट रहती थी। कपड़े पर सरकारी रेट की लगाई मुहर को धोकर साफ कर दिया जाता था। आजादी से पहले द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में आवश्यक वस्तुएँ दुर्लभ होने पर नागार्जुन ने 'मन करता है (सन् 1945) कविता लिखी थी। उन्हें शायद यह आश भी न रही होगी कि आजादी के बाद भी यह धनपति माल को अंडरग्राउंड करके कृत्रिम अभाव की ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे कि साधारण नागरिक के लिए जिन्दगी जीना दूभर हो जाएगा। इस कल्पनातीत मंहगाई और अभाव की स्थिति में उनकी लेखनी से निम्नलिखित शब्दावली फूटती है -

दुइसेर कंकड पिसता फी मन पिसान में
घुस बइठा है कलजुग राशन की दुकान में
लगती है कंट्रोल कभी फिर खुल जाती है
कपडों पर से पहले कीमत धुल जाती है
एक जोंक वर्ग को छोड़ कर सब पर स्याही छा रही

बढ़ा चढ़ा तउ अखबारन का कारबार है
पांती पांती में पूंजीवादी प्रचार है।

(भारतेन्दु सन् 1950)

नागार्जुन ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बढते हुए पूंजीवाद पर अपना रोष बार बार प्रकट किया है। वाणिक्य पुत्र (1952) मंत्र कविता (1969) तीनों बंदर बापू के (1969) बताऊँ (1953) झण्डा (1955) आदि कविताओं में प्रकारान्तर से पूंजीवाद का विरोध किया है। उन्हेंने अनुभव किया कि बजट में बढ़ते हुए घाटे को पूरा करने में जनता की रीढ़ की हड्डी टूटी जा रही हे। उधर व्यापारियों से राजनीतिक साँठ गाँठ के कारण पूंजी का केन्द्रीयकरण कुछ लोगों के हाथों में होता जा रहा है। यह तो जनतंत्रीय समाजवाद के साथ खुला खिलवाड़ हो रहा है। पूंजीपतियों का शिंकजा निर्धन जनता पर जकड़ता ही जा रहा है। श्रमिक को पेट भरकर खाने लायक मजदूरी नहीं मिलती। किसानों को हाडतोड़ परिश्रम करने के बाद भी अपनी पेदावार आढ़तियों के हाथ उनके तयशुदा भाव पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

धन-पिशाच की चक्र चेतना घूम रही है।
शासन की गति किस पीनक में घूम रही है?
क्रियाहीन चिन्तन का कैसा चमत्कार है।
दस प्रतिशत आलोक और बस अन्धकार है।

(और बस अन्धकार है, सन् 1965)

पूंजीवाद से बढ़ते हुए खतरे के प्रति जनता और सरकार को सावधान करने के लिए नागार्जुन ने पूंजीवाद पर अपनी विभिन्न कविताओं में व्यंग्य किया है। सरकार को पूंजीवाद के बढ़ते कदम रोकने के लिए तथा जनसाधारण को उसके विरूद्ध संगठित होकर मोर्चाबन्दी करने के लिए ललकारा है।

6.10 फासीवाद पर व्यंग्य

मनुष्य जाति की यह विशेषता है कि वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के

लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही है। सभ्यता और संस्कृति के निर्बाध , समुन्नत और कल्याणकारी विकास के लिए आवश्यक है शांति और सुरक्षा के वातावरण की। नवोदित राष्ट्रों की जीर्ण-शीर्ण आर्थिक दशा के सुधार और आत्म निर्भरता प्राप्त करने के लिए तो अमन-चैन का होना बहुत ही जरूरी है इस मानवतावादी शुभकार्य में प्रत्येक नागरिक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। 'उदारचरितानाम् तुवसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात विशाल हृदय लोगों के लिए तो समग्र संसार एक विशाल संयुक्त परिवार के समान होता है। पारिवारिक कल्याण के लिए सभी का सहयोग वांछनीय होता है। संसार की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय विरादरी के प्रत्येक राष्ट्र का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है। फिर भी मानव स्वभाव बड़ा विचित्र एवं जटिल है। संकीर्ण और उदार दोनों प्रवृतियों का अद्भुत द्वंद्व मानव-मन में निरन्तर चलता रहता है। जब उदार भावनाएँ प्रबल होती है, तब जनकल्याण एवं परोपकार के लिए समर्पित मनुष्य ही देवता स्वरूप होता है। संकीर्ण एवं स्वार्थ जन्य कार्यों में लिप्त मानव अपनी इंसानियत खोकर दानवता के जाल में उलझ कर रह जाता है। यह देव-दानव संघर्ष सदा से इस संसार में चलता आया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में, हिटलर और मुसोलिनी के स्वार्थ से अभिभूत संकीर्ण फासीवादी विचारों के कारण विश्वभर में सांस्कृतिक विकास के रथ का चक्का जाम हो गया । हिरोशिमा और नागासाकी जैसे सुन्दर नगरों का अस्तित्व भी फासीवाद ही लील गया। विश्वयुद्ध के बाद भारत में गाँधी के नेतृत्व में अहिंसा, सहिष्णुता और भाई चारे की भावना जैसे मानवीय सद्गुणों की सफलता से मानवता के पक्षधरों का उल्लसित होना स्वाभाविक था। किन्तु मानवीय सद्गुणों के विकास की इस सुखद घटना पर 30 जनवरी 1948 को वज्रपात हुआ। फासीवादी ताकतों को गांधी जी के शान्ति प्रयास एवं उदारवादी विचार रूचिकर नहीं लगे। गाँधी जी की नृशंस हत्या से देश विदेश में सभी जनवादी विचारधारा वाले लोग हक्के बक्के रह गए। भारतीय जनता फासीवाद के इस घिनौने स्वरूप को बेनकाब एवं समूल नष्ट करने के लिए भड़क उठी। महामानव गांधी की हत्या से मानों मानवता का हृदय विदीर्ण हो गया। जनवादी

विचारों के धनी नागार्जुन की कविता में फासीवाद के इस कुकृत्य की भर्त्सना सम्पूर्ण राष्ट्र की जनभावना की परिचायक है -

लाख छिपे नीड़ों में फिर भी अत्याचारी बच न सकेंगे
अब वे चक्रव्यूह दूसरा रच न सकेंगे
काँटे कहाँ, कहाँ रोड़े हैं
कहाँ गढ़ा है, कहाँ रेत है
सभी साफ हो गया जनता सचेत है
कोटि कोटि कंठों से निःसृत सुन-सुन कर आक्रोश
भगवा ध्वज धारियों के उड़े जा रहे होश

× × × × ×

यातुधान की अद्भुत माया मुझसे कही न जाए
कौन बताए काल-नेमि की लीला अपरंपार
हाँ बापू, निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ
हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे -
हिन्दू-सिख-मुस्लिम फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि जब तक खाली होगी .....
सम्प्रदाय वादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खंडहर न बनेंगे
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा।

(शपथ, 1948)

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्न होने लगे। महाशक्तियों ने अपने प्रभुत्व के लिए भी तरह तरह की कूटनीतिक चाले इन्हीं दिनों चलीं। एशिया और अफ्रीका के विभिन्न देशों में आजादी के लिए

आन्दोलन और संघर्ष का दौर चला। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी भेड़ियों ने इन नवोदित राष्ट्रों में आपसी फूट के बीज भी बोए। उससे लाभ उठाने के लिए इन बडी ताकतों ने अपने सामरिक अड्डे भी बनाने के प्रयत्न किए। वियतनाम, कांगों, फारमोसा, बर्मा, सिंगापुर आदि देशों में फासीवादी ताकतों के षडयंत्र से गृह युद्ध भी हुए। नागार्जुन ने फासीवाद के इस बढ़ते खतरे को पहचानते हुए पंडित नेहरू को सावधान किया -

अमरीका, अंग्रेज-फ्रेंच-डच चालक होंगे
बर्मा विअतनाम सिंगापुर हाँगकॉग, बैंकाक तोकिओं
कहीं पड़ाव पड़ेगा इनका।
रामराज का निर्मल नील गगन जो ठहरा
इसमें हो कर आते-जाते रावण के विध्वंसी पुष्पक
निकट पूर्व क्या, दूर पूर्व क्या, सकल एशिया।
मृगयोचित रमणीय क्षेत्र हैं इनके खातिर।
रे एक-एक कर लील जाएगा संस्कृति के सारे प्रतीक यह विकट वृकोदर
ऐटमबम की बू आती है, ले रहा जंभाई
हिटलर-मुसोलिनी का भाई।।

(जयति जयति जय सर्वमंगला, 1952)

कवि का व्यक्तित्व चेतना का धनी होता है। साधारण जन को किसी भावी घटना के लक्षण समझने के लिए काफी समय चाहिए। किन्तु कवि चेतना इतनी प्रबल होती है कि वह समाज और राजनीति के वातावरण को सूंघ कर ही आने वाले समय में होने वाली घटना का सही सही अनुमान लगा सकता है। यथार्थवादी परंपरा के उन्नायक प्रगतिशील चेतना संपन्न नागार्जुन ने देश में फासीवाद ताकतो के मनसूबों पर निरन्तर कड़ी निगरानी बनाए रखी है। वह फासीवाद के बदले हुए मुखौटे को भी पहचान लेने की क्षमता रखते हैं। अपने आस पास घटने वाली समान्य से सामान्य घटना के प्रति भी वह सजग बने रहते हैं। देश के

सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण की प्रत्येक हलचल का वह सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद संभावित दुष्परिणाम का पूर्वानुमान लगा लेते हैं। लोकहित की भावना उनके अन्तस पर जमी रहती है। संभावित खतरे को पहचानते हुए वह फासीवाद के छिपे हुए घिनौने तथा क्रूर पंजों की चपेट से सभी को सावधान करने के अपने मानवीय दायित्व का निर्वाह भी करते हैं।

नृत्यरत पिशाच का चटख-विकराल मुखौटा
होता गया और चटक और भी विकराल
आकार बढ़ता गया उसका
नृत्यरत पिशाच की बेडौल वीभत्स काया
आकार में बढ़ती गई
दुगुनी-चौगुनी-अठगुनी-दसगुनी ....
छतों पर सरकने लगी क्रमशः
किंभूत किमाकार उस पिशाच की
काली डरावनी छाया .....

(महादैत्य का दुस्स्वप्न, 1984)

इसके बावजूद सरकार ऊंघती रहे तो कवि का क्या दोष है? इन्हीं दिनों प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या हुई। उसके बाद दिल्ली और देशके विभिन्न भागों में जो खुलकर हिंसा का तांडव हुआ, सभी को याद रहेगा। इन्हीं फासीवादी ताकतों ने एक बार मानो फिर से देश को साम्प्रदायिकता की आग में झोंक दिया। भाईचारे की भावना जिसे पुष्ट होने मे एक लम्बी अवधि लगती है, क्षण मात्र में जरासी असावधानी से तिरोहित हो गई। होना तो यह चाहिए था कि संकट की इस घड़ी में जाति-पांति एवं सांप्रदायिक भेदभाव से उपर उठकर सब देशवासी ऐसे विघटनकारी तत्वो का मुकाबला करते। सदा-सदा के लिए फूट का बीज बोने वाले दानवी प्रवृति के लोगों से दूरी बनाए रखने की शपथ लेते। राष्ट्र एक बार फिर से अग्नि परीक्षा से गुजरने की स्थिति में पहुंच चुका था। निरपराध और निर्दोष नागरिकों को बलि चढ़ाकर

तो इस आपसी वैरभाव की आग में मानो पेट्रोल छिडका गया। प्रतिशोध की इस आग से न जाने कितने बेगुनाह और बेकसूरों के घर हमेशा के लिए उजड़ गए। विकासशील देशों पर अपना फंदा डालने की ऐसी हरकतें,विदेशों में स्थित फासीवादी ताकतों से समर्थन और सहयोग से आपसी फूट के कारण ही सफल होती है। भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'अनेकता में एकता को' भुलाते ही इस प्रकार की समाज विरोधी ताकतों को अपना करतब दिखाने का मौका मिल जाता है।

कुछ ही वर्षों के अंतराल के बाद जन विरोधी ताकतों ने भारत के उपर फिर अपनी पैशाचिक नजर जमा दी। पड़ोसी देश श्रीलंका, अफगानिस्तान और इराक-ईरान क्षेत्र में उसने अपने खूनी पंजे पसार दिए थे। गुप-चुप तरीके से हमारे देश में भी वैमनस्य के बीज बोए जा रहे थे। रहस्यपूर्ण ढंग से मानों किसी सांघातिक षडयंत्र की तैयारी चल रही हो। प्रगतिशील चेतना के धनी बाबा नागार्जुन ने अपनी तीक्ष्ण घ्राण शक्ति से देश के भीतर फैलती इस हिंसा और फूट की गंध को अच्छी तरह पहचान लिया था -

उनकी तिकड़म अ-छोर है
असीम है उनकी सत्यानाशी दुर्बुद्धि
अपूर्व हैं नाभिकीय संग्राम की
उनकी तैयारियाँ
क्योंकर भला आए हमारी समझ में
जंगखोरों की नीयत
सामरिक परिकल्पना उनकी
क्योकर भला आए हमारी समझ में।
काफी होंगे दोही चार हिटलर
काफी होंगे दो ही चार मुसोलिनी-तोजो
जनगण अजेय है -
इतना भर सोच-सोचकर

हम बेफिक्र न हो जाएँ
जागते रहें निरंतर
इलाज करें आपसी फूट-फाट का।

(जागते रहें निरंतर, सन् 1988)

वर्षो पहले दी गई इस चेतावनी पर यदि ध्यान दिया जाता तो देश विभीषिकाओं की श्रृंखला से सुरक्षित रहता। फूट-फाट का षडयंत्र करने वाली देश में छिपी दानवी वृत्ति ने देश को मंडल और मंदिर की आग में झोंका, राजीव गांधी भी हत्यारे के शिकार हुए। समय रहते ही हमें -देश में छिपे ऐसे देशद्रोही फासीवाद को प्रश्रय देने वाले दुष्टों का दमन करने के लिए सदैव तत्परता एवं सावधानी बरतनी होगी। देश में स्थायी शान्ति से ही सामाजिक, आर्थिक , सांस्कृतिक प्रगति सुचारू रूपेण संभव हो सकेगी।

6.11 **गलत कम्युनिस्ट नीति की आलोचना**

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि नागार्जुन कम्यूनिस्ट पार्टी के एक सक्रिय सदस्य रहे हैं। वह क्रांति के समर्थक भी हैं। 'आजाद छापेमार दल' की प्रशस्ति में उन्होंने कविताएँ लिखी हैं । कम्यूनिस्ट देशों के प्रति उनके लगाव और हमदर्दी के संकेत उनकी साहित्यिक रचनाओं में विपुल मात्रा में मिल सकते हैं। फिर भी एक बात अवश्य है - साम्यवाद से प्रभावित होते हुए भी उनकी देशभक्ति को कभी भी संदिग्ध नहीं समझा जा सकता। वह जनकवि पहले हैं बाद में अन्य कुछ जो भी कहिए। साधारणजन के दुख सुख के सहभागी नागार्जुन की दृष्टि से लोकहित की भावना कभी भी तिरोहित नहीं होती। मानवता और अहिंसा के भी वह पक्षधर है। ऐसा नहीं होता तो महात्मा गांधी की मृत्यु पर 'शपथ' जैसी कविता भी कैसे लिख पाते। किसी भी दल की कोई नीति जो उनहें जनविरोधी, राष्ट्रविरोधी लगती है उसकी वह खुल्लमखुल्ला निन्दा करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। दलीय स्वार्थ के कारण अथवा तात्कालिक लाभ की दृष्टि से कम्युनिस्ट नेताओं का पूंजीपतियों को प्रश्रय एवं समर्थन देना उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता। इसके विरोध में वह झुंझला कर कह उठते हैं -

मिल वाले होते सोशलिस्ट, धनपतियों कोलेनिन भाता।
माओ आकर मिलता तुमसे, पेकिंग दिल्ली से शरमाता।
(तुम रह जाते दस साल और)

कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा कांग्रेस पार्टी की नीतियों का समर्थन, नेहरू के साथ संसद में सहयोग का रूख उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसी प्रकार पार्टी फण्ड के लालच में मिलमालिकों से समझौते की चाले चलते हुए, पूंजीपतियों को मूक समर्थन भी उनके गले नहीं उतराता वह तत्कालीन राजनीति में कम्यूनिस्ट और कांग्रेस के सहयोग पर भी खुले आम छींटा कशी कर ही डालते हैं - 'सेण्टर में होता वामराज, बाकी अवाम राज।' निर्धन जनता की दशा से बेखबर साम्यवादियों के प्रति भी उनके मन की खीझ कविता में प्रकट हुई है -

एक एक पग विंधा हुआ है दिशा शूल से
डर लगता है बलिवेदी के लाल फूल से
शिथिल हुए संकल्प, स्वार्थ तक सिकुड़ गया है
खीझ बढ़ गई आपस की, दम उखड़ गया है।
(और बस अंधकार है, सन् 1965)

अपने सिद्धान्तों से भ्रष्ट स्वार्थ के कारण आत्मकेन्द्रित साम्यवादी नेतृत्व में पड़ी हुई दरार से खीझकर वह उन्हें भी लताड़ने से नही चूकते। वैसे भी सन् 1964 के बाद नागार्जुन ने नीतिगत आधारों पर कम्यूनिस्ट पार्टी से संबन्ध विच्छेद कर लिया। किसी भी प्रकार के राजनीतिक संगठन से वह तभीसेसम्बद्ध नहीं हैं। बिना घुमाए फिराए सीधे सीधे अपनी बात कहने का उनमें पर्याप्त आत्मबल है। कवि होने के नाते वह प्रगतिशील नीतियों के समर्थन में भी इसीप्रकार कोई पक्षपात नहीं करते। अपनी रचनाओं से वह जनमानस में क्रांतिकारी विचार उत्पन्न करके अकर्मण्यता के बोझ के नीचे दबे खिन्न मना व्यक्ति में भी नया जोश भर देने का काम कर सकते हैं। क्रांति में सीधे भाग न लेकर क्रांति के लिए उकसाने का काम भी तो वामपंथी राजनीति का ही अंग कहलाएगा। पूंजीवाद और शोषण के खिंलाफ जनप्रतिरोध तैयार करने में उनकी भूमिका किसी सक्रिय वामपंथी राजनीतिज्ञ से किसी प्रकार भी कम करके नहीं

आंकी जा सकती। आचरण भ्रष्ट वामपंथियों को भी वह खूब खरीखोटी सुना डालते हैं। कांग्रेस के साथ राजनीतिक तथा चुनावी सहयोग की भूमिका के लिए उन्होंने डाँगे तक को अपनी कविता में आलोचनात्मक व्यंग्य का निशाना बनाया। आम जनता के दुख से बेखबर होकर नेतागीरी करने वाला कोई भी क्यों न हो उनके व्यंग्य वाण उसे छलनी करेंगे। उन्होंने स्पष्ट भी किया।

तुमसे क्या झगड़ा है
हमने तो रगड़ा है -
इनको भी, उनको भी, उनको भी।
दोस्त है, दुश्मन है
खास है कॉमन है
छाँटो भी, मीजो भी धुन को भी

अतः उनकी यह आलोचना भी जनहित की निहित भावना से ओतप्रोत उनकी वामपंथी रूझान की मानसिकता का ही प्रतिफलन है। जनविरोधी कार्य किसी भी दल के राजनेता का हो उसे देखकर भी वह चुप नहीं रह सकते क्योंकि उस अनैतिक कार्य में मौन स्वीकृति का दोष भी उनके मत्थे मढा जा सकता है। जनतांत्रिक नीतियों को भूलकर दलीय स्वार्थ हेतु किसी भी प्रकार के राजनीतिक क्रियाकलाप का वह कड़ा विरोध करने से नहीं हिचकते। देश में प्रजातंत्र के गिरते हुए स्तर के लिए वह केवल कांग्रेस या दक्षिण पंथी दलों को कोस कर ही संतुष्ट नहीं हो जाते। प्रजातंत्र विरोधी इस षडयंत्र का सख्ती के साथ विरोध न करने के लिए वह वामपंथी कम्यूनिस्ट दल अथवा उस विचारधारा के अनुयायी अपने जैसे साहित्यकारों को भी दोषी ठहराते हैं -

लगता है
सारी की सारी पार्टियों के नेता
रूचिपूर्वक खेल रहे हैं

अन्धे धृतराष्ट्र की मोहमाया
भली भाँति प्रवेश कर गई है
दलपतियों के अन्तःकरण में
लगता है
बुद्धिजीवियों की हमारी अपनी विरादरी भी
शतप्रतिशत लिप्त है
सुविधाएँ बटोरने जाने की द्यूत क्रीड़ा में।
(हम भी साझीदार थे, सन् 1979)

कांग्रेस की तरह कम्यूनिस्ट पार्टी में भी विधिवत प्रजातांत्रिक ढंग से संगठनों के चुनाव ठीक से शायद ही कभी हुए हों। चुनाव हो भी गए तो चुनकर युवा नेताओं को नेतृत्व की कमान पूरी तरह कभी सौंपी नहीं गई। सर्वोपरि आदेश बिना चुने थोपे गए या स्वयं कुंडली मारकर बैठे डांगे, नम्बूदरी या ज्योतिवासु का ही रहा। यह नीति आज भी बरकरार है। सर्वमान्य तथ्य है कि बूढ़े खून में वह जोश कभी हो ही नहीं सकता जो उत्साही युवा पीढ़ी में होता है। पारस बीघा, बेलछिया अथवा भागलपुर के ऑखफोड़ कांड पर, संसद के वातानुकूलित भवन में बैठकर सरकारी वक्तव्य की मांग कर लेने से ही क्राति हो जाती तो फिर देश का उद्धार होने में क्या देरी थी। यह बात 'काश क्रांति इतनी आसानी से हुआ करती' (सन् 1974) कविता में इसी संदर्भ में कही गई है। 'दलबदलू बुजुर्ग' कविता के बूढ़े राजनीतिज्ञों को दल के युवा सदस्यों द्वारा कंन्धे पर ढोने की व्यथा केवल कांग्रेस में ही नहीं है, वामपंथी दलों कि युवा सदस्यों को भी यह मजबूरी में सहन करना पड़ता है। पार्टी का अनुशासन भी तो कोई चीज है न आखिर । विरोध का स्वर मुखर करना है तो नागार्जुन की तरह पार्टी से बाहर निकलना पड़ेगा। बिना किसी राजनीतिक पहचान के फिर घोर संघर्ष की राह से गुजरना पड़ेगा।

कर सके न प्रपंचों का छेदन-भेदन .....
घबराएँ जरा जरा सी बातों में

अकारण बिदकें पग पग पर रूठ जाए
पहन ले दम्भ का मुकुट
पचा नहीं पाए ग्लानि और अपमान
ले नहीं पाए प्रतिशोध
क्षमा क्षमा ही क्षमा करता चला जाए
ऐसी भी बुद्धि क्या!
ऐसा भी मन क्या!

(ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, 1982)

दलित और शोषित वर्गों के हित की रक्षा के लिए लड़ने की बात करने वाला दल केवल तर्क-वितर्क में ही समय गंवाता रहे, यह उन्हें पसन्द नहीं। जहाँ 'पब्लिक का एक्शन, तब हमारा रिएक्शन' की नीति का पालन हो वहाँ जन आन्दोलन की चर्चा ही करनी बेकार है। जनभावना को अनदेखा करके उपयुक्त अवसर आने की प्रतीक्षा में तत्काल और सीधी प्रतिक्रिया के जोखिम से मुंह चुराया जा रहा हो तो जनता के दुख का सहभागी नागार्जुन जैसे कवि से दलीयहित के लिए चुप रहने की आशा नही करनी चाहिए। प्रगतिशीलता का दम भरने वाली पार्टी भी हाँ में हाँ मिलाने की प्रवृति से ग्रस्त होने लगे तो वह बड़ी शोचनीय दशा होगी।

प्रगतिशील पार्टियों के दलपति तक
हमसे ठकुर सुहाती चाहते हैं
अपनी नुक्ता चीनी सुनकर
वे अन्दर ही अन्दर बुरा मान जाते हैं
आपस में फुसफुसाते हैं :
"इसके दिल-दिमाग के अन्दर
गोबर भर गया है -
छोड़ो भी, करने दो

सी0 आई0 ए0 का हाथ मजबूत
छोड़ो भी पागल कुत्ते की तरह
भौंक-भौंक कर मर जाएगा।
(क्या हम, 1981)

पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि इन पंक्तियों में एक भावुक हृदय जनता से सीधे जुड़े, समाज के पीड़ित वर्ग के लिए समर्पित एक जनकवि की मार्मिक वेदना किस प्रकार छलकी पड़ रही है। नागार्जुन का एक मात्र लक्ष्य शोषण से जर्जर, त्रस्त जनजन की पीड़ा से भरी छटपटाती जिन्दगी को हर प्रकार के अभाव और अपमान से मुक्ति दिलाना है। जो इस कल्याणकारी यज्ञ में सक्रिय भाग लेने से बगलें झांकता है, कोई भी दल क्यों न हो, उनकी दृष्टि में अक्षम्य है। उनकी निडरता, निश्छल और निष्कपट आलोचना की शैली लोकहित की दृष्टि से निश्चय ही सराहनीय है।

6.12 वंशवाद पर व्यंग्य

भारतीय राजनीति के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर राष्ट्रीय राजनीति के एक कलुषित अध्याय पर दृष्टि अटकती है। सत्ताधारी दल में सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत बना लेने के बाद विभिन्न अवसरों पर शीर्षस्थ नेता ने किसी न किसी बहाने अपने बेटे बेटियों को सत्तासीन कराने के लिए घृणित राजनीतिक चालें चलीं। इससे असंतुष्ट होकर असहमति जतलाने वाले लोगों को राजनीतिक चाल में फंसाकर या तो दल छोड़ने पर विवश कर दिया गया अथवा दलीय अनुशासन की दलील देकर दल से निष्कासित कर दिया गया। पंडित जवाहर लाल नेहरू के समय से ही इस की शुरूआत तो हो ही चुकी थी। पहले तो उन्होंने इंदिरा गांधी को पार्टी में पद दिलाया, फिर अपने साथ राजकीय विदेश यात्राओं में साथ ले जाना शुरू किया अपने जीवनकाल में वह अपनी पुत्री को सीधे सत्ता सौंपने का दुस्साहस तो खैर नहीं कर पाए। परन्तु लाल बहादुर शास्त्री के बाद जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनीं तो उनके छोटे पुत्र संजय गांधी ने सहयोग के नाम पर पार्टी और सरकार की औपचारिक तथा अनौपचारिक सभी बैठकों

में भाग लेना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे इंदिरा जी पर यह संतति मोह हावी होने लगा जिसके कारण मां-बेटे दोनों आलोचना के विषय भी बने। नागार्जुन ने भी इस तथ्य की ओर अपनी कविता में संकेतकिया है।

हम धीरज से सुना करेंगे, गाल बजाओं भाषण मारा
जै, जै, जै, जै जगत तारिणी, अपने खानदान को तारो

× × × × ×

स्थिर सरकार बनी है अबकी, ढांचा है इसका फौलादी।
फिर से सधे बीस सूत्रों की, दुनिया भर में फिरी मुनादी।
फु: विपक्ष की कानी ऑखें बुला रहीं अपनी बरबादी।
सौ सौ संजय वापस लाए, सेंत मेत अपनी आजादी।।

(नदियाँ बदला ले ही लेंगी, 1980)

सत्ता में वंशवाद को बढावा देने की यह चाल तो वैसे काफी पहले ही से शुरू हो चुकी थी। इससे देश का तो क्या भला होना था, राजनीतिक दलों को इससे लाभ के स्थान पर हानि ही हुई। कांग्रेस में तो मानों चापलूसों की बाढ़ ही गई थी। मैडम के बिना कहे उनके मन की बात जान लेने वाले किचन कैबिनेट के सदस्य इसमें बाजी मार ले गए। संजय गांधी की विमान दुर्घटनामें मृत्यु होने के बाद व्यक्तिगत इच्छा के विरूद्ध भी राजीव गांधी को राजनीति में घसीट कर ही लोगों ने चैन लिया। इस उठा पटक की राजनीति के कारण वंशवाद की स्थापना भारतीय राजनीति के लिए घातक ही सिद्ध हुई। एक ओर तो वरिष्ठ और अनुभवी राजनीतिज्ञ स्वयं को उपेक्षित और अपमानित महसूस करते हुए या तो दल छोड़गए अथवा भीतर घात करने में व्यस्त हो गए। दूसरी तरफ देश को अनुभवहीन, राजनीति से अपरिचित व्यक्ति के हवाले करके प्रगति में सुस्ती आ गई। इसी संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ भी अवलोकनीय है -

जीर्ण शीर्ण काया में
लग गई है खरोंच

तुम इसे पत्रों में विज्ञापित कर दो
बंधवा लूं बैंडेज, आ जाए फोटो ग्राफर
उतार ले चार छः पोज, खूब काम आएँगे।
छपते जाएँगे सचित्र संस्मरण
सहेजकर रखना एक एक कतरन
कौन नही सहायता करेगा तुम्हारी
वर्षों बाद आएगी मेरे मरने की बारी
(ओ मेरे वंशमणि ओ मेरे कुलदीप, सन् 1962)

ध्यान देने योग्य बात यह है कि सत्ता में अपनी संतति को आसीन अथवा भागीदार बनाने के राजनीतिज्ञों के प्रयत्नों को नागार्जुन की पैनी दृष्टि ने सन् 1962 में ही देख लिया था। उन्होंने उपर्युक्त कविता के माध्यम से राजनीतिज्ञों और देश की जनता को भी समय से काफी पहले ही सावधान करके अपने कर्तव्य का पूरी तरह पालन करने की सफल कोशिश की थी।

निष्कर्षतः सामाजिक हित की दृष्टि से राजनीति की विभिन्न गतिविधियों पर नागार्जुन ने बड़े ही समसामयिक, प्रासंगिक तथा सटीक व्यंग्य लिखे हैं। ऐसे व्यंग्य लिखने में वही कवि सिद्धहस्त हो सकता है जो राजनीति का गंभीर अध्येता रहा हो। देश के साधारण से साधारण दीन-हीन-दुखी नागरिकों की व्यथा से जो निरन्तर जुड़ा हुआ हो, ऐसा व्यक्ति राजनीति को हमेशा तात्कालिक, दूरगामी लोकहित से ही परखता है। अपने चारों तरफ के घटनाक्रम पर नजरें गड़ा कर रखने वाला ऐसा मनुष्य संवेदनशील और भावुक होने के कारण किसी से भी अनजाना या अपरिचित महसूस नहीं करता। इसलिए सामान्य से सामान्य व्यक्ति की छोटी पीड़ा उसे मर्मान्तक वेदना पहुंचाती है। नागार्जुन का राजनीति से कोई हार्दिक लगाव कभी नहीं रहा। किसी राजनीतिक दल के बंधुआ सदस्य की हैसियत से रहना भी उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। साम्यवादी दल की सदस्यता भी उन्होंने जनसामान्य की भलाई से जुड़े रहने के कारण ही स्वीकार की थी। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि वामपंथी दल भी अपने दायित्व का निर्वाह सही ढंग से नहीं कर रहे तो कम्युनिस्ट पार्टी भी उन्होंने छोड़ दी और तब से आज तक

पीछे मुड़कर निजी स्वार्थ के लिए भी किसी राजनीतिक दल की ओर नहीं देखा। राजनीति को साधारण जन के कल्याण से जोड़कर ही उन्होंने अपनी कविता में प्रशंसा या निन्दा के तीर भी छोड़े हैं। वर्तमान दूषित राजनीतिक वातावरण के कारण भी नागार्जुन को राजनीति पर कविताएँ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। वैसे साहित्य में राजनीति पर व्यंग्य लिखने की परंपरा बहुत पुरानी है। बिहारी एतसई के दोहे - 'नहिं पराग नहीं मधुर मधु नहीं विकास यहि काल' तथा 'दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न बढै दुख द्वंद्व' एवं उससे भी पहले रामचरितमानस में राजनीति संबंधित अनेक दोहे और चौपाइयाँ विद्यमान हैं। नागार्जुन भी लोक चिंतन, लोकहित और लोकरंजन की भावना के कारण ही राजनीति पर व्यंग्य कविताएँ लिखने की ओर झुके हैं। सोचना ठीक भी है कि शायद इस व्यंग्य की मार से तिलमिला कर ही राजनीतिज्ञ अपने आचरण को सुधारने की ओर प्रवृत हों यद्यपि इसमें उनके स्वयं के लिए जोखिम भरा था, वह सर्वविदित है। राजनीति पर धारदार व्यंग्य लिखने का कारण नागार्जुन के ही कथन से स्पष्ट करते हुए इस प्रसंग का समापन समीचीन होगा।

ऐंठ रहा है जीवन, सुलग रहा है जीवन
राजनीति पर हावी हो रहा है जीवन
ढोंगियों की पोल खोल रहा है जीवन
धड़क रहा है जीवन डोल रहा है जीवन
साहित्य और संस्कृति को तौल रहा है जीवन
चढ़ के मौत के सर पै बोल रहा है जीवन
जीवन है राजनीति, राजनीति है जीवन
अन्तस की अभिव्यक्ति ही तो होगा साहित्य।
खाते हैं गुड़, गुलगुले से रखेंगे परहेज?

(अमलेन्दु एम0एल0ए0, सन् 1954)

सप्तम अध्याय

नागार्जुन की कविता में शिल्पगत प्रयोगशीलता और संप्रेषण में प्रगतिशीलता

कविता स्वतः स्फूर्त होती है। वह बौद्धिक व्यायाम तो हो ही नहीं सकती। किसी कवि के समग्र व्यक्तित्व की छाप उसकी काव्य रचना में झलकती है। अतएव कविता के माध्यम से हम कवि से निकटता स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। कविता को संपूर्ण रूप से समझने, उस का अर्थग्रहण एवं उसके भाव सौष्ठव तक पहुंचने में उसका शिल्पबोध काफी सहायक सिद्ध होता है। शिल्प बोध के अंतर्गत छन्द, लय, ताल, संगीतात्मकता तथा चित्रात्मकता के साथ उसकी भाषा-शैली पर दृष्टिपात करने की बहुत पुरानी परिपाटी रही है। किन्तु शिल्प के इन वस्तुगत मूर्त तत्वों का चुनाव कवि स्वेच्छा से तो निश्चय ही नहीं करता। कुछ विशेष कारणों से ही वह छन्द एवं भाषा आदि का चयन करता है। तुलसीदास और जायसी ने दोहा-चौपाई शैली तथा संस्कृत के स्थान पर जन सामान्य की भाषा अपनाना ही उपयुक्त समझा। तुलसीदास तो संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण शास्त्र में पारंगत विद्वान थे, फिर भी संस्कृत के स्थान पर उन्होंने लोकभाषा को ही वरीयता क्यों दी? बात बड़ी साफ और सरल है लोकहित की दृष्टि से की गई रचना के लिए लोकभाषा ही तो उपयुक्त माध्यम बन सकती थी। यदि रामचरित मानस की रचना लोकभाषा में न होकर संस्कृत में होती तो यह पुस्तक जनसाधारण का हृदयहार तो शायद ही बन पाती। पुस्तकालय और संग्रहालय में इसकी प्रतियां मिलतीं।

इस विश्लेषण से जो बात उभर कर हमारे सामने आती है, वही शिल्प-विनयास की आधार शिला है। कहने का तात्पर्य यह है कि कविता के गठन के स्वरूप का निर्धारण करने से पूर्व कवि के मन में यह बात स्पष्ट होती है कि वह किससे अपनी बात कहना चाहता है। उसके मन में अपनी कविता के पाठकों की छवि एकदम स्पष्ट होती है और

होनी भी चाहिए। कवि को अपने पाठक के सामाजिक एवम् मानसिक स्तर की भी पूरी जानकारी रहती है । इसके बाद ही रचना सोद्देश्य बनती है। पाठकों का कंठहार बनकर कवि को लोकप्रिय बनने का गौरवपूर्ण पद दिला पाती है। कविता पाठक और रचयिता के बीच संप्रेषण स्थापित करने का एक सक्षम माध्यम होती है। संप्रेषणीयता के तीन तत्व अब हमारे सामने मूर्त रूप में आते हैं - पाठक , कवि और प्रतिपाद्य विषय/पाठक की रूचि और उसकी सामयिक आवश्यकता के साथ साथ कवि की विचारधारा या उसकी मानसिकता के सहयोग से प्रतिपाद्य का निर्णय होता है। अंत में कवि पाठक और उसके लिए चुने गए साहित्यिक विषय के अनुरूप अपनी कृति के स्वरूप विन्यास अथवा गठन अर्थात शिल्प का निर्धारण करता है। कवि के व्यक्तित्व के निर्माण में उसका भावबोध और इंद्रियबोध भी महत्व पूर्ण भूमिका निभाते है। कुलमिला कर यह कह सकते हैं कि किसी काव्यकृति के शिल्प विन्यास का विश्लेषण इतना आसान नहीं जितना कि आम तौर पर समझा जाता है। कविता के शिल्प का अंतिम स्वरूप एक जटिल प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही मूर्त रूप में हमारे सामने स्पष्ट होता है। किसी कृति में केवल छन्द और भाषा-शैली पर सरसरी सी निगाह डालने से काम नहीं चल सकता। विशेष प्रकार के छन्द या भाषा-शैली को चुनने के लिए कवि स्वयं में एक स्वतंत्र इकाई तो हो ही नहीं सकता। शिल्प का चुनाव करते समय कवि को विषय वस्तु के साथ अपने पाठकों की रूचि एवं बौद्धिक स्तर का निरंतर ध्यान रखना पड़ता है। नागार्जुन के काव्य का साहित्यिक विश्लेषण करते समय यह तथ्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि उन्होंने पाठक के साथ निकट आत्मीयता बनाए रखने का सदैव प्रयत्न किया है। इसी कारण वह मात्र एक साहित्यिक हस्ती न रहकर जनमन के सजग चितेरे की छवि लेकर उभरते हैं। उनके इस अनुष्ठान में उनकी घुमक्कड़ वृत्ति का निश्चय ही बहुत बड़ा योगदान रहा है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक यात्रा और जनसंपर्क के कारण विभिन्न क्षेत्रों की आंचलिक संस्कृति, सामाजिक रीतिरिवाज, लोकनृत्य, लोकगीत आदि सभी ने उनके सोच और प्रतिपाद्य विषय को प्रभावित तो किया ही है। इसी कारण घिसे-पिटे ढर्रे पर न चल कर उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों में प्रगतिशीता का परिचय दिया है। इस उदार हृदयता और व्यापक दृष्टि कोण के कारण तथ्य और कल्पना दोनों का अद्भुत सम्मिश्रण को प्रगतिशील साहित्य के लिए उनकी विशिष्ट देन

के रूप में स्वीकार किया जाएगा।

शिल्प विधान उनके लिए बंधन बनकर साहित्य सृजन के आड़े आ ही नहीं सका है। कहना यह चाहिए कि विषय वस्तु उनकी भाव प्रवणता की उष्मा से पिघल कर एक भाव सरिता का रूप लेकर उमड़ चली है। इस सरिता के प्रवाह में शिल्प विधान के शास्त्रीय सिद्धान्त बाधक बन ही नहीं सकते थे। उन्होंने दरिद्रता, अभाव और सरकारी लापरवाही से त्रस्त जनसाधरण की दशाका अनुमान घर बैठे पत्र पत्रिकाएँ पढ़ कर या रेडियो- टी0वी0 पर सुन देखकर नही लगाया । एक खोजी पत्रकार की भांति वह आदिवासी क्षेत्रों, दुर्गम पर्वतीय स्थलों और शहरी सभ्यता से दूर उपेक्षित ग्रामीण इलाकों में भटकते हैं। स्थानीय समस्याओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने के पश्चात कवि का सोच उन पर हावी होता है जो उन्हें भावी का भी अवलोकन बड़ी आसानी से करा देता है। मानों वह कल्पना लोक में आज घटित होने वाली घटनाके गर्भसेउत्पन्न होने वाले भविष्य को देखने दिखाने की जिम्मेदारी से गुजर रहे हो। यहाँ भावुकताके झोंके में संदर्भसे भटकने की कोई गुंजाइश तो कतई हो ही नहीं सकती अगरचे वस्तु स्थिति के आकलन और प्रस्तुतिकरण में उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति सोने में सुहागा का काम करती है। फिर कौन से छन्द में कहा जाए, कैसे शब्दों का प्रयोग किया जाए, यह सब गौण हो जाता है। यही कारण है कि छन्द, लय-ताल, भाषा उनका अनुसरण करते हैं। उन्हें न किसी छन्द विशेष से लगाव है और न शुद्ध तत्सम शब्दावली से। प्रसंग एवं संदर्भ की आवश्यकता के अनुरूप यह बदलते रहते हैं। आम जनता की समस्याओं का, जन साधारण की रूचि के अनुरूप, सामान्यजन की अपनी भाषा में निरूपण उनके शिल्प को निखार प्रदान करता है और वह कभी भी स्वादहीन-बासीपन का अनुभव नहीं होने देता अपितु नागार्जुन की भांति कदम से कदम मिलाकर चलने वाले प्रगतिशील साथी का आभास देता है। उनके द्वारा शिल्प पर किए गए प्रयोगो की सफलता से उसमें प्रगतिशीलता का पुट स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

7.1 छन्दों के नए तथा प्रगतिशील प्रयोग

छन्द का बन्धन तो आधुनिक युग में निराला ने तोड़ ही दिया था। एक प्रकार से छन्दशास्त्र के सम्बन्ध में यह एक क्रांतिकारी कदम था। निराला की इस परंपरा को बहुत

से कवियों ने उनका अनुगमन करते हुए समृद्ध किया है। नागार्जुन ने छन्दशास्त्र की प्राचीरों को ध्वस्त तो नहीं किया परन्तु उनमें अपनी सूझबूझ से नवीनता का प्रत्यारोपण करके उन्हें लोकरंजक, चिन्ताकर्षक बनकर सजीवता अवश्य प्रदान की है। उन्होंने मुक्त छन्द में यदि रचना की है तो परम्परागत छन्द दोहा, बरवै, चौपई कुंडलिया एवं कवित्त जैसे छन्दों में भी बहुत सी रचनाएँ की हैं।

हिन्दी में 'दोहा छन्दसबसे छोटा और सशक्त छन्द माना जाता है। आकार में छोटा होने के कारण यह पाठक या श्रोता की जिह्वा पर अनजाने में सवारी करके लोकप्रियता हासिल कर लेता है। कबीर, बिहारी रहीम और तुलसी के दोहों को अनपढ़ ग्रामीण भी गुनगुनाते देखे जा सकते हैं। अपनी बात को असरदार बनाने के लिए लोग अक्सर इन दोहों को उद्धरण के रूप में आपसी बातचीत के दौरान प्रायः प्रयोग करते हैं। चार चरण वाला क्रमशः तेरह और गयारह की मात्राओं वाला यह छन्द इस दृष्टि से चमत्कारिक प्रभाव से संपन्न कहा जा सकता है। किन्तु दोहा बाह्यरूप में छोटा होते हुए भी रचना की दृष्टि से कठिन है। अपने विशाल कलेवर के कथ्य को समेटकर इतना संक्षिप्त और प्रभावशाली बनाने की निपुणता बहुत कम लोगों में ही पाई जाती है। इसीलिए शायद इसके संबंध में यह कथन बहुत प्रचलित हैं, 'देखंत में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर।' अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से सफलतापूर्वक व्यक्त करने के लिए 'दोहे' को माध्यम बनाना, वास्तव में ही गागर में सागर भरना है। प्रगतिशील साहित्यकारों ने इस छन्द का प्रयोग न के बराबर ही किया है। 'शासन की बन्दूक' तथा 'अन्नपच्चीसी' कविताओं में कथ्य को लाघवता द्वारा प्रभावशील बनाने के लिए नागार्जुन ने दोहा छन्द का प्रयोग किया है

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
बन्दा क्या घबराएगा, जनता देगी साथ।।

कबीर का मूल दोहा युगानुरूप परिवर्तन के साथ पेश किया गया है। नई बोतल में पुरानी मदिरा भर कर नहीं दी जा रही मानों नई मदिरा (नया भाव) पुरानी बोलत

(दोहा छन्द) में भरकर नागार्जुन जनता के सामने पेश कर रहे हैं। अपना घर फूंकने की जरूरत नहीं पूंजीवाद और जमाखोरी तथा सड़े गले सामाजिक ढांचे में क्रांति का संस्कार देने के लिए मानों कबीर की फक्कड़ मुद्रा में नागार्जुन भुक्खड़ों का नेतृत्व करने को तैयार है। आश्वासन भी देते है कि घबराने की आवश्यकता नहीं प्रजातंत्र में बहुमत का ही तो हुकम चलता है और बहुमत है, भूखी नंगी जनता का। शासन की बंदूक से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

खड़ी हो गई चॉपकर कंकालों की हूक।
नभ में विपुल विराट सी शासन की बंदूक।।

भूख से जर्जर, अस्थि कंकाल मात्र मानव शरीरों से निकली आहों को शासन के विकराल रूप ने बंदूक की नोंक पर घोंट दिया। फिर समाज की प्रतिक्रिया हुई -

उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक।
जिसमें कानी हो गई शासन की बन्दूक।।

सरकार की बर्बरता, प्रजा के लिए प्रजा के द्वारा स्थापित सरकार तानाशाह बनकर किस प्रकार समस्या के एक ही पहलू को देख पाने वाली अपंग बनकर रह गई हैं। यथा तथ्य चित्रण और 'प्रभुता पाय काहिमद नाहीं' की ओर कम शब्दों का प्रयोग करके भी कवि ने प्रजातंत्र की कमजोर नस पर अपनी पकड़ प्रकट कर दी है। परन्तु उनके प्रगतिशील भावबोध की भूमि पर आशा का जो जीवंत महल बनकर खड़ा होता है, वह जनकवि का अपने पाठकवर्ग को विशेष उपहार है -

जली ठूंठ पर बैठकर, गई कोकिला कूक।
बाल न बांका कर सकी, शासन की बन्दूक।।

अभावों से जूझती नेतृत्व के अभाव में संघर्षरत साधनविहीन निहत्थी जनता में नवजीवन का संचार करने वाली ये पंक्तियां प्रगतिशील आन्दोलन को गति प्रदान करने की दिशा में एक अमूल्य देन है। शासन की पाशविक शक्ति का मखौल बनाकर जनता को आश्वस्त करने के साथ, उसे अन्याय और अनाचार के विरोध में जुझारू बनने की प्रेरणा देता है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी तो इसी प्रकार कहा था -

अनयराज, निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संबोधित कविता में नागार्जुन ने बरवै छंद का प्रयोग किया है। यह छन्द ब्रज भाषा में लोक साहित्य में आजकल भी प्रयोग किया जाता है और लोकप्रिय भी है। प्रथम चार पंक्तियों में सामान्य कथन का निर्देश करते हुए बरवै की अंतिम दो पंक्तियों में एक प्रकार से निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता में ब्रज भाषा और गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया था। भारतेन्दु ने भारत दुर्दशा के लिए उत्तरदायी विदेशी सरकार को आड़े हाथों लेकर साहित्य में यथार्थवाद एवं प्रगतिशील स्वर को मुखरता प्रदान की थी। नागार्जुन ने उन्हीं की शैली में उनके द्वारा उठाई गई समस्याओं को फिर से उभारा है। उसी स्वर और छंद में ब्रजभाषा की मिठास का पुट देकर -

लाट वाट का पता नहीं है अब प्रेसिडेंट है।
अपने ही बाबू भैया की गवर्नमेण्ट है।
चावल रूपए सेर सेरही भाजी भाजा।
नगरी है अन्धेर और चौपट है राजा।
एक जोंक वर्ग को छोड़ कर सब पर स्याही छा रही।
दुर्दशा देखकर देश की याद तुम्हारी आ रही।।

कुंडलिया एक पुराना छंद है। कवि स्वानुभूत तथ्य को जनसाधारण के मार्ग दर्शन हेतु कहने के लिए प्रायः इस छंद का प्रयोग करते रहे है। हिन्दी साहित्य में गिरिधर और दीनदयाल की कुंडलियाँ बहुत ही लोकप्रियता प्राप्त हैं। यह छन्द उद्‌बोधन या प्रबोधन की शैली में होता है। आरंभ में एक दोहा होतो है। दोहे के बाद रोला जुड़ा होता है। दोहा का अंतिम चरण ही रोला के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध के रूप में दुहराया जाता है। कुंडली जिस शब्द से आरंभ होती है उसके अन्त में भी वही शब्द फिर से आता है। शुरू में कवि किसी वस्तुगत तथ्य को पाठक या श्रोता के सामने रखता है। रोला में उसी को उदाहरण देकर समझाते हुए अपने कथन की पुष्टि करता है। इस छंद में दोहा और रोला एक दूसरे से इस प्रकार गुम्फित रहते हैं जैसे अहि कुंडली योग हो। यह छन्द ग्रामीण जनता में विशेष रूप से लोकप्रिय है।

नागार्जुन ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। शासकीय व्यवस्था के ढोल की पोल खोलते हैं और फिर उसे अपने व्यंग्य की धार देकर कुंडली के रूप में जब पेश करते हैं तो उसका असर शोषक और शोषित दोनों पर ही बहुत जोरदार होता है।

सामन्तों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम।
लाश बेचने लग गए खादी पहने डोग।
खादी पहने डोम लग गए लाश बेचने।
माइक गरजे, लगे जादुई ताश बेचने।
इन्द्रजाल की छतरी ओढे श्रीमंतों ने।
प्रजातंत्र का होम कर दिया सामंतों ने।।

प्रजातंत्र के अवमूल्यन के लिए जिम्मेदार भ्रष्ट राजनीति का कुटिल खेल खेलने वाले राजनीतिज्ञों पर कितना कुर व्यंग्य है।

रामवृक्ष बेनीपुरी को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए उर्दू शायरी और छन्द के अंदाज भी उनका अपना अलगही है -

हमसफीर को सलाम, हम सफर को सलाम।

युग की मांग के अनुरूप नागार्जुन ने छन्दों को तोड़, मरोड़कर उन्हें नए रूप में भी ढाला है। रोला छन्द का एक ऐसा ही प्रयोग 'अकाल' और उसके बाद कविता में देखा जा सकता है।

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद।
धूआं उठा आँगन से उपर कई दिनों के बाद।
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद।
कोए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

संस्कृत साहित्य में कविवर नागार्जुन ने विधिवत पांडित्य प्राप्त किया है।

संस्कृत साहित्य की लम्बी और समृद्ध परम्परा का निश्चय ही उनके रचना कर्म प्रभाव पड़ा है। हाँ, जनकवि होने के नाते साहित्य रचना तो उन्होंने जनभाषा में ही की है। परन्तु फिर भी संस्कृत के छन्दों को उन्होंने ज्यो का त्यों भी अपनाया है और उन्हें जनसाहित्य के अनुकूल ढाल कर परिवर्तित रूप में भी ग्रहण किया है। इस नए रूप में यह छन्द और भी अधिक आकर्षक तो बन ही है। यह नागार्जुन द्वारा कविता के शिल्प में उनके द्वारा किए गए प्रयोगशीलता का परिचायक भी है। संस्कृत काव्य में मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वार्णिक छन्दों का हीं अधिक प्रयोग होता है। नागार्जुन ने वर्णों की संख्या में मामूली सा परिवर्तन करके सवैया तथा कवित छन्दों को बड़े ही आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। संस्कृत काव्य शास्त्र की तर्ज पर 22 या उससे अधिक वर्णों का प्रत्येक पंक्ति में प्रयोग करते हुए संस्कृत की ही शैली में टेक को दुहराते हुए अतुकान्त सवैया छन्द का प्रयोग उनकी प्रसिद्ध कविता "बादल को घिरते देखा है" में बड़े ही मनोहारी लय पूर्ण ढंग से किया गया है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में, शत सहस्र फुट की ऊंचाई पर।
अलख नाभि से उठने वाले, निज के ही उन्मादक परिमल -
के पीछे धावित हो होकर तरल-तरूण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढते देखा ; बादल को घिरते देखा है।।

कवित्त के साथ किए गए उनके प्रयोग भी बडे सफल और प्रभावोत्पादक हैं। बीस बीस वर्ण की प्रत्येक पंक्ति वाले चार पंक्ति के इन छन्दों के प्रत्येक चरण में औसत दस-दस शब्द हैं।

न्यायमूर्ति कठमुल्ले होंगे,
न्यायपलिका शीश धुनेगी।
संविधान की पंक्ति पंक्ति अब
दण्डनीति का जाल बुनेगी।
जग जीतेगी भारत पुत्री,
नहीं किसी की एक सुनेगी।
वही हंसेगा जिसे कहेगी,

वह बोलेगा जिसे चुनेगी।

न्यायमूर्ति कठमुल्ले होंगे,

न्यायपालिका शीश धुनेगी।।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि प्रथम पंक्ति की अंत में पुनरावृत्ति की गई है। ऐसा इसलिए कि कवि पाठकों का ध्यान इस विशेष विन्दु पर केन्द्रित करना चाहता है।

उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रयाण गीत और वीर रस के आल्हा छन्द का विशेष प्रचलन है। दोपहर के भोजन के पश्चात् चौपाल में हल्का फुल्का काम करते हुए विश्राम के क्षणों में आल्हा गाते और सुनते अब भी गॉवों में लोग देखे जा सकते हैं। नागार्जुन ठहरे जन कवि देहाती क्षेत्रों में घूमते फिरते, यह सब उन्होंने स्वयं देखा है। लोक साहित्य में प्रचलित इस सर्वप्रिय प्रवाहपूर्ण एवं तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करने वाले छंद का प्रयोग तो नागार्जुन ने बड़े ही कौशल से किया है। कोई आश्चर्य नहीं कि जगनिक रचित आल्ह खण्ड की तरह उनका काव्य भी जन-जन का कण्ठहार बन जाए।

भूखे भजन कहाँ से होगा, चारों वेद ठिठोली।
मन रोएगा कान सुनेगें, आदर्शों की बोली।
अन्नचोर खेल जन-जन के अरमानों की होली।
छूट-फूट से टकराएगी सोशलिज्म की गोली।
भूखे भजन कहाँ से होगा, चारों वेद ठिठोली।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन के अग्रगण्य महाप्राण निराला ने तुक और छन्द के बन्धन तोड़कर मुक्त छन्द में रचना की।उनका अनुसरण करते हुए नागार्जुन ने भी मुक्त छंद का व्यापक प्रयोग किया है। नागार्जुन की मुक्त छंद वाली इन रचनाओं में से कुछ में तो निराला की भांति पहली और तीसरी तथा दूसरी और चौथी पंक्तियों की तुक मिलती है। कुछ मुक्त छंद वाली रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें अंग्रेजी के छन्द सॉनेट की छाप है और कुछ

महाकवि मिल्टन की पैराडाइज लॉस्ट की तरह ब्लैंक वर्स से प्रभावित सी लगती है। फिर भी मुख्य बात यह है कि नागार्जुन लकीर के फकीर नहीं हैं और छन्द का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं। मुक्त छंद की एक रचना उदाहरण के लिए प्रस्तुत है -

यहाँ हर्ष-विषाद चिन्ता-क्रोध
यहाँ है सुख-दुख का अवबोध
यहाँ हैं प्रत्यक्ष औ' अनुमान
यहाँ स्मृति- विस्मृति सभी के स्थान।

विशेष बात यह है कि नागार्जुन ने छन्दों के साथ खिलवाड नहीं किया है उन्होंने समय और प्रसंग के अनुरूप छन्दों में प्रयोगशीलता का रूख अपना कर उन्हें जीवन्त और प्राणवान बनाया। एक प्रगतिशील कवि के नाते उनसे यह आशा तो थी ही। स्वच्छंद प्रवृत्ति का ऐसा व्यक्ति जो जीविका के स्थायित्व के लिए भी बंधन स्वीकार नहीं कर सका, वह छन्द शास्त्र के नियमों में भी कैसे बंधकर रह सकता था। यद्यपि सफलतापूर्वक विविध छन्दों में रचना करके उन्होंने अपने छन्द शास्त्रीय ज्ञान का तो परिचय दिया ही है, इसके कारण उनके साहित्य में विविधता का गुण भी आ गया है। उनकी कविता छन्दों के बहुआयामी प्रयोगों से पाठेके की कर्ण रूचि में विविधता एवं रूचि परिवर्तन कराने में समर्थ सिद्ध हुई है। छन्द के बंधन से मुक्त रहकर भी कविता में लय और ताल का सामंजस्य अविरल बना बना रहा है। आधुनिक काव्यशात्रीय दृष्टिकोण से यह कवि के लिए एक श्लाघनीय उपलब्धि कहलायेगी।

7.2 नागार्जुन की कविता में भाषायी प्रयोग

अतीत काल में भाषा को भावों की संवाहिका माना जाता था। भाषा एक ऐसा सबलगुण है जिसकी अनुपस्थिति में मनुष्य अपना स्वत्व तो खो ही बैठता है। उसकी स्थिति बड़ी ही विचित्र मनुष्य और पशु के बीच की सी हो जाती है। दूसरी ओर भाषा सतत प्रवहमान नदी के समान होती है। नदी के किनारों की तरह वह व्याकरण के बंधे हुए नियमों का पालन करती हैं। विचारों का उफान आने पर वह नदी की तरह व्याकरण के नियमों को तोड़ भी देती है। भाषा प्रवाहमयी अनुप्राणित तभी रह सकती है, जब उसमें निरन्तर नए नए शब्द, लोकोक्तियाँ, मुहावरे आदि आ आ कर जुड़ते रहें। इससे यह बात तो साफ तौर से जाहिर होती

है कि भाषा स्वयं ही प्रगतिशील है। भाषा निरन्तर परिवर्तनशील है। परिवर्तन के अभाव में वह अपनी प्राणवत्ता को खो बैठती है। दूसरे भाषा साहित्य, संस्कृति और समाज का सजीव प्रतिबिम्ब होती है। किसी देश की भाषा ही उसके साहित्य, संस्कृति और सामाजिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। सामाजिक स्तर के अनुसार ही भाषा में भी भिन्नता और विविधता पाई जाती है। वह व्यक्तिगत अर्जित सम्पत्ति होते हुए भी, सामाजिक देन है। व्यक्तिगत स्तर पर संस्कृत साहित्य की उच्च शिक्षा प्राप्त होते हुए भी नागार्जुन एक मुक्त एव प्रगतिशील साहित्यकार हैं। वह उच्च शिक्षित एवं समृद्ध वर्ग के लिए न लिखकर पिछड़े और निम्न मध्यवर्गीय समाज के श्रोताओं के लिए समर्पित साहित्यकार हैं। उनकी कविता देश के साधारण जन के प्रति अभिमुख है। साधनहीन सर्वहारा वर्ग की स्थिति और उनकी समस्याओं का निदर्शन ही उनके काव्य का लक्ष्य है। अतएव पाठक या श्रोता की रूचि उसके शैक्षिक स्तर के अनुरूप ही तो भाषा को वह अपने कथ्य का माध्यम बनाएँगे। तभी सर्वसामान्य में उनके साहित्य को पढ़ने और मनन करने के लिए उत्साह उत्पन्न होगा। छन्द की तरह भाषा के मामले में भी नागार्जुन पूर्वाग्रहों से मुक्त हैं। जैसा प्रसंग है, जिसको लक्ष्य करके वह अपनी बात कहना चाहते हैं, उसी के अनुसार उन्होंने भाषा का प्रयोग भी किया है। इससे उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण और ओजमयी बनी है। उबाऊ और बोझिलपन या दूरूहता से उनकी भाषा हमेशा दूरी बनाए रखती है। सरल एवं सुबोध भाषा में सहज ढंग से अपने पाठक से वह संलाप सा करते प्रतीत होते है।

नागार्जुन के काव्य संकलनों का अवलोकन करने से यह साफ साफ जान पड़ता है कि उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के मार्ग में रूढ़िवादिता को रोड़ा नहीं अटकाने दिया है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ साथ, देशज, ऑचलिक शब्दों और मुहावरों का तो प्रयोग किया ही है। जनसामान्य में प्रचलित अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों से भी उनहें कोई परहेज नहीं है। फिर भी एक बात का ध्यान उन्हें हमेशा बना रहा है कि वह कविता किसके लिए लिख रहे हैं। इससे उनकी कविता अपने पाठकों के उस वर्ग विशेष के लिए दुर्बोध

नहीं बन पाई है। शब्दों के साथ उन्होंने जैसे हार्दिक मित्रता का रिश्ता कायम किया हुआ है। उन्हें शब्दों को बुलाना नहीं पड़ता। कबीर की तरह उनकी भाषा में बहुत बार खुरदरापन आया है परन्तु भाषा उनके पीछे पीछे दौड़ती सी लगती है। समाज के यथार्थ पर निरन्तर दृष्टि जमाए रखने से एक स्वाभाविक तल्खी, खुरदुरापन और कई बार कठोरता भी उनकी भाषा में आ गई। यह तीखापन, कटुता और अक्खडता ही तो उन्हे आधुनिक युग के कबीर का दर्जा दिलाती है। भाषा के इस रूप से ही कविता की पक्तियों के बीच में उनका प्रगतिशील मुखड़ा अपनी संपूर्ण झुंझलाहट के साथ झांकता हुअ दिखाई पड़ता है। नागार्जन की कविता मे भाषायी प्रयोगों की विविधता एवं उन्की भाषा की संपन्नता की बानगी देखने के लिए उनके विशाल रचना संसार से साक्षात्कार करना एक सुखद अनुभूति होगी।

तत्सम शब्दों का प्रयोग

उच्च शिक्षित वर्ग के लिए लिखी गई उन्की कविता में संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। वार्णिक छन्दों में की गई उन्की ऐसी रचनएँ तत्स्म शब्दों के प्रयोग के बावजूद भी दुर्बोध नहीं हुई। उनमे सरसता तो छलकती हुई दिखाई पड़ती है। ऐसी ही कुछ रचनाएँ है - 'उनको प्रणाम, बादल को घिरते देखा है, चातकी, कालिदास, सिन्धुनद आदि। भिक्षुणी, हिमकुसुमों का चंचरीक तथा अगले पचास वर्ष और" जैसी अतुकान्त छंद में विरचित कविताओं में प्रचुर मात्रा में उन्होंने तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। एक उदाहरण सिन्धुनद से पर्याप्त होगा।

वह विश्व विजय की प्रबल प्यास,
वह ऋचापाठ वह मन्त्रगान।
तेरे हिय-पट पर अंकित है,
उपनिषदों का वह आत्मज्ञान।
ऋक यजुष् साम अथर्व,
संस्कृति का वह उद्योग पर्व।

कल्पना यहीं अंकुरित हुई,
चेतना यहीं संस्फुरित हुई।
तुम धन्य मोहनजोदड़ो धन्य,
वहे विश्वविदित भग्नाव शेष
तव अंचल में संचित शत-शत,
भाषा-भूषा औ' भाव भेष ।।

तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग

जनकवि होने के नाते वह रचना करते समय साधारण जन की सीमाओं का पूरा ध्यान रखते हैं। उनकी कविता का रसास्वादन करने वालों में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने वालों का एक बड़ा समुदाय है। नागार्जुन ने उन्हीं के दैनिक जीवन को अपने काव्यसृजन की आधार भूमि माना है। कविता में निहित व्यंग्य शोषण करने वालों- पूंजीपति, अफसरशाही के पुर्जे सरकारी कर्मचारी , सामन्त, सूदखोर बनिया नेतागण को चोट का निशाना बनाता है ताकि वह नीति में परिवर्तन करें। उधर शोषित वर्ग इस व्यंग्य को पढ़ और सुनकर आंन्दोलित हो उठे; ऐसी आशा की जाती है। अतः स्वाभाविक रूप से कवि को अपनी भाषा को शोषित एव दलित वर्ग की औसत समझ क स्तर पर लाना होगा। तभी धनहीन, भूमिहीन श्रमिक एवं दलित जन को यह एहसास होगा कि उसका शोषण किया जा रहा है जो अनुचित है। यही एक जागरूक प्रगतिशील कवि का कर्तव्य भी है। नागार्जुन ने अपने काव्य में ग्रामीण-देशज और तद्भव शब्दों को बड़े ही सार्थक ढंग से प्रयोग किया है। 'मास्टर' कविता को ही लीजिए उसमें 'भीत, बिसतुइया (छिपकली नहीं), इगरित , अबाई, सुसता लेना, पहउनी' जैसे देशज शब्दों का असरदार ढंग से प्रयोग किया गया है। 'बताउँ' कविता मे तो देशज मुहावरों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है -

बताऊं? कैसी लगती है -
पंचवर्षीय योजना

हिडिंबा की हिचकी, सुरसा की जम्भाई।।

बताऊं ?

कैसी लगती है -

नेहरू की विदेशी-वाणिज्य भक्ति ?

धीरोदात्त नायक की सुदुर्लभ पर-कीया रसाई !!

जनसाधारण की भाषा में और जनसाधारण के परिचित पौराणिक आख्यान हिडिंबा और सुरसा के माध्यम से उत्सुकता जागृत करके व्यंग्य को पंचवर्षीय योजना के घोटाले और दोषपूर्ण विदेश एवं वाणिज्य नीति की ओर अभिमुख कर दिया गया है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग

बोलचाल की भाषा में उर्दू के शब्द हिन्दी में ऐसे घुलमिल गए हैं कि जाने अनजाने में हिन्दी के अधिकारी विद्वान भी इनका प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं करते। नागार्जुन ने कबीर की तरह देश के कोने कोने की यात्रा अपनी युवावस्था मे ही शुरू कर दी थी। शायद पंजाब, दिल्ली, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रवास करनके के फलस्वरूप उनकी भाषा मे उर्दू के शब्द भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। 'अमलेन्दु एम0एल0ए0, जयति जयति जय सर्व मंगला, नदियाँ बदला ले ही लेंगी' जैसी लम्बी कविताओंमेंउर्दू के शब्द कुछ अधिक संख्या में आए है। 'कबूल, जाहिरा, करामाती, वाजिब, हुकूमत, शिकस्त तथा नफासत' जैसे शब्दों के आलावा, 'हावी होना, धड़ाम से गिरना, सर पे चढ के बोलना' जैसे बहु प्रचलित मुहावरों की उपस्थिति से उनकी कविता मौके के माकूल बन पड़ी है।

चुपचाप यों देखते रहना

सूनी सी खोई सी निगाहों से

पथराए होंठों का

बेरूखी मे यों हिलते रहना

नागवार लगता है

कुछ भी तो बतलाओं।
मैने तुमको इत्ता-इत्ता सा पुछा।
(मैने तुम्हें इत्ता इत्ता सा पूछा)

अंगरेजी शब्दों का प्रयोग

बहुत से ऐसे अंगरेजी शब्द हम दैनिक बोल चाल की भाषा में प्रयोग करते हैं कि हम सर्वथा यह भूज ही जाते है कि यह शब्द विदेशी हैं। अंग्रेजी शासन और सभ्यता से निकट सम्पर्क के कारण इन शब्दों को हमने उदारता पूर्वक अपना लिया है। यह कोई आपत्तिजनक बात भी नहीं है। यदि अंग्रेजी भाषा संस्कृत और हिन्दी के शब्दों को आत्मसात करके अपन शब्दकोश में सम्मिलित कर सकती है तो हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए बहुप्रचलित, आसान अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आपत्तिजनक नहीं माना जाना चाहिए। पालिटिक्स, फ्रीडम आफ कल्चर, पोलिंग बूथ, लैंच, डिनर, शेक हैंड, प्लीज एक्सक्यूज मी आदि शब्दों का प्रयोग 'आओ रानी हम ढोएँगे पालकी, प्लीज एक्सक्यूज मी, विज्ञापन सुंदरी, नदियाँ बदलना ले ही लेंगी' जैसी बहुत सी कविताओं में कथन को सजीव और रोचक बनाने की दृष्टि से उचित ही है।

नए शब्दों का निर्माण

कबीर और निराला जैसे कवियों ने भी अपनी भाषा को समृद्ध बनने एव कविता में प्रभाव उत्पन्न करने हेतु अनेक नए शब्दों और मुहावरों को प्रयोग किया है। नागार्जुन शब्दों के लिए कोश और भाषा विज्ञान का मुंह नहीं जोहते। भावाभिव्यक्ति को सरल और प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यकता के अनुसार उन्होंने नए नए शब्दों और मुहावरों का जन्म दिया है। उनकी कविता में यत्र-तत्र ऐसे शब्द बिखरे पडे हैं आवश्यकता है उनका संग्रह करने की। निराकुल, दंतुरित जैसे शब्दों के साथ नए गढ़े हुए मुहावरे जैसे - द्विपद भेड़िए, छंटनी की आरी, दूधिया वात्सल्य छलकना, सत्यानाशी दामन, जनहित की चांदमारी आदि ने उनके कथ्य और भाषा शैली को सरलता, प्रवाह और ओज से परिपूर्ण कर दिया है।

प्रगतिशील आन्दोलन के परिपेक्ष्य मे नागार्जुन की कविता का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा पूरी तरह कविता की विषयगत और विषयीगत दोनों ही आवश्यकताओं के पूर्ण अनुकूल है। कवि को भाषा पर अभूतपूर्व अधिकार है। वह एक ऐसे सिद्धहस्त शब्द शिल्पी हैं जिनके रचना कर्म से न केवल साहित्य अपितु भाषा भी समृद्ध हुई है। कविता के प्रसंग, संदर्भ और कवि तथा पाठक के पारस्परिक सम्बन्धों को उनकी भाषा ने सजीवता प्रदान की है। कविता को प्रवाहपूर्ण, ओजपूर्ण, सरल, सुबोध और सरसता के गुणों से परिपूर्ण करने के लिए उनकी कविता में वे सभी गुण एवं घटक प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं जिनकी आवश्यकता प्रत्येक कवि को होती है।

7.3 संप्रेषण की प्रगतिशीलता के लिए अलंकार

अपने कथन को आकर्षक एव कविता को चमत्कार प्रदान करने हेतु अलंकारों के प्रयोग की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। कविता में जब अलंकारों का प्रयोग अनावश्यक रूप से किया जाने लगता है तो भी वह अपनी प्रकृति और निजी स्वरूप को खोने लगती है। ऐसी दशा में कविता में दूरूहता एवं अविश्वसनीयता जैसे दुर्गुण भी घर कर जाते हैं। अनायास ही जब अलंकार का कविता कलेवर से संयोग होता है तब कविता में अद्भुत सौंदर्य और निखार के साथ आकर्षण उत्पन्न होता है। यथार्थवादी कवियों ने अलंकार से किसी सीमा तक परहेज का सा व्यवहार किया। प्रायः इन साहित्यकारों ने अलंकार की उपेक्षा यह सोच कर की थी कि इससे कविता में कृत्रिमा का प्रवेश होगा जो यथार्थवाद की दृष्टि से अनुकूल एवं वांछनीय न होता। दूसरी और प्रगतिशील आन्दोलन को प्रभावशाली और आकर्षक बनाने के लिए प्रगतिशील आन्दोलन को प्रभावशाली और आकर्षक बनाने के लिए प्रगतिशील साहित्यकारों ने उसकी आवश्यकता को स्वीकार भी किया। प्राचीन अलंकार शास्त्र की परंपरा से हटकर कुछ नए अलंकारों से भी आधुनिक युग में साहित्य का सामना हुआ।

प्रगतिशील विचारों के होने के कारण नागार्जुन ने अलंकारों से केवल इस कारण नफरत करना उचित नहीं समझा कि उनमें से परम्परा की गंध आती है अथवा अलंकारों

के प्रयोग से साहित्य में कृत्रिमता आने के कारण उसमें यथार्थ बोध हल्का पड़ जाएगा यह तो स्वयं कवि के भाव-बोध और इंद्रिय बोध के साथ साथ उसके जीवन दर्शन और रूचि से जुड़ा हुआ सवाल है। किसी से अचानक मिलने पर खुशी होती है। पूर्व परिचित यदि अनायास कहीं मिल जाएँ तो हर्ष ही होता है। उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से कर्मरत कवि की रचना में आने वाले अलंकार तो कविता के सौंदर्य में वृद्धि ही करते हैं। नागार्जुन की कविता को पढ़ने पर यह बात साफ साफ दिखाई देती है कि अलंकार उनकी कविता में जहाँ भी आए हैं कविता के स्वाभाविक स्वरूप के अंग के रूप में ही विद्यमान हैं। उनकी कविता में कहीं भी अलंकार की जबरदस्ती की गई घुसपैठ नहीं दिखाई देती। इससे उनकी कविता का कला पक्ष स्वाभिविकता को अक्षुष्ण बनाए रखकर भी आकर्षक और प्रभावोत्पादक हो गया है। प्रगतिशील साहित्य चूंकि यथार्थ जीवन से निरंतर जुडा रहता है, इसलिए उसमें अमूर्त कोमलता के अभाव का आरोप प्रायः लगाया जाता है। निश्चय ही नागार्जुन की कविता में रीतिकाल कवियों सी कल्पना प्रसूत कोमल एंव अमूर्त भावों की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। यर्थाथ के कठोर को अपने भीतर संजोए हुए भी नागार्जुन ने वात्सल्य और दाम्पत्य प्रेम के चित्रण पर जब कलम चलाई है तो उनकी कविता में आशा के विपरीत कोमलता स्वयंमेव उत्पन्न हो गई है। अन्तर यही है कि कविता में कोमल और अमूर्त के चमत्कार को जबरदस्ती पैदा करने के लिए अंलकार का प्रयोग रीतिकालीन कवियों की तरह नागार्जुन नहीं करते। कविता के सहज प्रवाह में यर्थाथ का चित्रण करते करते अंलकार उनकी कविता में स्वाभाविक रूप से आते हैं, जिससे यर्थाथ बोध को स्पष्टतर करने में वह सहायक होते है। अकाल और भुखमरी की समस्याओं को अपनी कविता का बिषय बनाते समय भी बिभीषिका को अनावश्यक रूप से भयंकर बनाने की भूल उन्होंने नहीं की है। अन्यथा अतिश्योक्ति अंलकार की सहायता से वह, पूंजीपतियों, नौकरशाही और सरकार सब पर भीषण दोषारोपण करके पीडित वर्ग से ज्यादा, विरोधी राजनीतिक दलों की प्रशंसा के पात्र बन जाते। प्रगतिशील कवि के नाते यर्थाथ को अतिरंजित करके प्रस्तुत करने के दोष से उन्होंने बराबर दूरी बनाए रखी है। अंलकारों मे उपमा तो उनका प्रिय अंलकार है जिसका उपयोग अपनी बात को स्पष्ट करने और जनसाधारण को अच्छी तरह अपनी बात समझाने के लिए उन्होंने अपनी कविता मे किया है।

इंद्रनील की माला डाले
शंख सरीखे सुघड़ गलों में। (उपमा)

बादल को घिरते देखा है' उनकी प्रसिद्ध कविता है जिसमें हिमालय के शिखरों पर बादलों के झंझानिल का मूर्त चित्रण किया है। वहाँ भी उपमा अलंकार की सहायता से प्रकृति के यथार्थ सौंदर्य का स्वरूप पूरी तरह उभारने के लिए ही किया है।

छोटे छोटे मोती जैसे उसके शीतल तुहिन कणों को
मान सरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरत देखा है।

कालिदास कविता की पंक्तियाँ भी उपमा अलंकार के प्रयोग मनोरम एवं चिन्ताकर्षक बन गई हैं।

शिवजी की तीसरी आँख से निकली हुई महाज्वाला मे।
घृत मिश्रित सूखी समधा सम कामदेव जब भस्म हो गया।
रति का क्रंदन सुन आँसू रो, तुगने ही तो दृग धोए थे।

'तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ', सिन्दूर तिलकित भाल, बताऊ और तालाब की मछलियाँ कविताओं में भी उपमा अलंकार का प्रयोग यथार्थ की अभिव्यक्ति स्पष्ट और पुष्ट करने के काम आया है। कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग भी यथार्थ का मूर्त चित्र, पाठकों' के सामने खींचने के उद्देश्य से अपनी विभिन्न कविताओं में किया है।

थी उग्र साधना पर जिनका
जीवन-नाटक दुखान्त हुआ
था जन्म काल में सिंह लग्न
पर कुसमय ही देहान्त हुआ
-उनको प्रणाम

इस कविता में रूपक अलंकार का उपयुक्त प्रयोग करने के साथ ही कवि ने

अपने फलित-ज्योतिष ज्ञान का भी परिचय दिया है। फलित ज्योतिष के अनुसार सिंह लग्न में जन्म लेने वाले जातक पराक्रमी साहसी और विषम परिस्थितियों में भी दीर्घ जीवी होते हैं। यदि सामान्य प्रकार से उक्त स्वतंत्रता सेनानी ने जीवन यापन किया होता तो वह अपने घर-परिवार के लोगों को दीर्घकाल तक सबल संबल का कामदेता किन्तु जानबूझ कर वह स्वाधीनता आन्दोलन रूपी मौत की आग में कूद पड़ा। ऐसा बताने का केवल यह तात्पर्य है कि जिससे इन देशभक्तों के बलिदान और साहस की कथाओं से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर सकें।

रवि ठाकुर पर लिखी गई अपनी प्रसिद्ध कविता में रवि ठाकुर को 'भगवती वीणापाणि शारदा के नूपुर' की संज्ञा दी है उनके वैभव और विलास पूर्ण बचपन का वस्तुगत वर्णन किया है। फिर उनकी विशाल हृदयता की बात करते करते कवि अर्थहीन गिथ्याडम्बर और अंध विश्वासों से घिरे समाज के बीच रहते एक निर्धन कृषक परिवार में अपने जन्म और बचपन के दिनों के चित्र को एक रूपक के माध्यम से पुष्ट करके प्रस्तुत करते है -

पैदा हुआ था मैं -
दीन-हीन-अपठित-कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि? में रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते !!
जीवन गुजरता प्रति पल संघर्ष में।।
मुझको भी मिली है प्रतिभा की प्रसादी .....
मुझसे भी शोभित है प्रकृति का अंचल .....
तुम्हारा यश-सागर असीम लहरा रहा, अग-जग मे भू पर।!

इस कविता में तो नागार्जुन ने उपमा और रूपक दोनों ही अलंकारों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। ऐसी ही एक लम्बी कविता है भिक्षुणी, जिसमें युवावस्था में पहुंचने पर बौद्ध भिक्षुणी के मन में इस संसार तथा गृहस्थ जीवन विषयक अनेक जिज्ञासाएँ उत्पन्न

होती हैं। उसके इस कौतूहल का वर्णन भी कवि ने अनेक स्थलों पर रूपक और उपमा की सहायता से तो किया ही है। उस युवा भिक्षुणी की उर्वर कल्पना शक्ति से उत्प्रेक्षा की जो सृष्टि इस कविता में हुई है वह भी दर्शनीय है -

तीन बार उसने
सादर प्रणाम किया
झुक-झुक अभिताभ को
फिर उठ खड़ी हुई चारो ओर देखा
हत प्रभ सी मानों शिशिर - शशि लेखा।

× × × × ×

विजन विहार की शत-शत प्रतिमा
मुझी को घूर रहीं।
घण्टाकर्ण वज्रपाणि भयानक यक्ष वह
व्यंग भरी दृष्टि से मुझे ही निहार रह।
वक्र मुख होकर ग्रीवा भंग करके
मानो कुछ क्षण में
करेगा उपहास
मेरे दुर्दैव का
मेरे दुर्भाग्य का।

एक ही कविता म एक दूसरे से जुडे दोनों प्रसंगों में उत्प्रेक्षा अलंकार की सार्थकता से कवि ने अलक्ष्य को भी पाठक की आँखों के सामने उपस्थित करने की चेष्टा की है। पाठक अपनी कल्पना की आँखों से बौद्ध, जेन और हिन्दू धर्म की उन युवतियों के हृदय के भावो को समझ सकता है जो इसी भिक्षुणी की तरह धर्म क ठेकेदारों द्वारा गृहस्थ जीवन से दूर रह कर जीने को विवश बना दी गई है। धर्म मनुष्य के कल्याण के लिए है। धर्म मनुष्य को सहज जीवन जीने की सीख देता है। फिर वही धर्म इन युवतियों के जीवन में जहर क्यों घोल रहा है। क्यों वह जिन्दा लाश बनी फिर रही है। यह सब सोचने के लिए पाठकों को बाध्य करना ही तो नागार्जुन जैसे प्रगतिशील कवि का उद्देश्य था। पाठक पर वांछित प्रभाव

उत्पन्न करने के लिए ही यहाँ उत्पेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

रजनी गंधा कविता में भी सन्देहालंकार का प्रयोग करके कवि ने रजीन गंधा के सौंदर्य चित्रण मे चार चाँद लगाये हैं

आई निशा कि फिर खिलीं कौन तुम सजनी -
रजनीगन्धा बनकर भू पर उतरी हो?
अभिशापित देवसुता या कि परी हो।
पुलकित होते तन-मन, जगती है वाणी
जय जय जय जय कल्याणी!

मिथ्यादंभ के कारण न तो नागार्जुन ने अलंकारों को ठुकराया हे और न ही अनावश्यक रूप से अपनी कविता में उनको घुसाया ह। बड़े ही संतुलित ढंग से, स्वाभाविक रूप मे अलंकार उनकी कविता में अर्थ और रूप सौंदर्य की अभिवृद्धि के लिए नहीं अपितु उसे सबल और प्राणवान बनाने के ध्येय की पूर्ति करते हैं।

7.4 कविता में नाटकीय तत्व

अपनी कविता को नीरस और बोझिल होने से बचाने के अलावा कविता को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से कई बार कविता में नाटकीय तत्वों का समावेश भी कवि को करना पड़ता है। ऐसा जानबूझकर भी किया जाता है क्योंकि इससे कविता की रंगमंच पर प्रस्तुति द्वारा दर्शकों और श्रोताओं पर वह दीर्घ काल के लिए स्थायी प्रभाव छोड़ती है। दर्शक दृश्येन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय दोनों के माध्यम से कवि के वांछित आशय को ग्रहण कर सकता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दीर्घ घटना को ग्रहण कर सकता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दीर्घ घटना प्रधान कविता के विविध पात्र अपने कथनोपकथन के अतिरिक्त अपने मूर्त रूप में अपनी भाव-भंगिमा, हाव-भाव से शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालते हैं। प्रचारवादी दृष्टि कोण से रंगमंच का सहारा लेकर ऐसी कविताओं के द्वारा किसी दृष्टि कोण या विचारधारा का प्रचार-प्रसार आसानी से किया जा सकता है। हो सकता है नागार्जुन ने दोनों उद्देश्य सामने रखकर, उनकी पूर्ति के लिए ही अपनी कविता में नाटकीय तत्वों का संयोजन बडें कौशल के

साथ किया है। उनकी अनेक कविताओं में नाटकीय तत्व विद्यमान हैं। इस दृष्टि से भिक्षुणी कविता में एकाभिन्य की संभावना अपने प्रखर प्रभाव को दर्शकों तक पहुचाने के लिए बड़ी प्रबल और स्पष्ट है। अशिक्षित एवं निर्धन समाज में भिक्षुणी बनाने की प्रथा विभिन्न धर्मों एवं प्रान्तों में आज भी मौजूद है । यदि इस कविता का एकाभिनय प्रभावित वर्ग के लोगों में और संबंधित इलाकों में कराया जाए तो बहुत बड़ा सामाजिक उपकार हो सकता है। छोटी उम्र में अबोध कन्याओं को शिक्षा और धन के अभाव से या धार्मिक रूढ़ियाँ से भयभीत होकर जो साध्वी, भिक्षुणी, नन या देवदासी बनने-बनाने की प्रथा है उस पर काफी हद तक अंकुश लग सकता है।

'हरिजन गाथा' ऐसी एक सशक्त रचना हे जिसका मंचन बड़े अच्छे ढंग से किया जा सकता है। इस कृति को मंच या स्टेज पर तो कुशलता पूर्वक और प्रभाव शाली ढंग से अभिनीत किया ही जा सकता है। उसमें पात्रों की पर्याप्त संख्या है। हर उम्र के स्त्री-पुरूष दोनों पात्र हैं तथा प्राचीन पद्धति के अनुरूप सूत्रधार के लिए भी पर्याप्त गुंजाइश है। नाटक शाला में इसे दो या तीन दृश्यों के एकॉकी या कर्टेन रेजर के रूप में दिखाया जा सकता है। टेलीफिल्म बड़े ही सफल ढंग की बन सकती है और रेडियो रूपक का रूप भी ले सकती है। नाटक शाला में स्टेज पर ध्वनि और प्रकाश के संयोजन से इसके प्रभाव में और भी अधिक वृद्धि की जा सकती है।

इन सबके अतिरिक्त 'हरिजन गाथा' में एक ऐसी संभावना है जो इसे सबसे अध्कि लोकप्रिय भी बना सकती है और दर्शकों के एक बहुत बड़े वर्ग एवं समुदाय पर अमिट छाप भी छोड़ सकती है। यह काम 'नुक्कड़ नाटक' के माध्यम से बिना किसी ताम झाम और खर्च के जन साधारण में जागृति पैदा करने के पवित्र उद्देश्य से किया जा सकता है। हरिजन गाथा में नाटक के सभी तत्व अपने आकर्षक और सशक्त रूप में मौजूद हैं। एक-एक करके हम इसमें नाटक के तत्वों पर भी विचार करे तो पाएँगे कि यह रचना नाटकीय तत्वों से भरपूर है। इसका उद्देश्य उदात्त के साथ प्रासंगिक है। कथावस्तु घटना प्रधान, मनोरंजक विचारोत्तेजक

के साथ छोटे कलेवर की है। पात्रों की संख्या समायोजनीय और उपयुक्त है। पात्र कथानक के अनुरूप एवं सभी आयु वर्ग लिंग के है सभी श्रमिक एवं शोषितसमुदाय से हैं। कथोपकथन संक्षिप्त हैं। केवल संत गरीबदास के अतिरिक्त सभी पात्र साधारण और थोड़ा सा कथन लिए हैं। अंत में जहाँतक प्रभाव की बात है, रचना निश्चित रूप से जन मानस को अपना मन कुरेदने-सोचने को विवश करेगी, सरकार और समाज-सुधारकों के लिए भी लाभकारी सिद्ध होगी। अतः कहा जा सकता है कि इस कविता में नाटकीय तत्वों की सृष्टि करने में कवि को अद्‌भुत सफलता मिली है। इसके अभिनय से समाज में धनात्मक परिवर्तन आने की पूरी पूरी संभावनाएँ हैं। शिक्षण संस्थाओं और नुक्कड़ नाटकों में इस रचना को प्रोत्साहन दिया जाना वांछनीय होगा।

प्रगतिशील विचारों की सृष्टि और उनके प्रचार प्रसार में सशक्त और सहायक सिद्ध होनेवाली नागार्जुन की एक अन्य कविता है - 'तीन सिरों वाला बेताल', यद्यपि मंचन की दृष्टि से यह रचना हरिजन गाथा के समकक्ष तो नहीं है, फिर भी नाटकीय तत्व इसमें मौजूद हैं। मंच पर प्रकाश और ध्वनि की व्यवस्था और समायोजन से दर्शकों पर वांछित प्रभाव भी पड़ेगा। देश के युवा वर्ग में निश्चय ही यह हलचल पैदा कर सकती है। धन कुबेरों के ठाठ-बाट, फिजूल खर्ची लंच और डिनर पर होने वाले अपव्यय की पोल खोलती है, तो दूसरी ओर अफसरशाही के भ्रष्ट आचरण का भी भंडाफोड करेगी। प्रमुख पात्र तो दो ही हैं। पर कथोपकथन बहुत लंबे और उबाऊ भी हो सकते हैं, परन्तु उन्हे पर्द के पीछे से सूत्रधार द्वारा भी बोला जा सकता है। इसी प्रकार छोटी मछली-बड़ी मछली, इस गुब्बारे की छाया में, हमें वापस दे दो, चना जोर गरम, ओ मेरे वंशमणि ओ मेरे कुलदीप तथा जाति गौरव गंगदत्त आदि ऐसी अनेक सशक्त रचनाएँ हैं, जिनमें नाटकीय तत्व जीवन्त होकर उभरे हैं। वैसे भी नाटकीय अंदाज में अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से कविता द्वारा जनसाधारण के भीतर गहरे उतार देने की कला में नागार्जुन अद्वितीय हैं।

7.5 लोकनृत्य एवं संगीत

शिल्प में रोचकता और अपनापन उत्पन्न करने की दृष्टि से जन-साधारण के

लिए लिखे गए काव्य मे लोक नृत्य एवं संगीत का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान हैं। गॉवों में मनोरंजन के क्षणों में शौकिया नृत्य एवं संगीत मंडलीयो के माध्यम से किसी विचारधारा का प्रचार बड़ी शीघ्रता से व्यापक रूप में करने के लिए तो इसकी उपदेयता पर संदेहकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। उनकी इस प्रकार की अनेक रचनाएँ हैं। जिनकी प्रस्तुति लोकनृत्य और लोक संगीत द्वारा बड़ी प्रभावशाली बन सकती है। "इंदु जी इंदु जी क्या हुआ आपको, मेघ बजे, फूले कदंब, फिसल रही चांदनी,स्यामघटा सित बीजुरि रेह, आओरानी तथा झण्डा" जैसी रचनाओं को गाते समय ढोलक की थाप पर, नृत्य में रूचि रखने वाले के पाँव अनजाने में ही थिरकने लगें तो कोई अचरज नहीं होगा। केदारनाथ ने भी आंचलिक संगीत और लोक नृत्य के तत्वों का सुन्दर समायोजन अपनी कविताओं में किया है। जनवादी कवि को अपना संदेश जन जन के मन तक पहुँचाने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है। नागार्जुन की 'क्या हुआ आपको' कविता इस कथन की पुष्टि करती है -

क्या हुआ आपको?
क्या हुआ आपको?
सत्ता की मस्ती में भूलगयीं बाप को?
बेटे को तार दिया, बोर दिया बाप को

7.6 शब्दचित्र प्रस्तुति

अपनी कविता में प्रगतिशील कवि जिस यथार्थ को उभारता है, उसका वर्णन पाठक या श्रोता के मानस पटल पर यदि घटना का दृश्य उपस्थित कर दे, तो उसका प्रभाव पाठक के मन-मस्तिष्क पर अमिट ओर चिर-स्थायी हो जाता है। यह काम सफलता पूर्वक करना हर कवि के बूते की बात नहीं है। जनवादी कवि नागार्जुन को शब्द चित्र प्रस्तुत करने में विशेष रूप से सफलता मिली है। उनकी कविता 'बादल को घिरते देखा है' में वह किन्नर-किन्नरियों के मदिरापान का चित्र पाठक के मन पर उकेर देते हैं। अन्न पच्चीसी , भूख से व्याकुल जनता का, तीनों बन्दर बापू के- नेताओं के स्वार्थ का, वह फिर जी-उठी-नदी

में पानी आने से आस पास के गॉवों की खुशियो का शब्द चित्र पाठक के मन पर उकेर देने में समर्थ हैं। इन कविताओं में शब्द मात्र सार्थक ध्वनि ही नहीं, बिंब योजना, मानस पटल पर चित्र की कौंध या फ्लैश सा चमका देने की सामर्थ्य से भरे हैं।

संक्षेप मे यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अपनी प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप ही जनवादी कवि नागार्जुन ने शिल्प के साथ भी पूरा न्याय किया है। वह बंधे बंधाए ढर्रे पर चलने वाले साहित्यिक नहीं हैं। उन्होंने काव्यशास्त्र के अध्ययन अध्यापन को अपनी प्रयोगशीलता द्वारा नवजीवन प्रदान किया है। शिल्प के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियाँ इतनी अनूठी एवं विविधता सम्पन्न हैं, कि कहना पड़ेगा कि नागार्जुन ने कविता के लिए शिल्प योजना में नए प्रतिमान खड़े किए हैं। पुरातन और अधुनातन का अद्भुत संयोग उनकी कविता को असंदिग्ध रूप से रोचक और लोकप्रिय बनाता है। शिल्प विधान के फेर में पड़कर वह अपने दायित्व से कभी विमुख नही हुए हैं। कविता में शिल्प के विभिन्न अंगों का युक्ति युक्त समायोजन करते हुए एक यथार्थवादी रचना को कोई प्रगतिशील कवि किस प्रकार जनप्रिय बनाकर, पाठक के अन्तर में पैठ सकता है, यह कोई नागार्जुन से सीखे।

अष्टम अध्याय

समकालीन कविता में नागार्जुन का महत्व

प्रत्येक साहित्यकार के सामने युगीन समस्याएँ होती हैं। अपने परिवेश में होने वाले घटनाक्रम से उसका संवेदनशील हृदय प्रभावित होता है। यह प्रभाव उसकी साहित्यिक रचनाओं में भी झलकता है। युगबोध ही कवि का अपने समकालीन साहित्य और समाज से सम्बन्ध स्थापित कराता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में भारतीय जनता साम्राज्यवाद, सामन्तवादी शोषण और सूदखोर साहूकार वर्ग के चंगुल से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही थी। रूस में 1917 की क्रांति के बाद अन्य देशों की शोषित जनता को भी इसी प्रकार संगठित होकर शोषण के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा मिली। साहित्य ने समाज की आवश्यकता को पहचाना तथा 1935-36 के आस पास भारतीय साहित्य में शोषण के विरोध में अपना स्वर मुखर करना शुरू किया। युग प्रवर्तक प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानियों और उपन्यास के द्वारा साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक धर्मयुद्ध ही छेड़ दिया। हिन्दी कविता के क्षेत्र में क्रांति की इस लहर ने प्रवेश किया। छायावाद को बुलन्दी तक पहुंचाने वाले सुमित्रानन्दन पन्त और निराला जैसे महाकवियों ने समाज के प्रति साहित्यकार के इस दायित्व को निभाने का नेतृत्व संभाला। उन का अनुसरण करने वाली अगली पीढ़ी में गया प्रसाद शुक्ल सनेही, डा0 राम विलास शर्मा, सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द जैसे लोग आगे आए।

मैथिली शरण गुप्त जैसे गांधीवादी रचनाएँ करने वाले कवियों की रचनाओं में भी श्रमिक और किसान के शोषण का वर्णन उभरकर आने लगा। मार्क्सवाद से प्रभावित युवा वर्ग ने सच्चे अर्थों में साहित्य में साम्राज्यवादी नीतियों के विरूद्ध प्रगतिवाद के आन्दोलन का सूत्रपात किया। डा0 रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य के सूत्र को अपने हाथ में लेकर कवियों का ध्यान इस बात की ओर खींचा कि प्रगतिशील साहित्य समाज की दलित, पीड़ित और

अभावग्रस्त जनता की तरफदारी का साहित्य है। उधर कांग्रेस पार्टी साम्राज्यवाद का विरोध अपनी सीमाओं के भीतर रह कर ही कर रही थी। गाँधी जी के अहिंसा और चरखे से साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद का मुकाबला नहीं किया जा सकता, यह सोचकर मार्क्सवादी विचार के लोगों ने किसान, खेतिहर मजदूर और मिल मजदूरों को क्रांति के लिए संगठित करना शुरू किया। इसी उद्देश्य से जगह जगह ट्रेड यूनियनों की स्थापना की गई। इस मार्क्सवादी राजनीतिक विचारधारा से अनुप्राणित कवियों और कथाकारों ने साहित्य के द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए साहित्य में प्रगतिवादी रचनाओं का लेखन और प्रकाशन शुरू किया। कलम की ताकत तलवार से कम नहीं होती। अंग्रेजी हुकूमत इस प्रकार के साहित्य से अपने लिए बढते खतरे से सतर्क हो गई। इन दिनों ब्रिटिश सरकार ने सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं को जब्त करा लिया। प्रगतिशील रचनाकारों में से अनेक को जेल की हवा भी खानी पड़ी। इस प्रकार साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरूद्ध राजनीतिक मोर्चा तो पहले से ही खुला था, अब अघोषित सांस्कृतिक युद्ध और शुरू हो गया। हंस, जागरण, विश्वमित्र तथा 'आज' जैसे समाचार पत्र और पत्रिकाओं में विभिन्न लेखक मार्क्सवाद, साम्यवाद, समाजवाद और प्रगतिवाद पर अपने विचार पाठकों के पढ़ने और मनन करने के लिए लिखते थे। इससे समाज में एक वैचारिक क्रांति की शुरूआत हुई। इन लेखों को पढ़कर, पाठक आपस में इन पर अपने विचार प्रकट करते थे। अनपढ़ जनसाधारण भी कम से कम सुन कर ही सही, इन विचारों के कारण उद्वेलित होता था। लेखकों के आह्वान पर अनेक समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता अनपढ़ भारतीय समाज में इन विचारों का प्रचार-प्रसार करने के लिए आगे आए। गाँवों में एक नई सामाजिक चेतना का जन्म होने लगा। स्वयं सेवी संगठन एक एक मुट्ठी अनाज का चंदा इकट्ठा करके गाँव-गाँव जाकर शोषण के शिकार किसान और मजदूरों को संगठित करने के काम में जुट गए। ग्रामीण रात्रि पाठशालाएँ भी खुलीं। यहाँ अक्षर-ज्ञान के अतिरिक्त शोषण के विरूद्ध संगठित होने के लिए प्रौढ़ मजदूर और कृषक जनता को प्रोत्साहित किया जाता था।

इन्हीं समर्पित समाजसेवी युवा कार्यकर्ताओं ने ग्रामसुधार समितियों का गठन

किया। ग्रामीण जनता को एहसास होने लगा कि उसके श्रम के बल पर ही सरकारी ताम-झाम की शान शौकत, सामन्तों के ऐश आराम तथा साहूकारों की पूंजी में वृद्धि हो रही है। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सोई हुई जनता में स्फूर्ति का संचार हुआ अकाल की विभीषिका से त्रस्त किसानों को जब मालगुजारी देने के लिए बाध्य किया जाने लगा तो उसका विरोध पहली बार किसानों ने किया। साम्राज्यवादी सरकार ने अपने प्रतिनिधि चाटुकारों के हितसंरक्षण के लिए किसानों पर दमन चक्र चलाया। इसकी प्रतिक्रिया में पहली बार भारत के विभिन्न भागों में कृषक जनसमूह विद्रोह पर उतारू हो गया। लगान बन्दी आन्दोलन जोर- शोर से चला। अंग्रेज अफसर जनता को संगठित देखकर चकित रह गए। सरकार शायद झुक भी जाती परन्तु गाँधी जी ने लगान-बन्दी आन्दोलन का समर्थन करना अस्वीकार कर दिया। इससे जनता का मनोबल तो टूटा परन्तु किसान-मजदूर यह समझ चुके थे कि अगर उन्हें बेगार प्रथा और शोषण से मुक्ति पानी है तो उसके लिए संगठित होना जरूरी है। साहित्य के माध्यम से जन जागरण के इस पुनीत यज्ञ की आग बराबर जलती रहे, मद्धिम पड़कर कहीं बुझ न जाए, इस ख्याल से डा0 राम विलास शर्मा, केदार नाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शिवमंगल सिंह सुमन, नेमीचन्द्र जैन, गिरिजा कुमार माथुर तथा भारत भूषण अग्रवाल जैसे कवियों ने प्रगतिशील साहित्य की रचना की जिम्मेदारी का बीड़ा उठाया। इन कवियों की प्रगतिशील रचनाओं के कारण ग्रामीण ही नहीं शहरी क्षेत्र में भी सामाजिक एंव राजनीतिक क्रान्ति की लहर उत्पन्न हो गई। कांग्रेस के भीतर भी कुछ ऐसे नेता थे जो कांग्रेसी नेताओं की नरम राजनीति से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने कांग्रेस के भीतर रहते हुए भी एक सोशलिस्ट गुट बनाकर समाजवादी आन्दोलन चलाने की पुरजोर वकालत की। इन नेताओं मे प्रमुख थे- आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण। लम्बे संघर्ष के बाद जब देश आजाद हुआ तो बलिदान, देश सेवा एवं समाज सुधार की भावना धीमी पड़ने लगी। कुछ लोगों का विचार था कि साम्राज्यवाद की गुलामी से मुक्ति के बाद अब सामाजिक- राजनीतिक क्रान्ति का विचार अप्रांसगिक और बेमानी हो गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात प्रजातन्त्र की स्थापना से स्वयं ही धीरे धीरे वांछित स्वप्नों की पूर्ति हो जाएगी। साहित्य और राजनीति मेंकुछ लोगों की यह धारणा अब जोर पकड़ने लगी कि कांग्रेस ~~में प्रवेश~~

में प्रवेश करके अथवा कांग्रेस संगठन से समझौते की नीति अपना कर, अपेक्षित सामाजिक सुधारों के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। उधर कांग्रेस के प्रमुख नेता शायद जेल• की यंत्रणाओं और लम्बे स्वाधीनता संघर्ष के बाद सत्ता के स्वाद पर ऐसे मोहित हुए कि जनसाधारण की समसयाओं की तरफ से उन्होंने पूरी तरह मुंह मोड लिया। जो राजनेता श्रमिक वर्ग और किसानों को ब्रिटिश सरकार से लड़ने के लिए उकसाते थे, अब शान्ति-पाठ की सीख देने लगे। साम्राज्यवाद की शोषण नीति से छुटकारा पाने के बाद भी सर्वहारा वर्ग के जीवन में अभाव ज्यों के त्यो बने हुए थे। जब कभी साहित्य के माध्यम से जनता में विद्रोह की भावना जोर भी पकड़ती तो उसे फूट की कूट नीति से विफल करने की कोशिश की जाती। सत्ता की खुमारी में जनजीवन के स्तर के सुधार की ओर ध्यान देने के लिए, अब इन नेताओं के पास समय नहीं था। ऊपर से जनसेवक बनने का ढोंग रचने वाले राजनेता धीरे धीरे भ्रष्ट होने लगे। साहित्य में चल रहे प्रगतिशील आन्दोलन की गति को भी ओंथरा करने की भीतरी चालें चली जाने लगीं। कुछ साहित्यकारों को सुख-सुविधा का चारा भी फैंका गया। बेखबर-बेसुध कबूतरों की तरह कुछ साहित्यकार इस-राजनीतिक चाल के शिकार हो गए। कई साहित्यकार मासि-जीवी से राजनेता बनने की कोशिश करने लगे। दिखावा ऐसा करते कि राजनीति के बाहर रह कर वह जनता की सेवा नहीं कर सकते थे। राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करके वह राजनीति को स्वच्छता प्रदान करेंगे। राजनीतिज्ञों के सोचने और काम करने की पद्धति में परिवर्तन उत्पन्न कराने की सक्रिय भूमिका निबाहेंगे। ऐसे समय में नागार्जुन की भूमिका कैसी रही, यह विचारणीय है।

४.। आरम्भ से अब तक सामाजिक चेतना से भरपूर

हिन्दी साहित्य जब छायावाद के रोमानी ताने बाने के कल्पना जाल में अपने पाठकों को उलझाए हुए था, साम्राज्यवाद अपने शोषण के पंजे देश में पूरी तरह जमा चुका था। ब्रिटिश शासक एक ओर तो भारतवासियों का आर्थिक शोषण करने में पूरी तरह जुटा था दूसरी ओर बुद्धिजीवी वर्ग इस बात से बेखबर था कि गोरी सरकार भारतीय संस्कृति को समूल नष्ट करने की कुत्सित चेष्टा कर रही थी। धर्म जाति और लिंग के आधार पर बरते जाने वाले

भेदभाव की भावना से उन्हें अपने ध्येय में सहायता मिल रही थी। अंग्रेजों ने इसी छूआ छूत, धार्मिक वैमनस्य को बढावा देकर विभिन्न समुदायों के बीच गहरी खाई खोदने का भयंकर और खतरनाक खेल खेला। इससे समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग को हानि पहुंचाने में ही आत्मतुष्टि का अनुभव करने लगा। आपसी वैमनस्य के इस आत्मघाती खेल में रमकर समाज अपनी शक्ति स्वयं क्षीण कर रहा था। इसी बीच रूस की बोल्शेविक क्रांति की हवा का एक परिवर्तनकारी झोंकाभारत में भी आया।

बुद्धजीवीवर्ग ऊंघते से जगा । उसे अंग्रेज सरकार की कुत्सित नीति का सही आभास हुआ। राजनीति की इस शतरंज में परस्पर लड़ने झगड़ने में चुक रहने से होने वाली सामाजिक क्षति को रोकने के लिए यह वर्ग व्यग्रता अनुभव करने लगा। इस विकलता से साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के पश्चात इसके कार्यकर्ता सदस्य अपने जन-अभियान के कठिन काम में मन-प्राण से जुट गए। प्रगतिशील आन्दोलन में युवा कवि वैद्यनाथ मिश्र, जो आगे चलकर नागार्जुन कहलाए, ने हरावल के दस्ते में सहर्ष शामिल होना स्वीकार किया। वह कविता में तीव्र तेवर लेकर अवतरित हुए। उन्होंने सबसे पहला काम किया, ब्रिटिश शासन द्वारा फूट डालकर समाज को खोखला करने वाली नीति का अपनी लेखनी से पर्दाफाश करके। आर्थिक रूप से दीन, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से क्षीण तथा राजनीतिक नजरिए से हीन भाव से ग्रस्त जनमानस को स्वाभिमान की चेतना से भरकर उसे सम्मानपूर्वक जीने की प्रेरणा दी। सबसे पहले समाज में ऊंच नीच, छूआछूत और पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने के नैतिक दायित्व की ओर उनका ध्यान गया। कल्पना लोक में विचरण करने वाले कवि से ऐसी आशा करना कठिन ही है। परन्तु उन्होंने अपने स्वयं के व्यक्तिगत जीवन में इस भेद-भाव जन्य पीड़ा से साक्षात्कार किया था, इसलिए समाज की एकता में अनुभव किए गए, इस सबसे बड़े बाधक तत्व को ही, निर्मूल करने की ओर उन्होंने ध्यान केन्द्रित किया। एंगेल्स और मार्क्स के सामाजिक-आर्थिक विचारों से उनका परिचय बहुत पहले ही हो चुका था। उनकी समझ में यह बात अच्छी तरह जम चुकी थी कि सब बुराइयों की जड़

निर्धनता है। अभाव से ही मनुष्य में हीन भाव पैदा होता है। यदि मनुष्य को स्वाभिमान से जीना है तो सबसे पहले उसे अपने आर्थिक शोषण का विरोध करना होगा। 'सर्वगुणाः कांचनमाश्रयन्ति' अर्थात धन द्वारा मनुष्य सर्वगुण सम्पन्न कहलाता है। यद्यपि धनिक वर्ग ही नैतिक दृष्टि से अधिक भ्रष्ट होता है परन्तु मानव समाज में देखा यही जाता है कि जिसके पास धन है,उसके विरूद्ध बोलने का साहस कोई नहीं कर पाता। धन के अभाव में गुणवान व्यक्ति भी समाजमें सम्मान मुश्किल से पाता है। निर्धनता मनुष्य का सबसे बडा शत्रु है। प्रगतिशील विचारों से सम्पन्न युवाकवि वैद्यनाथ मिश्र ने इस धन-पिशाच वर्ग का मुकाबला करने के लिए सर्वहारा-जनसाधारण वर्ग में एकता की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया। उच्चजाति के लोग समाज के निम्न वर्ग का पीढ़ी दर पीढ़ी इसी कारण शोषण करने में सफल रहे क्योंकि समाज में नीच समझे जाने वाले लोग गरीबी और अभावों की चक्की में पिस रहे थे। इस प्रकार समाज में दोही वर्ग प्रमुख रूप से पाए जाते हैं- धनवान और समर्थ तथा धनहीन और अभावग्रस्त। यह वर्ग संघर्ष सब जगह सदा चलता रहता है। छूआछूत और ऊंच-नीच की दुर्भावना को समाज से मिटाने के लिए गाँधी जी भी राजनीतिक स्तर पर सक्रिय थे। परन्तु नागार्जुन का दृष्टिकोण मार्क्सवादी होने के कारण वह उत्पीड़न, शोषण और सामाजिक अन्याय के विरोध में जन-साधारण को संगठित होने की प्रेरणा दे रहे थे। वह ऐसा मानने में हिचकते हैं कि अहिंसा और प्रेम के द्वारा अपने सबल शत्रु का हृदय परिवर्तन करके हिंसा और घृणा पर विजय पाई जा सकती है। बहुत संभव है कि नागार्जुन के जीवन में भी ऐसे अवसर आए होंगे जब जमींदार वर्ग ने नागार्जुन को शोषित के पक्ष में राजनीति करने से रोकने के लिए तरह तरह के दबाव डाले होंगे। सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी हो। ऊंची जाति में जन्म लेने के आधार पर वैद्यनाथ मिश्र को प्यार से फुसला कर मार्क्सवादी रास्ता त्याग कर सुखं सुविधा पूर्वक जीने का लालच भी दिया गया हो। यह उन दिनों की घटना हो सकती हैं, जब स्वाधीनता संग्राम में किसानों के आन्दोलन की अगुवाई करने के कारण वह जेल की सजा काट रहे थे। जेल से मुक्त होने के बाद पिता के आग्रह पर पुनः गांव में आकर अपनी विवाहिता पत्नी

श्रीमती अपराजिता के साथ रहने को वह तैयार हो गए। गांव में ऊंची जाति के लोगों ने विदेश यात्रा और सन्यास छोड़कर गृहस्थाश्रम में पुनः प्रवेश करने पर उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। शर्ते रखी गई होंगी समझौता कराने के लिए मध्यस्थता का वातावरण बना होगा। पिता ने मान-मनौवल की होगी। संपन्न वर्ग ने धमकाने के बाद प्रलोभन भी दिखाए होंगे। दृढ़ निश्चयी वैद्यनाथ मिश्र ने प्रगतिशील पथ पर अडिग अड़े रहने का संकल्प ही प्रदर्शित किया। तब शायद कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर को संबोधन करते हुए कवि के यह बोल फूटे होंगे -

बहुत बुरा हाल है!!
करूं मैं किस वर्ग में गिनती अपनी!
लेखक ही बना रहूं?
पकड़ लूं वह पेशा-
बाप दादा करते आए जो हमेशा?
नहीं नही ऐसा नहीं!
आशीष दो मुझको -
मन मेरा स्थिर हो!!
नहीं लौटूं, चीर चलूं कैसा भी तिमिर हो!!
प्रलोभन में पड़कर बदलूं नहीं रूख
रहूं साथ सबके भोगूं साथ सुख-दुख
गुरूदेव मेरे!

तब से आज तक नागार्जुन साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद के विरोध में प्रगतिवाद की मशाल लेकर समाज की अभाव ग्रस्त जनता का मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनकी दृष्टि में आरंभ से अन्त तक मनुष्य का सामाजिक आचरण ही उसके मान-सम्मान की कसौटी है। ऐसा नहीं कि इस विचार या धारणा में दूसरे लोग विश्वास नहीं करते, एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की जो मनुष्य के सार्वजनिक जीवन और सामाजिक अचारण की तराजू पर

ही तौल कर सामाजिक सम्मान या प्रतिष्ठा किसी को देना चाहता है। परन्तु निश्चय के साथ दृढ़तापूर्वक अचल और निडर होकर यह कहने का साहस बहुत ही कम लोग जुटा पाते हैं। प्रगतिशील विचारधाराके अनुसार मनुष्य का हित सामाजिक हित में ही निहित है। अतः सामाजिक हित ही जन जीवन में सर्वोपरि है। समाज के उत्थान में सब अपनी अपनी समर्थ्य के अनुसार योगदान करते हैं। हर नागरिक का यह योगदान प्रशंसनीय है। खेद की बात यह है कि समाजमेंसम्मान धनिक वर्ग और सत्ता में प्रतिष्ठित लोगों को ही प्रदान किया जाता है। किसान और मजदूरों की कर्मठताकेइस मामले शायद ही कभी श्रेय दिया जाता हो। साधारण जन और निम्न मध्यवर्गीय नागरिकों में इस कारण धीरे धीरे हीन भावना घर करने लगतीहै। अपनी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार शोषक वर्ग के विरोध में खड़े होने की तो वह सोच भी नहीं सकते। धीरे धीरे हालात से समझौता करने की स्थिति आ जाती है। इसकी परिणति होती है जीवन के प्रति उदासीनता के भाव में। नागार्जुन ने जनमानस पर पड़नेवाले इस मनोवैज्ञानिक दुष्परिणाम को अच्छी तरह भाँप लिया। सर्वहारा वर्ग के स्वाभिमान हो जगाने के लिए कवि ने अपनी कविता 'मेरी भी आभा है इसमें' यह विचार व्यक्त किए है -

नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें
भीनी भीनी खुशबू वाले रंग
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था
पकी सुनहली फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग रग के शोणित की बूँदें इसमें मुसकाती हैं।

(मेरी भी आभा है इस में 1960)

यहाँ तक पहुचने पर कवि के विचारोंमें जो प्रौढ़ता आई है , वह श्लाघनीय है। किसी को गालियाँ देने और कोसने से सर्वहारा की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा। भाव-बोध और इंद्रिया बोध से अर्जित परिपक्वता ओर स्थिति का विश्लेषण करके समस्या की तह तक पहुंचने की जहमत कम ही लोग उठाते हैं। हालात से समझौता और जीवन में उदासीनता का दृष्टिकोण समाज के वर्ग विशेष के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। देश को सुन्दर और समृद्ध बनाने में मजदूर और किसान अपने खून को पसीने के रूपमेंबहाता हुआ भी बदहाल बना रहे , यह बड़ी शर्मनाक स्थिति होगी। पूंजीपति वर्ग तो यही चाहता है कि किसान मजदूर के मन में बराबरी की भावना ही न उत्पन्न हो।नागार्जुन ने सर्वहारा को उसके अमूल्य परिश्रम की याद दिलाकर ,उसमें आत्मगौरव की भावना को प्रबल करके आत्म विश्वास जागृत करने का प्रयत्न किया है। देश में जब सर्वहारा को अपने रक्त की लाली मुसकाती दिखाई देगी तो उसे महसूस करते देर नही लगेगी कि समृद्धि और राभ्यता की यह गाड़ी उसी के बल पर चल रही है।

सेठ-साहूकार और राजनीति के धंधेबाजों की दलालीमें उसके हिस्से की समृद्धि कहीं खोकर रह गई हैं। उसे प्राप्त करने के लिए सर्वहारा को एक जुट होकर संघर्ष की राह पर उतरना होगा। आत्म गौरव के जन्म से हीन भावना दूर हो गई। अपनी आर्थिक दुर्दशा की ओर फिर से ध्यान गया। असंतोष की ज्वाला क्रांति के रूप में अवश्य ही परिवर्तित होकर रहेगी। सर्वहारा क्रांति का बीज अंकुरित होगा तो उसकी अदम्य शक्ति के आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। जो अब तकनगण्य और उपेक्षित था,वही एक दिन सबके लिए अचरज की चकाचौंध पैदा कर देगा। एक दशक बीता। कवि साठ की दहलीज पर दस्तक दे रहा है परन्तु उसके भीतर की आँच अब भी ठंडी नहीं पड़ी है। वह जीवन के आशावादी स्वरूप का पक्षधर है।

बस थोड़ी और उमस
बस थोड़ी और धूप

× × × × ×

क्या देर है भला बाहर आने में!
आज मैं बीज हूं
कल रहूंगा अंकुर
बटुर बटुर आएगी दुनिया मुझे देखने को आतुर
आज मैं बीज हूँ
अलक्षित, नाचीज हूँ
गर्क हूं धरती की जादूई कोख में।

(आज मैं बीज हूँ, 1970)

उम्र के इस मोड़ तक पहुंचते पहुंचते पुराने साथियों में से कई ने सत्ता से समझौता कर लिया। कुछ प्रगतिशील साहित्य को अप्रासंगिक बताकर किनारा कर गए। फिर भी रामविलास शर्मा, केदार और नागार्जुन बाहर-भीतर के सभी विरोधों के बावजूद प्रगतिशील साहित्य से निरन्तर जुड़े रहे। महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त 'अपना पथ आलोकित करने के लिए दीपक अपने हाथ लेकर चलना होगा।' की तरह नागार्जुन ने कभी भी इस बात की परवाह नहीं की कि आगे की डगर कंटकाकीर्ण है या अंधेरा घिर रहा है। उनके सबसे सच्चे साथी तो खेत-खलिहान, मिल और खान में परिश्रम की साधना में जुटे कोटि-कोटि लोग हैं। उनकी जीवट और चेहरे की मुस्कान के लिए यह समर्पित हैं। उनकी कविता के प्रेरणा स्रोत श्रमजीवी निम्नमध्यवर्गीय लोगों से, उनकी आशा बलवती होती है। इन्हीं लोगों के कारण प्रगतिशील आन्दोलन के परचम को उठाए 'चरैवेति चरैवेति' वेदवाक्य की मुद्रा में आगे ही आगे बढते चलना, उनके स्वभाव के सशक्त जुझारूपन का परिचायक है। सन् 1976 में इमर्जेन्सी का विरोध करने करने के लिए जेल की हवा खाते हुए भी वह सरकार की दमननीति के आगे झुके नहीं। उनका मनोबल टूटने के बजाए 'सलाखों से छिप कर भाल' चांदनी के फिसलने का आनन्द लेता है। मन में उधेडबुन का सिलसिला अनवरत रूप से चलता ही रहता है। पतझड़ का मौसम सब तरफ प्रकृति में उदासी भर रहा है। कवि की कामनाएँ जाग्रत हो उठती हैं -

अब भी तो पतझर थक जाए
इनका नंगापन ढक जाए
हरियाली इन पर झुक आए
नग्न नृत्य अब भी रूक जाए
नंगे तरू हैं नंगी डाले
इन्हें कौन से हाथ संभालें।

अपनी प्रतिबद्धता की खुली घोषणा एक वर्ष पहल 1975 में वह कर चुके थे। झुकने का तो प्रश्न ही नहीं था। जेल में रहकर भी साहित्य-रचना का क्रम चल रहा है। जेल जीवन के अपने कटु और मधुर अनुभव हैं। अपनी चिन्ता सो बाबा को कभी भी रही नहीं। सो घूम फिरकर अपने नए अस्थायी आवास में भी उन्हें जनसाधारण की चिन्ता बार बार सताती है। वहाँ रहते हुए वह नक्सली करार दिए गए, शोषित वर्ग के अन्य कैदियों की पीड़ा का परिचय भी पाते हैं। समाज का सबलवर्ग शोषित और दलित वर्ग का आर्थिक शोषण करके ही संतुष्ट नहीं होता, मानसिक यंत्रणा का दौर भी चलता है। नक्सली की संज्ञा देकर कारागार में ठूसे गए सातों युवक गांव की अनुसूचित जाति के हैं। हर प्रकार का अपमान और शोषण उनके जीवन का अंग बन चुके थे। जब उच्च वर्ग के लोगों ने उनकी स्त्रियों की इज्जत पर डाका डाला तो उनका मृतप्राय स्वाभिमान फुंकार उठा। बदले में धनीवर्ग की साँठगाँठ के कारण पुलिस ने उन्हें नक्सली संज्ञा देकर जेल भेज दिया। नागार्जुन को जेल में सुविधा श्रेणी मिलने पर भी, क्रांति दूत इन युवकों की दिवाली की चिन्ता ही अधिक सताती है। उनकी जनवादी विचारधारा जेल के भीतर बाहर एक समान बनी रही है। नेतावार्ड में रहते हुए भी जेल में रहने वाले सामान्य श्रेणी के कैदियों से मिलना जुलना, उनकी समस्याओं का अवलोकन, और अध्ययन, उनकी दिनचर्या का महत्वपूर्ण अंग बन गया है। इन कैदियों के दुख दर्द तथा उन पर लगाए गए झूठे इल्जामों की कहानियाँ सुन सुनकर उनका भावुक कवि हृदय व्यथित हो उठता है। अपनी जेल मुक्ति से अधिक उन्हें शोषित-पीड़ित वर्ग के कैदियों की जेल से रिहाई की चिन्ता है। जेल में रहकर भी उनका आशावादी शाश्वत स्वर कभी मंद नहीं पड़ा। कैदियों का मनोबल बनाए रखने में भी वह उनकी सहायता करते हैं। दिन भर की यातनाओं और घर छूटे सगे सम्बन्धियों की याद में क्रांतिकारी विचलित न हों, इसका भी उन्हें लगातार ध्यान रहता है।

नेवले के साथ विभिन्न प्रकार से दिल बहलाव करते हुए, ये कैदी नित्य नवीन स्फूर्ति से भरे रहते हैं। अपने हिस्से का दूध बचाकर खीर की पार्टी का आयोजन करते हैं। मानसिक रूप से ही नहीं शारीरिक रूप से भी उन्हें स्वस्थ बनाए रखने के लिए जेल में ही, उनके लिए व्यायाम की व्यवस्था करने की प्रेरणा देते हैं। अखाड़े में प्रतिदिन जोर आजमाइश होती है, कुश्तियाँ लड़ते हैं। उनकी प्रसिद्ध लंबी कविताएं, नेवला, खुल गई होली इस साल तथा कब होगी इनकी दीवाली' इस सम्बन्ध में पठनीय हैं।

जेल जीवन की यातनाओं से कभी कभी खिन्न तो वह अवश्य होते है परन्तु आशा का स्वर कभी क्षीण नहीं पड़ता। इमरजेंसी के उन काले दिनों में भी वह सर्वहारा की मुक्ति और सुख के सपने देखते नहीं थकते। 'चन्दू मैंने सपना देखा' कविता में वह अपने क्रांतिकारी साथी कैदियों को अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय देते हैं। आपातकाल के इन्हीं दिनों में नागार्जुन शासक वर्ग के अत्याचारों से गर्माहत तो होते हैं परन्तु वह परिस्थितियों के सामने घुटने टेकने की सलाह अब भी नहीं देते। अपने मन में चल रही उधेड़बुन में भारतीय जनता की दयनीय दशा के बारे में सोच सोचकर वह व्याकुल तो होते हैं परन्तु तुरन्त संभल जाते हैं। यह बेचैनी कहीं उन्हें कमजोर न बना दे ऐसा विचार कर तुरन्त ही फिर निराशा और हताशे के घने कोहरे को चीर कर झांकती हुए आशा की सुनहरी किरण को देखकर नई पुलक से भर उठते है -

यों ही गुजरेंगे हमेशा नहीं दिन
बेहोशी में, खीझ में, घुटन में, ऊबों में
आएँगी वापस जरूर हरियालियां
घिसी पिटी झुलसी हुई दूबों में

(होते रहेंगे शहर में कान जाने कब तक , 1976)

आलोचकों द्वारा प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि प्रगतिशील कविता में मन के कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं होता। वर्ग संघर्ष, पूंजीपति और शासक

वर्ग के प्रति कटुता के विचारों का ही अनवरत सिलसिला प्रगतिशील कविता को उबाऊ बना देता है। नागार्जुन की कविताएँ उनके जीवन की घटनाओं का जीता जागता सजग और रोचक रोजनामचा होती हैं। निराशा और विरक्ति के विचार संघर्षशील मनुष्य के मनोबल को गिरा सकते हैं। जब कभी उन्हें ऐसी स्थिति आने का आभास होता है अथवा जीवन के एकाकी क्षणों में मन की थकान दूर करने तथा नई जीवनी शक्ति और स्फूर्ति की तलाश में कवि प्रकृति की ओर मुड़ता है। प्रकृति उन्हें जीवन सहचरी की तरह ढाढ़स बंधाती है, संकटके क्षणों में नया उत्साह प्रदान करती है। प्रकृति नित्य, निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रकृति में होने वाले यह परिवर्तन ही नागार्जुन को प्रकृति की ओर बार बार मुड़ने के लिए बाध्य भी करते हैं। समाज की भलाई के लिए सामाजिक परिवर्तन भी बहुत जरूरी है। संस्कृति, समाज और राजनीति आज के युग में जिस प्रकार एक दूसरे में गुंथे हुए परस्पर परिपूरक हैं, उस दृष्टि से प्रकृति की भांति इनमें समय की मांग के अनुसार क्रांति या परिवर्तन लाना अत्यन्त वांछनीय है। प्रगतिशील साहित्य मानव समाज के कल्याण की कामना से ही समाज के सांस्कृतिक, आर्थिक , राजनीतिक स्वरूप में युगान्तरकारी परिवर्तनों की हिमायत करता है। प्रकृति में कुछ भी स्थायी नहीं है, परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है। प्रगतिशील कविता के जाने माने कवि होने के नाते ही नागार्जुन मनुष्य को भी प्रकृति से शिक्षा और प्रेरणा लेकर, समाज को ऐसा नया स्वरूप देने के पक्षधर हैं, जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान के साथ उन्नति के समान अवसर उपलब्ध हों। वंश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, आर्थिक , राजनीतिक भेदभाव से परे सर्वहारा वर्ग के लिए एक कल्याणकारी समाज की स्थापना ही उनके जीवन दर्शन का निष्कर्ष या अंतिम लक्ष्य है।

आपात स्थिति समाप्त हुई, नए चुनावों में जनता ने एक नए उत्साह का परिचय दिया। श्रीमती इंदिरागांधी की सरकार का पतन हुआ। श्री मोरार जी भाई के नेतृत्व में केन्द्र में पहली गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। जनता की प्रसन्नता के सहभागी कवि नागार्जुन को इस नयी सरकार से बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। महत्मागांधी की समाधि पर शपथ ली

गई। बड़े वादे हुए। परन्तु घोर आश्चर्य की बात यह थी कि दलबदल जाने से भी इन नेताओं की नीयत तो न बदलनी थी। सो थोड़े दिन के बाद यह सरकार कमीशनों के झमेले खड़े करके भारतीय जनता की आँखों में धूल झोंक कर स्वयं की पाक-साफ छवि उभारने की कोशिश में लगी रही। भला इससे आम आदमी का कुछ भला हो सकता था? आपसी खींचतान और स्वार्थ की झोंक में, उन्हें न तो अपने वायदे याद रहे और न मतदाता की उनसे लगी आशाओं की ओर उन्हें ध्यान देने की ही फुर्सत मिली। नागार्जुन फिर एक बार जनसाधारण के ठगे जाने की पीड़ा से तिलमिला उठे।

हम भी साझीदार थे
राजघाट वाली उस बेहयाई में
अभी तो उतर गया
प्रजातंत्र का रथ
पटरी से .....

(हम भी साझीदार थे, 1979)

दलित एवं शोषित वर्ग की आशाओं पर हुए इस तुषारपात से नागार्जुन इतने विक्षुब्ध हुए कि वह संकल्प कर उठते हैं। 'बार बार मर कर फिर जन्म लेने पर भी शोषण विहीन समाज की स्थापना के अपने स्वप्न को साकार करके ही रहूंगा।' समाज के उपेक्षाग्रस्त वर्ग को जब तक सम्मानजनक स्थिति में रहने का हक नहीं मिलेगा, वह शोषणकारी सरकार और समाज के प्रति आग उगलते रहेंगे। कमजोर वर्ग के दमन और समाज के प्रति आग उगलते रहेंगे। कमजोर वर्ग को दमन और शोषण के विरूद्ध उकसाने और जोश भरने के लिए, महासिद्ध रसायनशास्त्री नागार्जुन की तरह, अपनी कविता रूपी पौष्टिक रसायन की खुराक बांटते रहेगें। हिसा का उत्तर भी वह प्रतिहिंसा द्वारा देने पर उतारू हो जाते हैं।

इस विश्लेषण से एक बात उभर कर सामने आती है। नागार्जुन की राजनीतिक प्रतिबद्धता या स्थायी सहानुभूति किसी विशेष राजनीतिक दल से नहीं है। यदि स्थायी रूप से

वह किसी चीज से लगाव रखते हैं तो वह भारतीय जनता है जिसे उसके भोलेपन के कारण स्वार्थी राजनीतिज्ञ हमेशा ठगते और धोखा देते रहे हैं। अपनी नीति का स्पष्टीकरण तो उन्होंने सन् 1978 में ही अपनी कविता 'रगड़ा है' के शब्दों में दे दिया था।

जनता पार्टी की सरकार के धाराशायी होने पर सन्।980 में पुनः आम चुनाव हुए। एक बार फिर से इंदिरा गांधी की कांग्रेसी सरकार सत्तारूढ़ हुई। अच्छे अच्छे दिग्गजों में हड़कंप मच गया। रातोंरात दल बदल हुआ। कई प्रान्तों में तो कांग्रेस से भिन्न पार्टी अपने स्पष्ट बहुमत के होते हुए पूरी तरह कांग्रेस में विलीन हो गई परन्तु नाम दिया गया इसे दो दलों के राजनीतिक विलय का। बेहयाई की इन घटनाओं से नागार्जुन को ठेस तो जरूर पहुंची परन्तु उन्होनें अपने तेवर बरकरार रखे। इन्हीं दिनों उन्होंने अपनी प्रसिद्ध लम्बी कविता 'नदियाँ बदला ले ही लेंगी' की रचना की। इस कविता में फिर से उन्होंने जनता को दमन के दौर का मुकाबला करने के लिए कमर कसकर तैयार रहने को कहा भारी बहुमत से विजयी होकर सत्ता में आने वाला दल मनचाही करने से क्यों चूकेगा? उन्होंने लोगों का याद दिलाया कि वह पुराने सरकारी कर्मचारी जिन्होंने आपातकाल में जुल्मों का सिलसिला चलाया था, अब फिर से शायद मनमानी करें। पारसबीघा की घटना तो आँखें चौकाने वाली थी। क्षुब्ध होकर कवि कह उठा, 'नियमित हरिजन बध के आगे अश्वमेघ की बात न करना।'

स्वदेश ही नहीं विश्व पटल पर भी साम्राज्यवादी देशों द्वारा चली जा रही कूटनीतिक चालों पर उनकी नजर लगी है। सन् 198। में इराक-ईरान युद्ध हुआ। इस युद्ध से उत्पन्न विभीषिका का दुष्प्रभाव मंहगाई और आवश्यक वस्तुओं के कृत्रिम अभाव के रूप में झेलना पड़ा सभी देशों के निर्धन समाज को। इस बात को शायद लड़ने वाले भी नहीं समझ रहे कि उन्हें क्यों आपस में लड़वाया जा रहा है। ऐसे में उन्हें महान कवि उमर खैयाम की याद आती है। यदि वह आज जिन्दा होता तो शायद रो देता परन्तु देश का भावुक कवि उसी उमर खैयाम का ही तो प्रतिरूप या प्रतिनिधि है। यू0एन0ओ0 विश्वशांति संगठन न रह कर अब महाशक्तियों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गया है। प्रत्येक पिछड़े और विकाशील देश की

विपन्न जनता की बदहाली से चिन्तित नागार्जुन कह रहे है -

परस्पर कलहाक्रान्त धन-पिशाच तेल वणिक
गिनेंगे स्वगत लाभांक, औरों को लड़ाएँगे
बढ़ा ही लेंगी अपने अपने प्रताप क्षेत्र
छिनाल महा शक्तियाँ,घिनौनी महाशक्तियाँ
कहाँ से मिलेगा उतना सुर्मा
रह जाएँगे सुर्ख महाप्रभुओं के रक्त विकराल नेत्र
दिखाई नहीं पड़ेगी हकीम लुकमान की पीढ़ियाँ
कागज पे रह जाएँगे धरे के धरे
यू0 एन0 ओ0 के फर्मानी सूत्र वाक्य!
उमर खैय्याम कभी इतना नहीं रोया था .....

(बार बार हुए हैं लहूलुहान ।98।)

यह रचना उस समय की है, जब कवि अपनी आयु के सत्तर वर्ष पूरे कर चुका है। पुराने युग में इस आयु पर पहुंचते पहुंचते साँसारिकता से पूरी तरह विरक्त होकर सन्यास की तैयारी शुरू हो जाती थी। वानप्रस्थ आश्रम के पाँच वर्ष शेष हैं। नागार्जुन ने मानो इस युग में वानप्रस्थियों के लिए भी आदर्श की स्थापना करते हैं। भारतीय वैदिक सामाजिक परंपरा की दृष्टि से, यह अवस्था सामाजिक ऋण चुकाने या लोकोपकार की होती है। न केवल अपने गाँव और देश के समाज बल्कि नागार्जुन तो युवा घुमक्कड़ की तरह पांव से न सही मन की आँखों से ही पूरे संसार की परिक्रमा कर रहे हैं। उन्हें तो संसार भर के अभावग्रस्त, युद्ध से संत्रस्त समाज की चिन्ता सताती है। कितना व्यापक दृष्टिकोण है 'बड़ी मछली, छोटी मछली' के रूपक से वह स्पष्ट करते चलते हैं कि विश्व समाज में सबल अपना दबदबा कायम करने के लिए निर्बल को दबाता हैं। उनकी स्पष्टवादिता के कारण वामपंथी दल भी उनसे रूष्ट हो जाते हैं परन्तु जनवादी कवि की निष्ठा किसी दल विशेष की बंधक नहीं है। वह तो मानव समाज के जन-जन की कल्याण कामना से ही लगाव रखता है। उन्हें भाड़े के गुंडों द्वारा

चेतावनी भी दी जाती है। फिर भी उनका उत्मुक्त विचरण और देशाटन का क्रम अबाध चलता है। मेरठ में हुए साम्प्रदायिक दंगोंकाआँखों देखा हाल जानने की लालसा की परिचायक उनकी प्रसिद्ध कविता 'तेरी खोपड़ी' इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

तीनों सिरों वाला बेताल (रचनाकाल 1983) में पुनः देश केकोने की खोज खबर का लेखा-जोखा लेकर वह समाज और सरकार के सामने हाजिर होते हैं। एक ओर अभावों से जूझता समाज का पिछड़ा वर्ग है तो दूसरी ओर धनिक वर्ग अपने वैभव का प्रदर्शन विवाह समारोहों पर दिए जाने वाले भोज और साज सज्जा से करते हुए इठलाता है।

सन् 1988-89 तक पहुंचते हुए कवि अपनी उम्र का आठवाँ दशक पूरा करने पर शरीर से भले ही थका हुआ लगता हो, उनका मन-प्राण अपने लक्ष्य के प्रति अब भी उतना ही सजग और सचेष्ट हैं। 'लोकतंत्र के मुंह पर ताला', 'नर्सरी राइम', 'शासन रहा ऊंघ', 'नाटक में टूटेगा नमक कानून', 'और बढे दाम, और बढ़े दाम' , 'जागते रहे निरन्तर' जैसी सशक्त एवं करारे राजनीतिक व्यंग्य की रचनाएँ समाज और देशहित के प्रति उनकी निष्ठापूर्ण सजगता का प्रमाण हैं। लोकहित के प्रति सरकार की जरा सी भी लापरवाही पर नागार्जुन आज भी अपने व्यंग्य का चाबुक फटकारते हैं। लोकतंत्र में सार्वजनीन हित के कार्यों में शिथिलता या बाजार में बढ़ती हुई मंहगाई तथा प्रधानमंत्री के चारों ओर मंडराने वाले चमचे सभी पर उनकी पैनी दृष्टि रहती है। वह देख कर भी अनदेखा नहीं रह सकते। अतः निस्संकोच ही कहा जा सकता है कि अपने रचनाकाल के आरंभ से लेकर अब तक नागार्जुन की कविता में सामाजिक चेतना की ओजे निरन्तर बढ़ता ही दृष्टिगोचर होता है।

8.2 समस्त आक्षेपों और आलोचना से निरपेक्ष कर्तव्योन्मुख

अपने लक्ष्य और निष्ठा के प्रति पूर्णतः समर्पित और वफादार होने के बावजूद भी समाजसुधार से जुड़े महान से महान व्यक्ति को भी व्यक्तिगत आक्षेपों और आलोचनाओं के बाण झेलने पड़ते हैं। नागार्जुन भी इन आक्षेपों से बच नही सके हैं। उन पर अक्सर आरोप थोपा जाता है कि 'वह क्षणे रूष्टः क्षणे तुष्टः' कभी किसी नेता और उसकी नीति से संतुष्ट तो

कभी असंतुष्ट का भाव प्रदर्शित करते हैं। आरंभ से ही सर्वहारा के दशा सुधार के लिए चिंतित नागार्जुन साम्यवादी नीति से जुड़े होने के कारण क्रांतिकारी विचार धारा के समर्थक रहे हैं। स्वाभाविक है कि वह महात्मा गांधी के अहिंसा आन्दोलन और पूंजीपतियों के यहाँ उनके ठहरने तक से क्षुब्ध रहते थे। गांधी जी के सिद्धान्तों का उन्होंने खुला समर्थन कभी नहीं किया। फिर अचानक गांधी जी की हत्या पर वह 'शपथ' जैसी क्रोध एवं क्षोभ से पूर्ण कविता लिख बैठते हैं। यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि भले ही नागार्जुन को गांधी दर्शन और गांधीवाद में कोई आस्था न रही हो परन्तु वह अपनी व्यक्तिगत समझ और साम्यवादी विचारधारा के विपरीत फासीवादी ताकतों और साम्प्रदायिकता की बढ़ती हुई घृणास्पद करतूतों को देखकर कैसे चुप रह सकते हैं। अतः शपथ कविता लिखने के पीछे कोई साहित्यिक फिसलाव या साम्यवाद से विचलन जैसी बात नहीं है। कोई भी बुद्धिजीवी, उस स्थिति में वही करता और कहता जो नागार्जुन ने किया।

कांगेस द्वारा दिखाए गए रामराज्य के स्वप्न के बाद, आजादी मिलने पर कांग्रेसी नेताओं और सरकार के व्यवहार से उन्हें मानसिक संताप होना स्वाभाविक था। इसी संदर्भ में उन्होंने गांधी के प्रति गोत्रिक निष्ठा व्यक्त करने वालो को जवाब तलब करते हुए इस चोला-परिवर्तन की घटनापर व्यंग्य कविता 'रामराज्य' लिखी। कहाँ तो सबको श्री राम के समदृष्टि वाले व्यवहार की प्रतीक्षा थी और कहाँ गांधी के चेले गांधीवाद का अनुसरण करने वाले अहिंसक-निहत्थे आन्दोलनकर्ताओंपरजेल के बाहर भीतर लाठियाँ बरसा रहे हैं। अपना आक्रोश उन्होंने रामराज में 'रावण के नंगेनाच' जैसी घटना का वर्णन करके व्यक्त किया है। कुछ वर्षों के बाद कांग्रेसियों के आचरण को देख-देख कर तो वह दंग ही रह गए। आजादी प्राप्त किए केवल चार वर्ष और गाँधी जी का देहावसान हुए मुश्किल से तीन वर्ष बीते होंगे और उनके प्रतिनिष्ठा प्रदर्शित करने वालोंनेअपनी गांधीवादी पहचान को बिल्कुल भुलादिया। कांग्रेस 'जन तो तेणे कहिए' कविता में उन्होंने इन भ्रष्टाचरण कांग्रेसियों की जमर खिंचाई की है।

समस्त राजनीतिक निष्ठा और दर्शन से परे नागार्जुन एक भावुक हृदय वाले ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी सर्वोच्च एवं स्थायी निष्ठा, भारतके के दलित, शोषित एवं अभाव ग्रस्त

वर्ग के जन-जन के आर्थिक और सामाजिक उत्थान से अटूट सम्बन्ध रखती है। जनसाधारण की पीड़ा से अभिभूत हृदय वह सरकार और समाज को अपने दायित्व के प्रति सदैव सावधान कराते रहते हैं। तेलंगाना में हुए विद्रोह पर नागार्जुन अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं 'लाल भवानी' कविता में। किसानों तथा मजदूरों के इस आन्दोलन को पुलिस बर्बरता पूर्वक कुचल डालती है, तो स्वाभाविक रूप से उनहें दुख ही नहीं कोध भी होता है। नेहरू शांति के मसीहा और समाजवाद की स्थापना के पोषक थे। वह समाजवाद लाने के लिए देशी पूंजीपतियों का सहयोग चाहते थे। यह पूंजीपति वास्तव में साम्राज्यवाद की देन थे। इनसे सहयोग की आकांक्षा कवि को दुराशा मात्र ही लगती है। इसलिए राशन की दुकान खाली है। पूंजीपति, हाकिम और नेताओं की इसी मिली भगत से जनसाधारण तबाह हो रहा है। दूसरी ओर भुखमरी से घटने वाली मृत्यु के बारे में पुलिस दरोगा मृत व्यक्ति के परिवार वालों से झूठ बयान पर दस्तखत कराकर ले जाता है। यह सब एसी घटनाएँ हैं, जो नेहरू जी की सरकार में शामिल भ्रष्ट नेताओं और नोकरशाहों द्वारा जनता के प्रति उपेक्षाभाव बरतने के कारण घटित होती हैं। वह अपनी इन आक्रोश भरी कविताओं की रचना द्वारा वह काम कर रहे थे, जो उन दिनों संसद में बैठे विपक्षी दलो के सदस्य भी नही कर रहे थे। इसी बीच सन् 1962 में साम्यवादी चीन द्वारा भारत पर हमला हुआ। नागार्जुन उन गिने चुने देशभक्तों में से एक हैं, जिन्होंने स्वयं कम्यूनिस्ट होते हुए भी चीन की इस साम्राज्यवादी - विस्तारवादी नीति का खुल्लमखुल्ला विरोध किया। इस विरोध की परिणति कम्युनिस्ट पार्टी से उनके सम्बन्ध विच्छेद में हुई। वह न केवल कांग्रेसी नेताओं अपितु सुविधा लोलुप साम्यवादी नेताओं पर भी तीखी टिप्पणियां कर डालते हैं। देशभक्ति और समाजोत्थान की चिन्ता करने वाले ऐसे व्यक्ति दूसरों की मानसिक भ्रांति के शिकार अवश्य होते हैं।

सन् 1969 में सिंडीकेट को नीचा दिखाकर श्रीमती इंदिरा गांधी ने सरकार बनाई। बैकों का राष्ट्रीकरण और प्रीवी पर्स की समाप्ति सम्बन्धित विधेयक पारित हुए। पूंजीवाद और सामन्तशाही पर किए गए इस कठोर प्रहार से न केवल नागार्जुन बल्कि देश का बहुमत

बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ। परन्तु इमरजेन्सी के दिनों में शासन द्वारा बर्बरता पूर्वक चलाये गये दमन चक्र और जनविरोधी नीतियों का नागार्जुन ने साहसपूर्वक विरोध किया। इसके लिए उन्होंने जेल जाना भी सहर्ष स्वीकार किया। इंदिरा गांधी की निमर्म हत्या से समस्त देशवासी हतप्रभ से रह गए। नागार्जुन को भी इंदिरा गांधी की हत्या के जघन्य कृत्य पर दुख हुआ। उन्होंने अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए वामपंथ की प्रेस विज्ञप्ति पर भी अपना समर्थन व्यक्त किया। इस घटना पर पुनः नागार्जुन पर राजनीतिक भटकाव का आक्षेप थोपा गया। परन्तु यह एक भारी भूल है। वास्तव में इंदिरा गांधी की जघन्य हत्या लोकतंत्र की बलि वेदी पर लोकतत्र की स्थापना के लिए एक (तानाशाही ही सही) शासक का बलिदान ही कहलाएगा। देश पर संकट की इस घडी में नागार्जुन अपने देशवासियों के साथ खड़े मिलते हैं।

'लोकतंत्र के मुंह पर ताला' (1944) में फिर एक बार नागाजुन ने इंदिरा गांधी को उनके बिशेष गुणों के लिए याद किया है। 'डालर रूबल सभी झुक गए, दिखती थी, पर निराकार थी , मम्मी बेहद समझदार थी।' पंक्तियों में नागार्जुन देशाभिान और राष्ट्रीय गौरव बढ़ाने में इंदिरा के योगदान की याद दिलाकर, मानों राजीव को विदेशी दबाव के आगे न झुकने की सलाह दे रहें हैं। यह प्रशंसा व्यक्तिगत आदर प्रकट करने के लिए नहीं, बल्कि व्यक्ति के आचरण के किसी बिशेष गुण को अपनाने के आग्रह के लिए है।

नागार्जुन पर जो भी आक्षेप किये गये हैं; वे या तो निराधार हैं या फिर कवि की भावना और दृष्टिकोण तथा संदर्भ बिशेष को दृष्टि से ओझल रखकर लगाए गए हैं। यह बात निशचित है कि वह अपने कवि कर्म और जनवादी आस्था से कभी इंच भर भी नहीं भटके हैं। समाज में गुणात्मक सुधार के पक्षधर को आक्षेप और आलोचना के कुहरे को चीरते हुए अपने कदम संतुलित रखने पड़तें हैं। घोर संकट के समय में भी एकाकी ही सही पर लक्ष्य की ओर बढ़ने की लालसा ने उन्हें अपने कर्तव्य मार्ग पर अडिग रहने वाले अप्रतिम साहित्यकार की छवि प्रदान की है।

8.3 सामाजिक दायित्व का निर्वाह

यह स्वाभाविक है कि जिस समाज में मनुष्य जन्म लेता है,पलकर बड़ा होता है, उसके प्रति उसके मन में बिशेष स्नेह उत्पन्न हो जाता है। नागार्जुन ने अपनी विभिन्न

कविताओं में भी अपने साहित्यिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि को याद किया। रवि ठाकुर और निराला पर लिखी हुयी उनकी कविताओं में उन्होंने जन्म के समय की अपनी आर्थिक स्थिति का स्पष्ट उल्लेख किया है। ग्रामीण परिवेश में पले नागार्जुन ने स्वयं के परिवार में अर्थाभाव को देखा। उससे उत्पन्न पीड़ा को भोगा। धन के अभाव में यदि सवर्ण परिवार अपनी बिरादरी में सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकता तो पीढ़ी दर पीढ़ी चलें आ रहे शोषण के शिकार हरिजन, गिरिजन और आदिवासियों के दिल पर क्या बीतती होगी? नागार्जुन ने इसे किसी पुस्तक में सामाजिक समस्या के रूप में नहीं पढ़ा। अपने जीवन की पाठशाला में अपने आसपासे अपने हमजोलियों के साथ दो चार होते हुए देखा था। अबोध बाल-मन पर पड़ी यह छाप वह कभी विस्मृत नहीं कर पाए। धन के अभाव में समाज की प्रताड़ना झेलते हुए लोगों को वह कभी भुला नहीं सके। शिक्षा-दीक्षा और देशाटन के उपरान्त कवि कर्म अपनाने के कारण अपने छूटे हुए समाज की याद, उन्हें फिर से ताजा हो गई। प्रत्येक साहित्यकार की रचना में उसके युगीन सामाजिक परिवेश की छाप जाने, अनजाने में अवश्य ही परिलक्षित होती है। इस परिवेश के स्त्री , पुरूष, बच्चे, उनकी दिनचर्या, पशु-पक्षी, नदी-तालाब घाट, खेत - खलिहान की झांकी नागार्जुन के काव्य की पृष्ठभूमि है। उन्होंने इन सबके साथ साहचर्य के क्षण भोगे हैं। उनकी समस्याएँ ओर उनका चित्रांकन कवि के लिए कोई मानसिक व्यायाम जैसी जटिल ओर कृत्रिम प्रक्रिया नहीं है। वह इन सबके साथ हार्दिक और मानसिक धरातल पर आज भी उतने ही जुड़े हुए हैं। ग्रामीण जन ओर खेती-मजदूरीके जीवन की समस्याओं के बीच रहकर उसे देखा है। उसका विश्लेषण करके समाधान ढूंढने के लिए चिन्तन किया है। इसलिए उनके उपर कबीर की उक्ति , 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी' शब्दशः चरितार्थ होती है।

गरीबी के कारण होने वाली कठिनाई से वह उतने परिचित है जितना उससे जूझती हुई देश की बहु-संख्य निर्धन जनता । समाज की कोई भी समस्या उनकी तीक्ष्ण दृष्टि

से छिपी नहीं रह सकी। बाजार में बढ़ती हुई मंहगाई हो अथवा काला बाजार की घटना, हर एक विषय पर सामाजिक हित की दृष्टि से कवि ने लेखनी उठाकर अपने दायित्व बोध का परिचय दिया है। समाज में ऊंची जाति के लोगों द्वारा अछूत वर्ग का शोषण, बंधुआ मजदूर का जीवन हो या बरगद के पेड़ की फलियाँ बीनकर खाते मजदूरों के बच्चे सभी उनकी कविता के सजीव पात्र हैं। अकाल के दोनों रूप अतिवृष्टि और अनावृष्टि भी उनकी आँखों के सामने उसी प्रकार साकार होते हैं जैसे नाविकों के बालक नदी से पैसे निकालकर चहकते दिखाई देते हैं। चुनाव की धांधती के एक एक दृश्य को वह पहचानते हैं। बूथ कैप्चर की घटनाएँ, भाड़े के गुंडों के आतंक तले घिघियाई बकरी की तरह लाइन में खड़े वोटर हों या गाँव के राउत द्वारा माँ बाप की याद में बनाए गए जोड़ मंदिर के दृश्य, नागार्जुन अपनी कविता में अपने समाज की एक एक घटना को ज्यों का त्यों रूपायित करते हैं। एक बात विशेषत: उल्लेखनीय है - वस्तुगत वर्णन होते हए भी उनकी कविता में कौतूहल और वर्णन-कौशल के द्वारा पाठक के मन में जिज्ञासा का भाव बनाए रखने में वह पूरी तरह सफल रहे हैं। उन्होंने अपने समाज के प्रति कृतज्ञता संजोए हुए उसके अभावों और समस्याओं के हल के प्रति सरकार का ध्यान आकर्षित करके अपने सामाजिक दायित्व को निभाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

8.4 समकालीन और जन सामान्य से लगाव

जनवादी कवि होने के नाते अपनी युवावस्था से लेकर अब तक नागार्जुन समय समय पर जनसाधारण के दुखदर्द की दास्तान सरकार और समाज के सामने निर्भीक स्वर में प्रस्तुत करते रहे हैं। उनके युवाकाल में बने अनेक साथी, प्रगतिशील आंन्दोलन से सन् 1953-54 में ही विदा हो गए। साहित्यकारों की बिरादरी में अधिकाश ने तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही जनवादी आन्दोलन और प्रगतिशील साहित्य को अनावश्यक और अप्रासंगिक बता दिया था। इससे उन्हें सुविधा भोगी समाज में अपनी पैठ करने और स्वार्थ साधने का मौका भी मिला। अनेक लोगों का मत था कि आजादी के बाद प्रजातंत्रीय शासन पद्धति के अन्तर्गत सामान्य जन को अपनी पसन्द का प्रत्याशी चुनने का अवसर मिलेगा। जनता के प्रतिनिधि उनकी आवाज और

समकालीन समस्याओं को संसद में सबके सामने रखने का काम करेंगे। इस प्रकार साहित्यकार को अब जन-सामान्य और समकालीन समस्याओं की राजनीति से सम्बन्ध तोड़ लेना ही चाहिए। नागार्जुन शायद भावी राजनीति द्वारा जन सामान्य की होने वाली दुर्दशा को भाँप चुके थे। उन्हें जो आशंका थी वह वास्तव में निराधार नहीं थी। पुराने साहित्यिक मनीषियों ने भी स्पष्ट कहा है 'प्रभुता पाहि काहि मद नाहीं।' सत्ता का नशा बड़ा मादक होता है। सरकार के भीतर घुसकर नेताओं की नीयत और उनके दृष्टिकोण परिवर्तन का दम भरने वाले साहित्यकारों के दावे भी खोखले निकले। अपने चिर संगी बाल-सखा सामान्य जन को नागार्जुन कभी नहीं भुला पाए। केदारनाथ अग्रवाल, डा0 रामविलास शर्मा और त्रिलोचन जैसे साथियों की तरह आज भी वह देश के निर्धन सामान्यजन के छोटे से कष्ट से व्यथित हो उठते हैं। अस्सी की अवस्था पार कर चुके नागार्जुन में अब भी बाल-सुलभ सरलता, युवकों जैसा जोश विद्यमान है, जो अनुभव की आँच में तपकर कुन्दन की तरह दमकता है। जिसकी किसी को फिक्र नहीं है उस नाचीज इंसान और इंसानियत के उत्थान के लिए वह आज भी अप्रत्याशित रूप से चिन्तित व्याकुल और प्रयत्नशील हैं।

नागार्जुन का साहित्य उनके जीवन की खुली किताब है। उनके साहित्य में सर्वसाधारण और उसकी समकालीन समस्याओं के अध्ययन, विश्लेषण और समाधान का लेखा जोखा है। वह आरंभ से लेकर आज तक बिना किसी दबाव के आगे झुके, अपने निर्दिष्ट लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं। जन सामान्य में सजगता और चेतना के साथ स्वाभिमान और गौरव उत्पन्न करना ही उनकी साहित्य साधना के लक्ष्य हैं। निष्कर्षतः वह एक ऐसे आशावादी साहित्य के स्रष्टा हैं जो जन सामान्य को सदैव सामाजिक चेतना प्रदान करने के साथ , सर्वहारा समाज में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता के गुणों का प्रस्फुटन करने में सहायक होगा।

नवम् अध्याय

उपसंहार

नागार्जुन के काव्य साहित्य का अनुशीलन पाठक के लिए एक अनिवर्चनीय सुख की अनुभूति से कम नहीं है। उनका रचना संसार बहुआयामी होने के कारण मनुष्य मन को उद्रेकपूर्ण बना देता है। तनिक देर के लिए पाठक स्वयं के व्यक्तिगत राग-द्वेष-दुख-सुख को भूलकर ऐसा खो जाता है कि उसे यों लगने लगता है कि यहाँ तो कुछ भी अपरिचित नहीं है। कुछ भी उसमें असामान्य सा नहीं लगता। यही नागार्जुन साहित्य की बिशेषता है। उनके साहित्य की एक - एक पंक्ति इस जीते जागते संसार से जुड़ी है। देश के कोने कोने में घटित होने वाली छोटी से छोटी घटना समाज का संदर्भ लिए, उनके साहित्य में गुड़ जाती है। पढ़ते पढ़ते लगता है कि यह तो मेरी ही समस्याओं का कच्चा चिटठा है। हर एक को यही अनुभूति होगी। ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि उनका साहित्य न तो बौद्धिक व्यायाम की देन है और न उनमें ख्याली पुलाव की कोई गुजांइश है। नागार्जुन ठहरे नाम और आचारण दोनों से यात्री-देश के विशाल प्रांगण को नापते उनके कदम कभी शिथिल नहीं पड़े। वह निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर अथाह उत्साह और ललक लिए बढ़ते रहते हैं। कभी भी, कहीं भी उनसे मिलने वाला साधारण औकात का आदमी उन्हें अपना आत्मीय लगता है। उसका सुख-दुख बाँटने के लिए वह सदैव तत्पर हैं।

सामान्यजन चाहे उत्तर प्रदेश या बिहार का हो, तेलंगाना का हो या वियतनाम अथवा अफ्रीका महाद्वीप के किसी देश का तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। नागार्जुन की कविता तो विश्वजनीन पीडा की एक बोलती हुई डॉक्यूमेंटरी है। बौद्ध दर्शन के सम्पर्क में आकर उनके संवेदनशील हृदय की स्पंदन ओर भी तेज हो गयी वह जन-जन की पीड़ा से प्लावित ऐसी

काव्य सरिता है, जिसका अवगाहन करने पर कैसा भी निर्मम मन क्यों न हो पर-पीडा से निश्चय ही द्रवित हो उठेगा।उन्होंने मानव सस्कृति से जुड़ी समस्याओं की गहराई में जाकर जो मोती खोजे हैं, वह हिन्दी साहित्य को निश्चय ही एक अद्भुत कांति प्रदान करेंगे। संस्कृति किसी एक व्यक्ति या वर्ग विशेष की संपत्ति नहीं है। वह देश और समाज से जुड़ी है। उसपर पर प्रत्येक देशवासी का समान अधिकार है। सबल और निर्बल, सक्षम और अक्षम पूंजीपति और श्रमिक सभी एक धरोहर के उत्तराधिकारी हैं। नागार्जुन की दृष्टि में शोषण ही सब प्रकार की बुराइयों का प्रमुख कारण हैं। उन्होंने साँस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का गहन अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप साँस्कृतिक अवमूल्यन और सामाजिक अव्यवस्था का कारण भी उन्होंने खोज निकाला है। कहा जा सकता है कि उनकी विचारधारा और उनके चिन्तन पर मार्क्सवाद हावी है। उन्होंने मार्क्सवाद के प्रभाव को ग्रहण किया है परन्तु भारतीय अथवा राष्ट्रीय गौरव के परिप्रेक्ष्य में पचपचित करके। उनके मानस-पटल पर भारतीय दर्शन के सूत्र वाक्य की छाप अमिट रूप से अंकित है।

> सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।।
> सर्व भद्राणि पश्यन्तु, या कश्चिद् दुख भाग्भवेत।।
> (सब प्राणी सुखी हों। सब छल छद्म की भावना और असक्ति से उपर उठें। सबके जीवन में सब भला और कल्याणप्रद प्राप्त हो। किसी को भी बिल्कुल भी किसी भी प्रकार कोई कष्ट कभी न हो।)

नागार्जुन का प्रगतिशील चिन्तन, जिससे प्रायः लोग अकारण भडकते है, उपर्युक्त विचारधारा से किसी भी प्रकार तो भिन्न नहीं है। लगता है, हम अपनी दार्शनिक और साँस्कतिक परम्परा से भटक रहे हैं। अन्यथा भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की विषमताओं के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। कवि की निष्ठा यदि समाज के सामान्यजन के उत्थान से जुडी है तो मार्क्सवादी प्रभाव होते हुए भी वह हम सबके लिए गाह्य है।

उनके साहित्यिक चिन्तन की विशेषता जो उन्हें अपने समकालीन

साहित्यकारों की भीड़ में गुम हो जाने से बचाती है, उस पर भी थोड़ा विचार करना उपयुक्त होगा। आपाधापी के इस युग में सब लोग सामाजिक दायित्व के निर्वाह के नाम पर एक कोरी औपचारिकता निभा कर मुक्त हो जाना चाहते हैं। नैतिक मूल्यों के विघटन की इस संकटपूर्ण वेला में नागार्जुन कोरी रस्म अदायगी से संतुष्टि अनुभव नहीं करते। तुलसीदास की तरह निरपेक्ष भाव से 'स्वान्तःसुखाय' अर्थात अपनी आत्मतुष्टि के लिए ही सही, वह हर सामाजिक समस्या की गहराई में जाने की जहमत मोल लेते हैं। समस्या के कारणों को खोज कर सबके समक्ष रखते हैं। कार्य-कारण सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न भी अधिकतर लोग करते हैं। वह एक कदम और आगे जाकर 'करण' या साधन भी प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास करते हैं। कारण और करण की प्रस्तुति ही नागार्जुनको भीड़ से अलग करने में उनकी पहचान का काम करती है। समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए वह समाज के जन जन का आह्वान करते हैं। अपनी राह स्वयं खोजने और बनाने की प्रेरणा देते हैं। वह जनता को आत्म निर्भर बनने के लिए उत्साहित करते हैं।

'व्यक्तिगत दुख पर न रूक कर वे बार बार व्यापक दुख पर प्रकाश डालते हैं और यही सच्चे कवि की पहचान हैं। अतः धरती, जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदनशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदा अमर रहेगा।'[1]

मानव जीवन दुख और सुख की लहरों से बना सागर है। दुख से डर कर निश्चेष्ट, अकर्मण्य बने रहना उन्हें कभी भी प्रिय नहीं लगा। संसार सागर में उठते हुए झंझा और दुख की उत्ताल लहरियाँ उन्हें कभी अपने कर्तव्य से विमुख तथा च्युत नहीं कर पाईं। श्रम की प्रशंसा में गीत गढ़ने वाले नागार्जुन को ब्रिटिश दमन, सामाजिक उपेक्षा अथवा अर्थाभाव कभी गन्तव्य की ओर बढ़ने से रोक नहीं सके। उनके काव्य में जनसाधारण के दुख दर्द की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसमें भी आत्म विश्वास और दृढ़ निश्चय के साथ परिस्थितियों से जूझने का परामर्श ही मुखर हुआ है। शासन तंत्र की जन विरोधी नीतियों का डटकर विरोध करने और

1- विश्वम्भर नाथ 'मानव' : नयी कविता, नये कवि - डा0 प्रभाकर माचवे की पुस्तक 'नागार्जुन' पृष्ठ 9 से उद्धृत।

निडरतापूर्वक अपने अधिकार की रक्षा के लिए लड़ने के संकल्प की उन्होंने एकाधिक बार सराहना की है। उन्होंने शोषण की शिकार बहुसंख्य भारतीय जनता को अपनी दुर्दशा पर आँसू बहाते हुए बैठे रहने का कभी भूलकर भी समर्थन नहीं किया। वह ऐसी धर्मभीरूता को हेय मानते हैं जो मनुष्य को ईश्वर के भरोसे बैठे रहकर भाग्य के भरोसे रहने की सीख दे। बह तो मनुष्य को स्वयं अपने भाग्य का निर्माता मानते हैं। उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति के लिए वह संगठित होकर विरोध और संघर्ष ही नहीं क्रांति तक करने के पक्षधर हैं। शैशव काल से ही नागार्जुन ने दरिद्रता के दैत्य से पीड़ित ग्रामीण जनसमुदाय को देखा है। बड़े होकर अपनी घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण देश के गाँव गाँव, शहर-शहर घूमकर दीन-असहाय सामान्य-जन के क्लेश के विकराल स्वरूप से गहन और व्यापक परिचय भी किया। वह मन बहलाने के लिए सैर सपाटे के उद्देश्य से तो देशान्तर के लिए नहीं निकले थे। अपने देशवासियों के प्रति उनका उत्कृट प्रेम ही बार बार घर-द्वार छोड़ कर उन्हें अपने बृहत्तर परिवार से मिलने के लिए बाध्य करता है। उनकी कविता से फूटती यह स्नेह की निर्झरिणी, उनकी कविता को आकर्षक और सजीव बनाती है। वह अपने पास पड़ोस के संपूर्ण जीव जगत से जुड़े रहकर ही साहित्य साधना करने में विश्वास रखते हैं।

उनकी कविताओं के एक-एक पात्र से उनका आत्मीय रिश्ता है। वह अपने पात्रों के कष्ट और अभाव से दुखी होते हैं। उन्हें कष्ट पहुंचाने वालों को वह चुनौती देते हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपता को भी वह कभी नहीं भूलते। अपने पात्रों का दुख-दैन्य, वर्ग संघर्ष, पीड़ा और विवशता निरन्तर उनके अन्तस से चिपके रहते है। वह स्वयं भी इसे भुलाना नहीं चाहते। जनजीवन से इतनी घनिष्ठता पूर्वक जुड़े व्यक्ति के साहित्य में तल्खी, आक्रोश, करूणा और व्यंग्य के स्वरों का उभरना अस्वाभाविक नहीं है। यह बात निश्चित है कि जिस राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवेश में लेखंक ने अपना जीवन बिताया है, उसीपरिवेश के दृश्य उसके साहित्य में उभर कर आएँगे। नागार्जुन के लिए साहित्य रचना का उद्देश्य मनोरंजन या मनोविनोद नही है। उन्होंने जो व्यंग्य लिखे है, वह मनुष्य से

वाह-वाही प्राप्त करने के लिए नहीं है। उनका ध्येय व्यंग्य के माध्यम से पाठक मन को उद्वेलित करना है। वह सामाजिक रूढ़ियों और विसंगतियों पर आघात करके उन्हें ध्वस्त और चूर चूर करने की प्रेरणा देते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि समाजमें फैली हुई छूआछात, जाति-पांति, बंधुआ मजदूर प्रथा, साम्प्रदायिक वैमनस्य और कालाबाजार आदि अवांछित विसंगतियाँ, सरकार द्वारा कानून बनाने मात्र से ही नहीं खत्म हो सकतीं जिस समाज में हम रहते हैं, उसे साफ-सुथरा, निष्कलुष एवं सौमनस्यपूर्ण बनाने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को प्रयत्न करना चाहिए। पढ़े लिखे सम्पन्न वर्ग की युवा पीढ़ी में भी समाज कल्याण हेतु प्रयत्न करने की जोशीली भावना देखने में आती है। यदि वह पीढ़ी नागार्जुनके उत्साहवर्द्धक काव्य को पढ़कर विलासपूर्ण जीवन से मुंह मोड़ लें, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समाज में फैली बुराइयों का यथातथ्य निरूपण करने वाली नागार्जुन की ऐसी कवितओं से इस पीढ़ी का परिचय कराया जाए।

किसी साहित्यकार की रचनात्मकता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी रचनाओं में मुख्य विषय क्या हैं, अपने देश और समाज से उसका साहित्य कितना जुड़ा है। नागार्जुन के कथन का अंदाज ऐसा असरदार है कि उनकी विचारधारा से सहमत न होते हुए भी पाठक उनकी रचना को एक बार पढ़ना शुरू कर के बीच में छोड़ ही नहीं सकता। इसका सीधा सा कारण है, उनकी भाषा-शैली और वर्ण्य विषय का चुनाव ही ऐसा होता है कि उनकी रचना सीधे पाठक के मन को छू लेती है। उनकी रचनाओं में उनका निष्कपट हृदय अपने भावों की निर्मलता से पढ़ने वाले के मन के कलुष को तिरोहित कर, उसे भावोद्रेक से परिपूर्ण कर देता। वह कविता मेंकभी हंसतेहैं, तो कभी खीजते है अथवा चिढ़ाते हैं। उनकी कविता में अपने समाज और पाठक से वह बड़ा ही अनौपचारिक रिश्ता जोड़ लेते हैं।

यह रिश्ता मधुर और अनौपचारिक तभी हो सकता है, जब कवि गहराई के साथ अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति के लिए अपने देश और समाज से जुड़ा हो। नागार्जुन की रचनाओं में जो संवेदनशीलता पाई जाती है, वह समाज से बिना गहराई के जुड़े संभव ही नहीं है। उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य के विशाल पट पर जो मनोरम आकर्षक और विचारोत्तेजक शब्द चित्र उभरते हैं, उनमें कहीं न कहीं पाठक को अपनी हिस्सेदारी का एहसास होता ही है। शैशव से लेकर बुढापे लक ही नहीं मृत्यु के उस पार तक उनकी कविता की पहुंच है।

गाँव-जंवार से पोखर के किनारे घुमाते वह आपको किसी समुद्री तट या बैलाडीला के आदिवासी क्षेत्र तक कीसैर करने को आमंत्रित करते हैं। चंचल खेलते बच्चों से मिलाने के क्षण भर बाद, उस बाल-सुलभ मुस्कान के पीछे छिपी किसी विवशता अथवा अभाव पर हमें सोचने को बाध्य कर देते हैं। प्रसंग, पात्र और श्रोताओं के अनुरूप उनकी भाषा-शैली भी परिवर्तित होती चलती है परन्तु बड़े स्वाभाविक रूप में,| इस परिवर्तन में, इस परिवर्तन में कहीं भी कृत्रिमता का तो आभास भी नहीं होगा।

कुछ आलोचक नागार्जुन को बिहार के मिथिला जनपद तक ही सीमित कर देना चाहते हैं। इसलिए उन्हें मैथिली का जनकवि संज्ञा दी गई। परन्तु उन्हें जनकवि कहना कवि के विपुल एव विविधतापूर्ण साहित्य को अनदेखा करते हुए उनके साथ अन्याय होगा। देश-काल, क्षेत्र और बोली की सीमा को तोड़कर जिस मनुष्य ने भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की सीमा के भी पार जाकर लंका और तिब्बत की सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया हो, भिन्न भिन्न भाषाओं को रूचि पूर्वक सीखा हो ,उसे जनकवि कहकर उसके साहित्यिक महत्व को जान बूझकर बौना करने की साजिश होगी।

नागार्जुन ने देश पर देशकी जो यात्राएँ की हैं उनका सकारात्मक प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ाहै।उनके अनुभवोंके विशाल भंडार के कारण उनका साहित्य समृद्ध हुआ है। नित्य नवीन अनुभव प्राप्त करके हर संस्कृति और समाज से सद्‌गुणों को ग्रहण करने की लालसा ने ही उनके साहित्य को विविधता और रोचकता से परिपूर्ण करने के अतिरिक्त उसे सजा संवारकर प्राणवत्ता से भरपूर किया है। भौगोलिक एवं सॉस्कृतिक सीमाओं में बंधकर रहने के कारण मनुष्य संकुचित दृष्टिकोण का हो जाता है। निरन्तर घूमते रहने से जीवन में अलग अलग वृत्ति और स्वभाव तथा सोच के लोगों से मिलने जुलने के कारण परस्पर के वैचारिक आदान प्रदान से उसकी समझ और सोच के विकास के साथ व्यक्ति की मानसिकता में भी परिवर्तन आता है। विभिन्न क्षेत्रों की प्राकृतिक सुषमा से उस क्षेत्र की जनता का लगाव होता है। कई बार भौगोलिक दृष्टि से इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के खान-पान, भाषा और वेशभूषा में

भी काफी अन्तर होता है। सामाजिक परिस्थितियाँ भी बदली हुई मिली हैं। दिल और दिमाग की खिड़की खोलकर जब कोई अध्ययनशील जिज्ञासु घूमने निकलता है तो सारी भिन्नताओं के बीच भी कुछ न कुछ समानता की बातें भी ढूंढ़ ही निकालता है। इस प्रकार एक प्रगतिशील बुद्धिजीवी अपने अनुभवों की निधि को विविधता से सम्पन्न करके उसे नित्य नवीन स्वरूप देता रहता है। नागार्जुन की अपनी घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण उनके परिवार को उनके सान्निध्य की स्नेहिल छाया से वंचित रहकर अनेक बार आर्थिक संकटों और विषम स्थितियों से गुजरना पड़ा होगा। परन्तु यह निश्चित है कि उनके यात्री स्वरूप ने उनके व्यक्तित्व को निखारने के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन को एक नई उत्तेजना से परिपूर्ण कर दिया। प्रगतिशील आंदोलन से नागार्जुन के जुड़ने के कारण प्रगतिशील साहित्य में वर्ण्य विषय वस्तु की दृष्टि से जो रूपान्तरण हुआ उसके कारण प्रगतिशील साहित्य के पाठकों की संख्या भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। इसलिए उनके काव्य में, कबीर, भारतेन्दु और महाप्राण निराला तीनों की शैली के समिम्श्रण का अद्‌भुत प्रभाव, रोचकता उत्पन्न करता है।

गरीबी, भुखमरी, शोषण और उत्पीड़न जैसी समस्याओं के ही इर्द गिर्द घूमने के कारण प्रगतिशील कविता को देखकर ही लोग उसके विषयके बासीपनके कारण बिदकने लगे थे। नागार्जुन के प्रवेश से प्रगतिशील साहित्य की विषयवस्तु और उसकी वर्णनशैली को विविधता के कारण एक अनोखा तथा आकर्षक स्वरूप मिला। उन्होंने पौराणिक आख्यान और पात्रों से लेकर खेत-खलिहान , नदी, पहाड़, घाटी और वनप्रांतर जैसे अछूते क्षेत्रों से प्रगतिशील कविता का सम्बन्ध स्थापित किया। प्रगतिशील कविता के रूप को निखार देकर उसे जनप्रिय बनाने में उनकी भूमिका को कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

स्वाधीनता आन्दोलन के क्रांतिकारियों की चर्चा करते करते वह बालजगत की झांकी भी उसी मनोयोग से कर सकते है। दंतुरित मुस्कान से उन्हें ताजगी मिलती है तो गूंगी बहरी अबोध जया से खेलकर उसके मन को आह्लाद से भरने का पुनीत कर्तव्य निभाना भी नही भूलते। जितना रोचक बादल को घिरते देखना है उतना ही किसी सामजिक प्राणी को

अपनी प्रिया के सिन्दूर तिलकित भाल की याद में खोना। कश्मीर की घाटी में सैर कराते हुए पाठकों की बच्चा चिनार से भेंट जिस उत्साह से कराते हैं, वैसे ही उल्लास पूर्वक उसे वह आपातकाल के दिनों में दम तोड़ते सत्य से भी मिलाते हैं। मंहगाई की मार से त्रस्त जनता के चेहरों पर छाई उदासी का चित्रण जितनी खूबी से करते हैं, वैसी ही अदा के साथ 'गुड़ मिलेगा' में हाई कमान की हाँ में हाँ मिलाने से जनतन्त्र की बिगड़ती बदहाली को भी प्रस्तुत करके पाठक में उत्कंठा को बरकरार रखने की कला कोई उनसे सीखे। वातानुकूलित कक्ष के सोफे में घुस कर लिखने की अपेक्षा दुनिया की सैर करते-कराते नए नए अनुभवों को समेट कर कागज पर शब्द-चित्र उतारना ही उनकी लेखन शैली की विशिष्टता है। वह सड़क पर चलते हुए उत्पीड़न और शोषण के लिए जिम्मेदार जमात को चुनौती देते हैं। सत्य का उद्घाटन करने से बिल्कुल नहीं कतराते। शोषण की शिकार सर्वहारा बिरादरीको प्रतिकार और क्रांति के लिए उत्साहित करते हुए लालकारते भी हैं। यह स्वीकार करने के लिए विवश होना ही पड़ता है कि इस बूढ़ी काया में जो दम खम छलकता दृष्टिगोचर होता है, वह युवा लेखकों में भी कम ही दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि कवि सम्मेलनों में उनके इर्द गिर्द जुटने वाली भीड़ में उनके हम उम्रलोगों की तुलना में युवा वर्ग की संख्या कहीं अधिक होती है।

प्रकृति और दाम्पत्य प्रेम से लेकर लोकतंत्र के स्खलन और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तक पर उनकी पैनी और चुटीली लेखनी ने व्यंग्य लिखे हैं, परन्तु इन सभी वर्ण विषयों में होकर बहने वाली अन्तः सलिला एक ही है। वह प्रगतिशीलता के अपने अन्तः सूत्र को हाथ से कभी नहीं खिसकने देते । मुंह-फट और अक्खड़ व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन को डर नहीं कि कटुसत्य के क्या दुष्परिणाम उनके व्यक्तिगत जीवन में आ सकते है। आडम्बर और प्रचार से दूर रहकर भी अपने अन्तस् के सत्य को बेझिझक उद्घाटित करते चलना ही हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील विधा को उनकी अनुपम देन है । साहित्य में प्रगतिशील तत्व अनादिकाल से विद्यमान है, वही साहित्य का प्राण तत्व है, यह नागार्जुन ने अपने साहित्य सृजन से सिद्ध कर दिया है। साहित्य जीवन से जुड कर ही जीवन्त और गतिशील रहेगा, यही उनके लेखन का सन्देश है।

नागार्जुन की प्रकाशित प्रमुख रचनाएँ

1- बूढबर (1941, मैथिली)

2- विलाप (1941, मैथिली)

3- शपथ (1948, हिन्दी)

4- चित्रा (1949, मैथिली)

5- चना जोर गरम (1952, हिन्दी)

6- युगधारा (1953, हिन्दी)

7- खून और शोले (1955,हिन्दी)

8- प्रेत बयान (1957, हिन्दी)

9- सतरंगे पांवों वाली (1959, हिन्दी)

10- प्यासी पथराई आँखें (1962, हिन्दी)

11- पत्रहीन नग्नगाछ (1967, मैथिली)

12- अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन (1971, हिन्दी)

13- तालाब की मछलियाँ (1974, हिन्दी)

14- चन्दना (1974, हिन्दी)

15- तुमने कहा था (1980, हिन्दी)

16- खिचडी विप्लव देखा हमने (1980, हिन्दी)

17- हजार हजार बाहों वाली (1981, हिन्दी)

18- पुरानी जूतियों का कोरस (1983, हिन्दी)

19- रत्नगर्भ (1984 हिन्दी)

20- ऐसे भी हम क्या ऐसे भी तुम क्या (1984, हिन्दी)

21- इस गुब्बारे की छाया में (1989, हिन्दी)

22- भस्मांकुर (खण्ड काव्य)

23- मेघदूत हिन्दी रूपान्तर - 53-54 पुस्तकाकार प्रकाशन 1955

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2-	हिन्दी की प्रगतिशील कविता	: डा0 रणजीत
3-	विचाराधारा और साहित्य	: अमृतराय (हंस प्रकाशन)
4-	मैथिली शरण गुप्त की काव्ययात्रा	: जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
5-	हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	: राजनाथ शर्मा
6-	हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	: डा0 जय किशन प्रसाद खंडेलवाल
7-	समकालीन हिन्दी कविता	: विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
8-	मानव और संस्कृति	: युलिआन ब्रोमलेयएवं रोमान पोदल्ली
9-	नागार्जुन - कुछ चुनी हुई कविताएँ	: डा0 नामवर सिंह
10-	बाबा नागार्जुन	: डा0 नरेन्द्र कोहली
11-	निबन्ध निकष	: डा0 महेन्द्र प्रताप एवं डा0 कैलाश चंद्र अग्रवाल
12-	श्री रामचरित मानस	: तुलसीदास
13-	श्रीमद् भगवद्गीता	
14-	नागार्जुन की कविता	: डा0 अजय तिवारी
15-	नागार्जुन : मेरे बाबू जी	: शोभा कान्त मिश्र
16-	Pocket Book of Quotations	
17-	बेनीपुरी ग्रन्थावली	: रामवृक्ष बेनीपुरी
18-	Discovery of India	: Pt. Jawahar Lal Nehru
19-	Glimpses of World History	: Pt. Jawahar Lal Nehru
20-	Autobiography	: Pt. Jawahar Lal Nehru
21-	प्रगतिवाद, साहित्य की समस्याएँ	: शिवदान सिंह चौहान

22- आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा0 नामवर सिंह

23- आधुनिक हिन्दी कविता : डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय

24- आधुनिक काव्य धारा का साँस्कृतिक स्रोत : डा0 केसरी नारायण

25- हिन्दी साहित्य कोश : संस्करण संवत् 2020

26- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : डा0 विश्वनाथ त्रिपाठी

27- प्रगतिशील आलोचना : रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव

28- प्रगतिवादी समीक्षा : रामप्रसाद द्विवेदी

29- साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचंद

30- शुक्ल और हिन्दी आलोचना : डा0 रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव

31- हिन्दी साहित्य : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

32- अशोक के फूल : उपर्युक्त

33- भारतेन्दु युग : डा0 रामविलास शर्मा

34- अस्तित्ववाद और हिन्दी कविता : उपर्युक्त

35- समकालीन काव्य में प्रगतिवादी चेतना : डा0 एम0 रंगय्या

36- आज का भारत : रजनी पामदत्त

37- भारत : वर्तमान और भावी : रजनी पामदत्त

38- कविवचन सुधा

39- A Contemporary History of India Peoples Publishing House N.Delhi

40- कांग्रेस का इतिहास :डा0 पट्टाभि सीतारमय्या

41- आधुनिक भारत में प्रशासनिक एवं संवैधानिक सुधार : चोपड़ा, पुरी एवम् दास

42- भारत का सामाजिक साँस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास : एस0सी0राय चौधुरी

43- संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर

44- पंत प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त : दिनकर

45- नागार्जुन-चुनी हुई रचनाएँ भाग 1 संपादक शोभाकांत मिश्र

46- नागार्जुन-चुनी हुई रचनाएँ भाग 2 संपादक शोभाकांत मिश्र

47- नागार्जुन-चुनी हुई रचनाएँ भाग 3 संपादक शोभाकांत मिश्र

वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

48- आधुनिक भारत : मजूमदार

49- नागार्जुन:परिचय एवं काव्य संकलन : डा0 प्रभाकर माचवे

राजकमल प्रकाशन

50- Problems in Education : Dr. R.N.Safaya

51- A History of Literary Critisism : Hudson

52- Foundations of Education : Bhatia and Safaya

पत्र - पत्रिकाएँ

1- दैनिक नवभारत टाइम्स

2- दैनिक जनसत्ता

3- हिन्दुस्तान टाइम्स दैनिक-रविवासरीय परिशिष्ट

4- धर्मयुग

5- हंस की फाइलें

6- आलोचना

7- कल्पना

8- संगम (केन्द्रीय विद्यालय संगठन नई दिल्ली)

9- मधुमती मासिक : राजस्थान साहित्य अकादमी

10- कादम्बिनी

11- नवनीत(हिन्दी डाइजेस्ट)

12- Indian Express (Sunday Editions)

13- Reader's Digest - monthly.

14- India Today - Living media Publication

15- Week : Manorama Malayalaya Publication

16 पल-प्रतिपल : संपादक जोशी तथा चौबे सितंबर 92 अंक